प्रकाशक

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, बीकानेर 334403

प्रकाशन सौजन्य

श्रीयुत उमरावसिंहजी ओस्तवाल, मुम्बई

मूल्य पचास रुपये मात्र

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा मे महान क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्ठ युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे अपने युग के क्रातदर्शी, सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक, सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नही, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज, ग्राम नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भाँति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक् प्रयास अपने प्रेरणादायी उद्‌बोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन–वृत्तान्तो को सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानवजाति उनके उद्‌बोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे प्रार्थना बोध किरणावली का यह अक पाठको के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन–साहित्य को युग–युग मे जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर–साहित्य का लागत

मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व में सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियों का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद में संस्था की स्वर्णजयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयास से किरणावलियों की संख्या बढ़ाकर 53 कर दी गई। आज यह सैट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ ने यह निर्णय किया गया कि किरणावलियों को नया रूप दिया जावे। इसके लिए संस्था के सहमंत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियों को एक साथ समाहित किया और पुन सभी किरणावलियों को 32 किरणों में प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार में जवाहर विद्यापीठ भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने में श्री अ भा साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर की महती भूमिका रही। संघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी संगठन और कार्यकर्ताओं के बल पर जवाहर किरणावलिया के प्रचार–प्रसार और विक्रय–प्रबन्धन में अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज संघ के प्रयासों से यह जीवन–निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं अपितु विश्व–धरोहर बन चुका है। संघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ में समस्त जवाहर साहित्य के प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व में लगभग सभी किरणावलियाँ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थीं। सत्साहित्य प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला संस्करण श्रीमान् ताराचन्दजी भण्डारी बैंगलोर के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 15 (सार्थक बात) के अर्थ–सहयोगी श्री उमरावसिहजी ओस्तवाल मुम्बई हैं। संस्था सभी अर्थ–सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा — अध्यक्ष

सुमतिलाल बांठिया — मंत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976 चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976 आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000 आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

आचार्यश्री जवाहर–ज्योतिकण

+ विपत्तियो के तमिस्र गुफाओ के पार जिसने सयम–साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।
+ ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरतर अभिवर्द्धित किया।
+ सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्राति का शखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।
+ उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने, आगम–सम्मत सिद्धातो की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थो मे विजयश्री प्राप्त की।
+ परतत्र भारत को स्वतत्र बनाने के लिए जिसने गाव–गाव, नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन–जन के मन को जागृत किया।
+ शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस मे खादी–धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।
+ अल्पारभ–महारभ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।
+ स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर सम्मेलन मे गहरे चितन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।
+ महात्मा गाधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल, प श्री जवाहर लाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनो का समय–समय पर लाभ उठाया।
+ जैन व जैनेत्तर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करता था।
+ सत्य सिद्धातो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एव निर्भीकता के साथ भू–मडल पर विचरण करते थे।

"हुक्म संघ के आचार्य"

1 आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870 स्वर्गवास वि स 1917

ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2 आचार्य श्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि.स 1933

प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।

3 आचार्य श्री उदय सागरजी म सा – दीक्षा 1918, स्वर्गवास वि स. 1954

विलक्षण प्रतिभा के धनी वादी–मान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।

4 आचार्य श्री चौथमलजी म सा – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957

महान क्रियावान, सागर सम गभीर, सयम के सशक्त पालक, शात–दात निरहकारी निर्ग्रन्थ शिरोमणि।

5 आचार्य श्री श्रीलालजी म सा – दीक्षा 1944 स्वर्गवास वि स 1977

सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता अद्भुत स्मृति के धारक जीव–दया के प्राण।

6 आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000

ज्योतिर्धर महान क्रातिकारी क्रातदृष्टा युगपुरुष।

7 आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962, स्वर्गवास वि स 2019

शात क्राति के जन्मदाता सरलता की सजीव मूर्ति।

8 आचार्य श्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996 स्वर्गवास वि स 2056

समता–विभूति विद्वद्शिरोमणि जिनशासन–प्रद्यातक धर्मपाल–प्रतिबोधक [illegible] ध्यानयोगी।

9 आचार्य श्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031 आचार्य वि स 2056 से

अर्थ–सहयोगी परिचय

संघरत्न शासन गौरव दानवीर भामाशाह श्री उमरावसिंहजी ओस्तवाल, मुम्बई

सघ सेवा का लाभ बहुत ही बिरले व्यक्तियो को मिलता है और जो सघ के प्रति, शासन के प्रति अपनी दृढ आस्था, श्रद्धा एव समर्पणा मे सघ आयामो को जन–जन तक पहुचाने का भागीरथी कार्य करते है वे और उनका जीवन वास्तव मे धन्य है और ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी है श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री उमरावसिहजी ओस्तवाल।

आपका जन्म 16 नवम्बर, 1952 को राजस्थान के चित्तौडगढ जिले के मगलवाड गॉव मे हुआ। आपकी माताजी धर्मपरायण श्रीमती सुन्दरदेवी जी ओस्तवाल एव पिताजी श्रद्धानिष्ठ सुश्रावक श्री पृथ्वीराजजी ओस्तवाल ने आपको सुसस्कारो का खजाना प्रदान किया। सन् 1973 मे आप उच्च शिक्षा ग्रहण करने हेतु महानगरी मुम्बई आये एव सी ए की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1978 से 1987 तक यहॉ इनकम टैक्स की प्रैक्टिस की। सन् 1988 मे आपने बिल्डर व्यवसाय मे प्रवेश किया। अल्प अवधि मे ही आपकी गणना मुम्बई के अग्रणी बिल्डरो मे होने लगी। समाजसेवा के क्षेत्र मे भी आपने अग्रणी भूमिका निभाई। बडीसादडी सघ अधिवेशन के समय सघ ने आपके सेवा के उत्कृष्ट कार्यो को ध्यान मे रखते हुए सघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष पद पर मनोनयन कर आपके कृत कार्यो का सम्मान किया। अध्यक्ष पद का कार्यभार सभालते ही सर्वप्रथम आचार्य श्री नानेश ध्यान केन्द्र का उदघाटन करवाकर ज्ञानचेतना मे नवकीर्तिमान स्थापित किया। आपके कार्यकाल मे लगातार दो वर्षो से हमारे सघ का बजट लाभ का बजट रहा, जो अपने आप मे गौरव का विषय है। सम्पूर्ण भारतवर्ष मे समता भवनो के निर्माण की पक्रिया को गति देकर आपने एक उल्लेखनीय कार्य किया। सघ की प्रत्येक प्रवृत्ति को आपने नवचेतना प्रदानकर ऐतिहासिक कार्य किया। आप पूर्व मे वर्षो तक श्री अ भा साधुमार्गी जैन समता युवा सघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके है।

समाजसेवा के कार्यों मे आपका नाम सर्वोच्च स्थान पर आता हे। आपके प्रयासो से ही चित्तौडगढ मे दो साल जिला स्तरीय विकलाग शिविर आयोजित करवाया गया व विकलागो को ट्राई साईकिले वितरित की गई। जनहितार्थ आपने मगलवाड के हॉस्पीटल मे प्रसूति गृह का निर्माण करवाया। अपनी कर्मभूमि भायन्दर मे अपनी माताजी की पुण्यस्मृति मे जरूरतमद महिलाओ के लिए सुन्दरबाई ओस्तवाल मुफ्त सिलाई क्लासेज की स्थापना की। भायन्दर मे धार्मिक उपासना हेतु आपने समता भवन का निर्माण करवाया एव देश के अनेक हिस्सो मे समता भवनो के निर्माण मे अपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हे। आपने स्वधर्मी सहयोग हेतु ब्याजमुक्त ऋण योजना का प्रारम्भ किया, जिससे अनेको लोग लाभान्वित हुए। आपने पूज्य आचार्यश्री नानेश की जन्मस्थली नानेशनगर दाता मे साधना केन्द्र के भव्य निर्माण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपके कृत कार्यो का सम्मान करने हेतु 20 नवम्बर, 1997 को नई दिल्ली मे तत्कालीन चुनाव आयुक्त जे वी कृष्णामूर्ति ने आपको इन्दिरा गॉधी प्रियदर्शिनी अवार्ड देकर सम्मानित किया। जेन एकता महामण्डल की ओर से 1996 मे मुम्बई मे आपको समाजरत्न की उपाधि से विभूषित किया गया। राजस्थान सरकार ने आपके शिक्षा क्षेत्र मे उल्लेखनीय योगदान हेतु जयपुर के रवीन्द्र रगमच मे 28 जून, 1996 को प्रतिष्ठित भामाशाह पुरस्कार प्रदान किया।

आपके धर्मनिष्ठ परिवार मे आपकी धर्मपत्नी श्रीमती आशादेवी, पुत्र व पुत्रवधु श्री कुलदीप–श्रीमती शशि एक पोत्र, दो पुत्रियॉ श्री किरणदेवी–शकेन्द्रजी छाजेड श्रीमती पिकी–राकेशजी सिघवी हे, जो सदसस्कारो से सस्कारित हे। आपके कार्यो एव प्रकल्पो की लम्बी शृखला हे जिन्हे सक्षिप्त मे यहॉ समेटा गया हे।

अनुक्रम

प्रार्थना की महिमा

जो लोग परमात्मा की प्रार्थना मे श्रद्धा रखते है और जो प्रार्थना की शक्ति को स्वीकार करते है उनके लिए प्रार्थना एक अपूर्व वस्तु है। उस पर यदि विश्वास रखा जाय तो उससे अपूर्व वस्तु की प्राप्ति होती है। यदि प्रार्थना मे विश्वास न हुआ तो तो वही एक प्रकार का ढोग बन जाती है। कल्पवृक्ष मे कौन–सी वस्तु नही रही हुई है? उसमे रहती तो सभी वस्तुए है पर नजर एक भी नही आती। फिर भी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर जिस वस्तु की कल्पना की जाती है वही वस्तु मिल जाती है। इस प्रकार कल्पवृक्ष स्वय कल्पना (चिन्ता) के आधार से वस्तु प्रदान करता है। यदि कल्पना न की जाय तो उस वस्तु की प्राप्ति नही हो सकती। इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना मे निहित शक्ति भले ही दृष्टिगोचर न हो, पर यदि उस पर विश्वास किया जाय तो उससे समस्त मनोरथ पूरे हो सकते है। यही कारण है कि ज्ञानी–जन परमात्मा की प्रार्थना के सामने कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न की भी परवाह नही करते। उनकी दृष्टि मे परमात्मा की प्रार्थना के मुकाबले उसकी भी कीमत नही है। जब हमारे भीतर परमात्मा की प्रार्थना पर ऐसा प्रगाढ विश्वास पैदा हो जायेगा और प्रार्थना के सामने कल्पवृक्ष और चिन्तामणि भी तुच्छ प्रतीत होने लगेगे, तब हमे स्पष्ट मालूम हो जाएगा कि परमात्मा की प्रार्थना मे कैसी अद्भुत शक्ति विद्यमान है। अत परमात्मा की प्रार्थना मे दृढ विश्वास रखो। हा, एक बात स्मरण रखनी चाहिए और वह यह कि जब किसी सासारिक पदार्थ की इच्छा पूर्ण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है तब वह सच्ची भावना नही वरन ऊपरी ढोग बन जाती है। इस विषय मे भक्त केशवलाल ने ठीक ही कहा है– 'परमात्मा की प्रार्थना मे पन्द्रह आना मन लगा हो और केवल एक आना मन सासारिक पदार्थ की पूर्ति मे लगा हो तो वह प्रार्थना भी ढोग–रूप ही है।

किसान को घास ओर भूसे की भी आवश्यकता पडती है। पर वह घास–भूसे के लिए खेती नही करता। उसका उद्देश्य तो धान्य को प्राप्त करना होता है। फिर भी धान्य के साथ घास–भूसा भी आनुषगिक रूप मे उसे मिल ही जाता हे। इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना करते समय ऐसा विचार करना चाहिए कि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए मे प्रार्थना करता हू, क्योकि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने मे ही आत्मा का कल्याण समाया हुआ है। इस प्रकार की उन्नत भावना रखने से अन्न के साथ–साथ घास–भूसा आप ही मिल जाते हे। लेकिन ससार की सब वस्तुए पा लेने की अपेक्षा आत्मा का कल्याण–साधन श्रेष्ठतर है। अतएव आत्मिक निर्बलता के लक्ष्य से ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर प्रार्थना द्वारा आत्मा का हित–साधन हो सकता हे तो तुच्छ चीजो को पाने के लिए प्रार्थना का उपयोग करना चने के वदले रत्न देने के समान मूर्खता है। आत्मकल्याण की अभिलाषा रखने वालो को ऐसी मूर्खता कदापि नही करनी चाहिए।

परमात्मा की प्रार्थना किसी भी स्थान पर ओर किसी भी परिस्थिति मे की जा सकती हे। पर प्रार्थना मे आत्म–समर्पण की अनिवार्य आवश्यकता रहती हे। प्रार्थना करने वाला अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाता हे। वह परमात्मा के साथ अपना तादात्म्य–सा स्थापित कर लेता है। वस्तुत आत्मोत्सर्ग के विना सच्ची प्रार्थना नही हो सकती। इसलिए भक्तजन कहते हे–

तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने, इन पर वेगि रिझास्या राज।

अर्थात– परमात्मा की प्रार्थना करने मे तन धन ओर प्राण भी अर्पण कर दूगा।

यदि तुम्हारे चर्म–चक्षु ईश्वर का साक्षात्कार करने मे रामर्थ नही हैं, तो इससे क्या हुआ? चर्म–चक्षु के अतिरिक्त हृदय–चक्षु भी हे ओर उस चक्षु पर विश्वास भी किया जा सकता हे। परमात्मा की प्रार्थना के विषय म ज्ञानीजन यही कहते हैं कि तुम चर्म–चक्षुओ पर ही निर्भर न रहो। हमारी वात मानो। वचपन मे जव तुमने वहुत सी वस्तुए नही देखी होती हैं तव माता के कथन पर तुम भरोसा रखते हो। क्या उससे तुम्हे कभी हानि हुई हे? वचपन मे तुम साप को भी साप नही समझते थे। मगर माता पर विश्वास रखकर ही तुम साप को साप समझ सके हो ओर साप के दश स अपनी रक्षा कर सके हो। फिर उन ज्ञानिया पर जिनक हृदय म माता के समान करुणा ओर वात्सल्य का अविरल स्रोत प्रवाहित होता रहता हे श्रद्धा रखन स तुम्हे हानि कैसे हो सकती ह। उन पर विश्वास रखन स तुम्हे हानि कदापि न होगी

प्रत्युत लाभ ही होगा। अतएव जब ज्ञानीजन कहते है कि परमात्मा है तो उनके इस कथन पर विश्वास रखो। स्मरण रखना, इस प्रकार के विश्वास से तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

विषय–वासना होने पर भक्ति नही रह सकती। परमात्मा की भक्ति और विषय–वासना एक साथ कैसे निभ सकते है?

परमात्मा का सच्चा भक्त वही है जिसने विषय–वासना का निरोध कर दिया है। परमात्मा की भक्ति की अभिलाषा रखने वाले के लिये ऐसे व्यक्ति का ससर्ग भी त्याज्य है जो विषय–वासना को प्रधानता देता है।

जो योगी या परमयोगी कहलाने वाला पुरुष ध्यान–मोन मे परायण होकर आत्म–परमात्मा का ध्यान नही करता, वह ससार मे भार–रूप है। ससार के जीवो मे साम्य भाव हुए बिना कोई योगी नही कहला सकता। वही सच्चा योगी है जो प्राणीमात्र को अपने समान समझता है उन्हे आत्मोपम्य बुद्धि से देखता है। जैसा मै हूँ वैसे ही और भी प्राणी हैं इस प्रकार का अनुभव करके जो दूसरे के सुख–दु ख को अपने ही समान समझता है और सबके पति समभावपूर्वक व्यवहार करता है अर्थात् जिस बात से मुझे दु ख होता है उससे अन्य प्राणियो को भी दु ख होता है दु ख जैसे मुझे अप्रिय है वैसे ही औरो को भी अप्रिय है जैसे मुझे सुख की अभिलाषा है उसी प्रकार अन्य जीव भी सुख के ही अभिलाषी है इस प्रकार आत्मौपम्य बुद्धि से समस्त पाणियो को देखने वाला और ऐसा ही व्यवहार करने वाला सच्चा योगी है।

यह कथन जैन–दर्शन का ही नही है किन्तु अन्य आदर्शनिको का भी यही कथन है। गीता मे कहा है–

आत्मौपम्येन सर्वत्रम, स पश्यति योऽर्जुन।
सुख या यदि या दु खं स योगी परमो मत ।।

–अध्याय 6 32

समभाव वाले और विषम भाव वाले पुरुष के कार्यो मे कितना अन्तर रहता है यह बात ससार मे सर्वत्र ही देखी जा सकती है। सम्यक–दृष्टि जीव भी खाना–पीना विवाह आदि कार्य करता है और मिथ्यादृष्टि भी यह सब करता है। लेकिन दोनो के कार्यो की भाव–भूमिका मे अन्तर होता है। समभाव से अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होता है। उसका आस्वाद वाणी द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। वह सिर्फ अनुभव की वस्तु है और अनुभव करने वाले ही उसे पहचानते है। जिसके हृदय मे समभाव जागृत हो जाता है उसे किसी प्रकार की हानि नही उठानी पड़ती।

मित्रो। ईश्वर की प्रार्थना से समभाव पेदा होता हे और समभाव ही मोक्ष का द्वार हे। ऐसा समझकर अगर आप अपने अन्त करण मे समभाव धारण करेगे तो परम कल्याण होगा।

जगत मे आशाए इतनी अधिक हैं कि उनका अन्त नही आ सकता। शास्त्र मे कहा है–

इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।

अर्थात् आशा–तृष्णा आकाश के समान अनन्त हैं। तृष्णा का कही अन्त नही हे। ऐसी स्थिति मे तृष्णा की पूर्ति के लिए उद्योग करना आकाश को नापने के समान निष्फल चेष्टा है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष आशाओ की पूर्ति करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना नही करते, वरन् आशा का नाश करने के लिए नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते है।

इसी भाव से परमात्मा की प्रार्थना करना उचित है। अगर तुम आशा को नाश करने के बदले सासारिक पदार्थो धन, पुत्र, स्त्री आदि के लिए प्रार्थना करोगे तो ससार के पदार्थ तुम्हे लात मार कर चलते बनेगे और तुम्हारी आशाए ज्यो की त्यो अधूरी ही रह जाएगी। हा, अगर तुम आशा–तृष्णा को नष्ट करने के लिए अन्त करण मे पूर्ण निस्पृहवृत्ति जागृत करने के लिए ईश–प्रार्थना करोगे तो ससार के पदार्थ जिसके तुम अधिकारी हो, तुम्हे मिलेगे ही, साथ ही शाति का परम सुख भी प्राप्त होगा। अतएव आशा को नष्ट करने की एकमात्र आशा से परमात्मा की प्रार्थना करो।

यह मत सोचो ईश्वर तो कभी दिखता नही है, उससे प्रेम किस प्रकार किया जाय? अगर ईश्वर नही दिखता तो ससार के प्राणी कीडी से लगाकर कुजर तक समान हैं। इस तत्त्व पर विचार करोगे तो ईश्वर से प्रेम करने की वात असम्भव न लगेगी। ईश्वर नही दिखता तो न सही, ससार के प्राणियो की ओर देखो ओर उन्हे आत्म तुल्य समझो। सोचो– जेसा मे हू, वेसा ही यह है इस प्रकार इतर प्राणिया को अपने समान समझने से शन–शने ईश्वर का साक्षात्कार होगा परमात्मतत्त्व की उपलब्धि होगी आत्मा स्वय उस शुद्ध स्थिति पर पहुच जायेगी।

तात्पर्य यह हे कि ईश्वर का ध्यान करन से आत्मा स्वय ईश्वर वन जाती ह। पर जव तक ईश्वरत्त्व की अनुभूति नही हाती तव तक प्राणिया का ही ईश्वर के स्थान पर आरोपित कर लो। ससार क प्राणिया का आत्मा क समान समझन स दृष्टि एसी निर्मल वन जायगी कि ईश्वर का भी दखन लगोग आर अन्त म स्वय ईश्वर वन जाओग।

जगत् के इस विषमय वातावरण मे यह उदार भावना किस प्रकार आ सकती है? किस उपाय से भूतल के एक कोने मे रहने वाला मनुष्य, दूसरे कोने के प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई समझ सकता है?

इस पश्न का मेरे पास केवल एक ही उत्तर है। वह यह है कि त्रिलोकीनाथ की विजय की भावना मे ही विश्वशाति की भावना निहित है। इस प्रकार की व्यापक भावना त्रिलोकीनाथ की विजय चाहने से ही हो सकती है। त्रिलोकीनाथ परमात्मा की विजय चाहने से अन्त करण मे एक प्रकार की विशालता समभावना आती है। ऐसा चाहने वाला व्यक्ति सोचता है कि मेरा स्वामी त्रिलोकीनाथ है। ससार के समस्त प्राणी उसकी प्रजा है। मै जब त्रिलोकीनाथ की विजय चाहता हू तो उसकी प्रजा मे से किसकी पराजय, किसका बुरा सोचू? मै जब त्रिलोकीनाथ की विजय चाहता हू तो उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी समस्त प्रजा का भला चाहू। परमात्मा की विजय चाहने से इस प्रकार के विचार अन्त करण मे उत्पन्न होते है और इन उदार विचारो से राग–द्वेष का भाव क्षीण हो जाता है। जितने अशो मे विचारो की उदारता होगी उतने ही अशो मे राग–द्वेष की क्षीणता होगी ओर जितने ही अशो मे राग–द्वेष की क्षीणता होगी उतने अशो मे निराकुलता–शाति प्राप्त होगी। इस प्रकार विश्वशाति का मूल मत्र है परमात्मा की विजय की कामना करते रहना।

इस विजय कामना की एक विशेषता यह भी है कि इसकी आराधना से सामूहिक जीवन के साथ ही साथ वैयक्तिक जीवन का भी विकास होता है। इससे सिर्फ राष्ट्र या राष्ट्र–समूह ही लाभ नही उठा सकते वरन पत्येक व्यक्ति भी अपना जीवन उदार समभावपूर्ण और शान्त बना सकता है।

पथम तो परमात्मा के भजन करने का अवसर मिलना ही अत्यन्त कठिन है तिस पर अनेक प्रकार की बाधाए सदेव ताकती रहती है और मौका मिलते ही उस अवसर को व्यर्थ बना डालती है। इस प्रकार मानव जीवन की यह घडिया अनमोल है। यह घडिया परिमित है। ससार मे कोई सदा जीवित नही रहा ओर न रहेगा ही। अतएव पाप्त सुअवसर से लाभ उठा लेना प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है। अतएव परम भाव से परमात्मा का स्मरण करो।

यह श्वासो श्वास जो रहता है [illegible] नही किन्तु परमात्मा का ही चलता है। इसे खाली मत जाने दो। प्रत्येक श्वास और [illegible] परमात्मा का स्मरण [illegible] रहने दो [illegible]

आवश्यकता है–चिर अभ्यास की अपेक्षा हे। अगर शीघ्र ऐसा न हो सके, तो भी आदर्श यही अपने सामने रखो। आदर्श सामने रहेगा तो उसी ओर गति होगी, भले ही वह मन्द हो।

जिस प्रकार सूर्य के सामने अन्धकार नही रहता, इसी प्रकार परमात्मा से साक्षात्कार होने पर आत्मा मे कोई भूल शेष नही रहती। किन्तु आपको और हमको अभी तक परमात्मा से साक्षात्कार नही हुआ है। हम लोग अभी इस पथ के पथिक हे। इसलिए प्रार्थना करके हमे परमात्मा से साक्षात्कार करने का मार्ग तय करना है। प्रार्थना मे अपने दुर्गुणो को छिपाना नही चाहिए किन्तु प्रगट करना चाहिए। ऐसा करने से आत्मा एक दिन परमात्मा से साक्षात्कार करने मे समर्थ हो सकेगी।

भाइयो! मेरा कहना मानते हो तो मै कहता हू कि दूसरे सब काम छोडकर परमात्मा का भजन करो। इसमे तनिक भी विलम्ब न करो। तुम्हारी इच्छा आत्मकल्याण करने की है और यह अवसर भी अनुकूल मिल गया हे। कल्याण के साधन भी उपलब्ध हे। फिर विलम्ब किसलिए करते हो? कोन जानता हे यह अनुकूल दशा कब तक रहेगी?

परमात्मा से भेट करने का सरल ओर सुगम मार्ग भजन हे। यह मार्ग सभी के लिए उपयोगी हे। चाहे कोई ज्ञानी या अज्ञानी हो, पुरुष हो, या स्त्री हो, नीच हो या उच्च हो, धनवान् हो या निर्धन हो भजन का मार्ग सबके लिए खुला हे। इस मार्ग मे यह सब ऊपरी भेद मिट जाते हे।

प्रश्न हो सकता हे कि परमात्मा का भजन क्या हे? परमात्मा का नाम लेना ही भजन हे या कुछ ओर? इसका उत्तर यह कि भगवान का नाम लेना ही भजन हे अवश्य, लेकिन भजन का खास अर्थ ईश्वरीय तत्व की उपासना करना हे।

जीवन की कला को विकसित करने के लिए ईश्वर की प्रार्थना एक सफल साधन हे। अगर आठ पहर, दिन–रात ईश्वर की प्रार्थना हृदय म चलती रहे तो ससार दु खमय नही हो सकता। यही नही ससार के दु ख आत्म–जागृति के निमित्त बनकर कहेगे–आत्मन तू अपन घर म क्या नही जाता? इस झझट मे काहे को पडा हे यह बात प्रार्थना करने वाला ही जानता हे। जो मनुष्य ससार के प्रपचा मे ही रचा–पचा ह उसे यह तथ्य मालूम नही हो सकता।

प्रार्थना का विषय आध्यात्मिक ह। इस आध्यात्मिक विचार क सामने तक–वितर्क का कोई मूल्य नही ह। यह विश्वास का विषय हे। हृदय की वस्तु का मस्तिष्क द्वारा निरीक्षण–परीक्षण नही किया जा सकता।

जिस समय आम के वृक्ष मे मजरिया लगती है ओर उनकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर उन पर मडराते है, तब कोयल चुप रह सकेगी? कोयल किसी के कहने से नही गाती। आम मे मजरी आने से उस पर जो मतवालापन सवार हो जाता है, उस मतवालेपन मे वह कूके बिना नही रह सकती।

एक कवि कहता है–जिसके हृदय मे भक्ति हो वही भक्ति की शक्ति को जान सकता है। केतकी और केवडा के फूलने पर भौरे को गुजार करने से कभी रोका जा सकता है?

भ्रमर हमारे–आपके लिए गुजार नही करता। केतकी और केवडा के फूलने से उसमे एक प्रकार की मस्ती आ जाती है। उस मस्ती की अवस्था मे गुजार किये बिना वह अपने चित्त को शात कैसे रख सकता है? इसी प्रकार बसन्त ऋतु आने पर जब आम फूलो से सुसज्जित हो जाता है, तब कोयल से चुप नही रहा जा सकता। मेघ की गभीर गर्जना होने पर मयूर बिना बोले कैसे रह सकता है?

पवन के चलने पर ध्वजा हिले बिना रह सकती है?

इसी प्रकार कवि कहता है– किन्तु मुझसे अगर कोई कहे कि तुम बोलो मत चुप रहो, तो मेरे अन्त करण मे भक्ति का जो उदेक रहा है उस उदेक के कारण बिना बोले मुझ से कैसे रहा जा सकता है?

बसन्त ऋतु के आने पर भी अगर कोयल नही बोलती तो उसमे ओर कौवी मे क्या अन्तर है? केतकी के फूलने पर भी भ्रमर मतवाला होकर गुजार नही करता तो भमर मे और दुर्गन्ध पर जाने वाली मक्खी मे अन्तर ही क्या रहेगा? कोयल बसन्त के आने पर और भमर केतकी के कुसुमित होने पर भी न बोले–अगर उन्होने अवसर गवा दिया तो फिर उन्हे कान–सा अवसर मिलेगा जब वे अपने कोयल ओर भमर होने का परिचय देगे? अतएव कोयल और भमर मे जब तक चतन्य है जब तक जीवन हे तब तक वे अवसर आने पर बोले बिना नही रहेगे। इसी प्रकार अगर मयूर मे जीवन हे तो मेघ की गर्जना सुनकर उससे चुपचाप बैठा न रहा जाएगा। अगर वह चुपचाप रहता है तो उसमे आर गीध मे क्या अन्तर है? मेघ की गर्जना सुनते ही मयूर के उर मे जो प्रेम उमडता है वह गीध के हृदय मे नही उमडता।

तात्पर्य यह है कि बसन्त आदि अवसरो पर कोयल आदि के अन्तर मे [illegible] की प्रेरणा [illegible]। [illegible] की यह प्रेरणा इतनी [illegible] होती है कि [illegible] किसी के [illegible] नही रुकती। इसी प्रकार भक्त के अन्तःकरण मे भक्ति

की आतरिक प्रेरणा उत्पन्न होती हे। उससे प्रेरित होकर भक्त मोन नही रह सकता।

जीवन का प्रत्येक क्षण–चोवीसो घण्टे प्रार्थना करते–करते ही व्यतीत होने चाहिए। एक श्वास भी विना प्रार्थना के खाली नही जाना चाहिए। प्रार्थना मे जिनका अखण्ड ध्यान वर्त्तता हे उन्हे वारम्वार श्रद्धापूर्वक नमन हे। हम लोगो मे जव तक जीवन हे जव तक जीवन मे उत्साह हे जव तक शक्ति हे यही भावना विद्यमान रहनी चाहिए कि हमारा अधिक से अधिक समय प्रार्थना करते–करते ही वीते।

जव तक अहकार है, अभिमान है, तव तक भक्ति नही हो सकती। अहकार की छाया मे प्रेम का अकुर नही उगता। अहकार मे अपने प्रति घना आकर्षण है, आग्रह हे जवकि प्रेम मे घना उत्सर्ग चाहिए। दोनो भाव परस्पर विरोधी है, एक मे मनुष्य अपने आपको पकड कर वेठता है अपना आपा खोना नहीं चाहता और दूसरे मे आपा खोना पडता है। इस स्थिति मे अहकार ओर प्रेम या भक्ति दोनो एक जगह केसे रहेगे?

जिस प्रकार काच पर प्रतिविम्व पडे विना नही रहता उसी प्रकार भाव–प्रार्थना करने वाले प्रार्थी के निर्मल हृदय पर परमात्मा का प्रतिविम्व पड विना नही रहता। जव स्वच्छ काच पर देखने वाले का प्रतिविम्व पडता हे तव हृदय निर्मल होने पर चिदानन्द परमात्मा का प्रकाश हृदय पर क्यो नही पडेगा? परमात्मा के प्रकाश को अन्त करण मे प्रतिविम्वित करना ही प्रार्थना का साध्य हे। इस साध्य के लिए आवश्यक ही नही वल्कि अनिवार्य हे–हृदय की निर्मलता। हृदय निर्मल न होगा तो प्रार्थना अपना साध्य केसे साधन कर सकेगी।

प्रार्थना जीवन ओर प्राण का आधार हे। प्रार्थना ही वह अनुपम साधन है जिसके द्वारा प्राणी आनन्दधाम मे स्वच्छन्द विचरण कर सकता हे। जो प्रार्थना प्राणरूप वन जाती हे वह भले ही सीधी–सादी भाषा मे की गई हो ग्राम्यभाषा द्वारा की जाती हो या प्राकृत, सस्कृत भाषा द्वारा की जाती हो उसके स्वर मे लालित्य हो अथवा न हो वह प्रार्थना सदा कल्याणकारिणी होगी।

प्रार्थना का सबध भाषा से या हृदयस्पर्शी भाषा से नही है। भाषा तो शुक भी वोल लेता है मगर वह भाषा केवल प्रदर्शन की वस्तु है। निर्मल अन्त करण मे भगवान के प्रति उत्कृष्ट प्रीतिभावना जब प्रबल हो उठती है तब स्वयमेव जिह्वा स्तवन की भाषा का उच्चारण करने लगती है। स्तवन के

उस उच्चारण मे हृदय का रस मिला होता है। ऐसा स्तवन ही फलदायी होता है। पार्थना के विषय मे जो प्रवचन किया जाता है उसका एकमात्र प्रयोजन भी यही है सर्वसाधारण के हृदय मे प्रार्थना के प्रति प्रीति का भाव उत्पन्न हो जाय– पार्थना मे अन्त करण का रस मिल जाय।

आत्मा के आवरणो का क्षय करके ईश्वर बनने का यह सीधा रास्ता है। परमात्मा से साक्षात्कार करने के अनेक उपाय बताये है। लेकिन सबसे सरल मार्ग यही है कि आत्मा मे परमात्मा के प्रति परिपूर्ण प्रेम जागृत हो जाय। यह प्रेम ऐसा होना चाहिये कि किसी भी परिस्थिति मे ईश्वर का ध्यान खण्डित न होने पावे।

आत्मकल्याण के लिए गहन तत्त्वो का विचार भले ही किया जाय, पर ऐसा करना सब के लिए सम्भव नही है। तो क्या आत्मकल्याण का रास्ता सर्वसाधारण के लिए खुला नही है, अवश्य खुला है। सर्वसाधारण के लिए आत्मकल्याण का सरल मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। प्रार्थना करने की लगन लगी है। परमात्मा की प्रार्थना मे मुझे अपूर्व आनन्द और अखण्ड शाति का शीतल एव पवित्र झरना बहता जान पडता है।

परमात्मा के नाम का स्मरण पाप के फल से बचने के लिए करना चाहिए या पाप से बचने के लिए अथवा फल भोगने मे धैर्य प्राप्ति के लिए।

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।' कृत कर्मो से उनका फल भोगे बिना छुटकारा नही मिल सकता। अतएव फल से बचने की कामना करना व्यर्थ है। इसके अतरिक्त कर्म करके उसके फल से बचने की कामना करना एक प्रकार की दीनता और कायरता है। अतएव नवीन कर्मो से बचने के लिए और पूर्वकृत कर्मो का समभाव के साथ फल भोगने की क्षमता प्राप्त करने के लिए ही भगवान का स्मरण करना चाहिए।

वास्तव मे जो जीव सम्यग्दृष्टि होते है वह परमात्मा के नाम का आश्रय लेकर दु ख से बचने की इच्छा नही करते किन्तु यह चाहते हैं–हे प्रभो! हम अपने पाप का फल भोगते समय व्याकुल न हो हमे घबराहट न हो और धैर्य के साथ पाप का फल भोगे।

इस प्रकार कष्टो को सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए परमात्मा का नाम स्मरण करोगे तो पाप का फल भोगने के पश्चात पापमुक्त हो सकोगे और आत्मकल्याण साध सकोगे।

परमात्मा पर प्रीति लाओ। [illegible] की [illegible] [illegible] रहो [illegible] उनकी प्रार्थना करके [illegible] अपने हृदय [illegible] [illegible] करो। [illegible] [illegible] [illegible] इस

बात पर ध्यान दिया, अगर तुमने अपना हृदय भगवान का मदिर बना लिया तो शीघ्र ही एक दिव्य ज्योति तुम्हारे अन्त करण मे उद्भूत होगी। उस ज्योति के सामने मे तुच्छ हू। यही नही, वरन् में भी उस ज्योति का उपासक हू। तुम भी उसी ज्योति की उपासना करो।

एक लक्ष्य पर पहुचने के साधन या मार्ग अनेक होते हें पर सर्वसाधारण के लिए जो मार्ग अधिक सुविधाजनक हो वही उत्तम मार्ग हे। आत्मशोधन के सबध मे भी यही बात हे। आत्मशोधन के अनेक मार्गों मे से भक्ति मार्ग पर प्रत्येक व्यक्ति चल सकता है। इस मार्ग पर जाने मे क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या अशक्त, क्या स्त्री क्या पुरुष किसी पर कोई प्रतिबन्ध नही है। प्रत्येक प्राणी भक्ति के मार्ग पर चल सकता हे ओर आत्म–कल्याण की प्राप्ति कर सकता है।

9 ऋषभदेव–स्तवन

श्री आदिश्वर स्वामी हो,
प्रणमू सिर नामी तुम भणी, प्रभु अन्तरयामी आप,
मो पर मेहर करीजे जो,
मेटीजे चिन्ता मन तणी, मारा काटो पुराकृत पाप।।श्री ।।
आदि धरम कीधी हो,
भरत क्षेत्र सर्पिणी काल मे, प्रभु जुगल्या धर्म निवार
पहला नरवर मुनिवर हो,
तीर्थंकर जिन हुआ केवली, प्रभु तीरथ थाप्या चार।।श्री ।।
मा मरुदेवी देव्या थारी हो,
गज होदे मोक्ष पधारिया, तुम जन्म्या हि प्रमाण
पिता नाभि महाराजा हो,
भव देव तणी करी नर थया, पछे पाम्या पद निरवाण।।श्री ।।
भरतादिक सौ नन्दन हो,
बे पुत्री ब्राह्मी सुन्दरी, प्रभु ए थारा अगजात
सघलाई केवल पाम्या हो,
समाया अविचल जोत मे प्रभु त्रिभुवन मे विख्यात।।श्री ।।
इत्यादिक बहु तार्या हो
जिणकुल में प्रभु तुम ऊपन्या काई आगम में अधिकार।।श्री ।।
अवर असख्य तार्या हो
उधार्या सेवक आपरा प्रभु सरणा आधार।।श्री ।।

1. ऋषभदेव

भगवान् ऋषभदेव को हम क्यो नमस्कार करते है? जो असख्य काल पहले हुए है, जिन्हे हमने और हमारी सात क्या, सात सौ पीढियो ने भी देखा नही है जिनका समय इतिहास से भी अतीत है, जिनका परिचय सिर्फ शास्त्रो मे ही पाया जाता है उन भगवान ऋषभदेव को नमस्कार करने का पयोजन क्या है? उन प्रभु का नाम सुनते ही हृदय मे उल्लास और भक्तिभाव क्यो उत्पन्न हो जाता है?

इन प्रश्नो का उत्तर यही दिया जा सकता है कि भगवान के पति हमारे हृदय मे अलौकिक प्रीति का भाव विद्यमान है। और यह अलौकिक प्रीति भी निष्कारण नही है। भगवान् ने जगत् को शाश्वत कल्याण का मार्ग बतलाया है। उनका ससार के ऊपर असीम उपकार है। उपकारी के उपकार को कोई सज्जन पुरूष नही भूल सकता। जो मनुष्य उपकार को उपकार न माने वह पशु से भी गया बीता है। प्यासे आदमी को गगा का शीतल जल मिल जाए तो उसे कितना आनन्द और कैसा सतोष होता है? मगर उसे यह भी समझना चाहिए कि गगा यही नही पैदा हुई है बल्कि आगे से लाई गई है। अगर हिमालय से गगा का आगमन न हुआ होता तो उसे शीतल जल कैसे मिलता? अतएव गगा के उत्पत्तिस्थान हिमालय आदि का भी उपकार माना जाता है। ऐसा मानना व्यवहार के अनुकूल है।

ठीक इसी तरह ससार से व्याकुल बना देने वाले सताप से सतप्त प्राणियो को अपूर्व शाति प्रदान करने वाली धर्मरूपी [illegible] हुई है इस [illegible] अवसर्पिणी काल मे इस धर्म-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]-

श्री आदिश्वर स्वामी हो प्रणमू

[illegible]

भगवान ऋषभदेव ने इस जगत मे जन्म लेकर धर्मरूपी वाणीगगा का शीतल–सतापसहारक स्रोत बहाया है। ऐसी स्थिति मे भगवान् ऋषभदेव का असीम उपकार मानना चाहिए या नही? कदाचित् कहा जाए कि धर्म के विषय मे भगवान ऋषभदेव का उपकार है, तो क्या जो बाते धर्म से पृथक समझी जाती है उनके विषय मे ऋषभदेव भगवान् का उपकार मानने की जरूरत नही है?

आप आप जिस विवाह के अवसर पर हर्ष मनाते और उत्साह दिखलाते हैं, उसे चलाने वाला कौन है, जिस व्यापार से पैसा पैदा करके आप शक्ति और सुख के साथ जीवन बिता रहे हैं, उसकी सर्वप्रथम शिक्षा देने वाला कौन है? जिस राज्यशासन के बिना एक घडी भी ससार मे शाति नही रह सकती, जिसके अभाव मे शातिपूर्वक धर्म की आराधना भी नही हो सकती, उस राज्यशासन को आरम्भ करने वाला कौन है?

"ऋषभदेव भगवान्!"

असल मे बात यह हे कि जिन कार्यों को हम व्यावहारिक अथवा सासारिक कहते हैं और जिनका धर्म के साथ कतई सबध नही समझते, उनमे भी अनेक कार्य ऐसे हैं जो परोक्ष रूप से धर्म मे सहायक होते हे। उदाहरण के लिए विवाह–सस्कार को ही लीजिए। विवाह सासारिक कृत्य है। यह सत्य होने पर भी क्या यह सत्य नही हे कि विवाह ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन करने मे सहायक हे? अगर विवाहप्रथा न रहे तो मनुष्य पशुओ से भी बुरी हालत मे पहुच जाये ओर धर्म–कर्म मिट्टी मे मिल जाये। राज्यशासन के सबध मे भी यही वात हे। राज्यशासन के बिना लूटपाट, चोरी–डकेती, व्यभिचार, खूनखराबा आदि के फेलाव को कौन रोक सकता हे? इन सब अनाचारो को रोकने के लिए शासन की अनिवार्य आवश्यकता रहती हे। इसीलिए राज्यशासन भी धर्मशासन का सहायक हे।

नीति के विना धर्म नही टिक सकता। भगवान् ऋषभदेव विशिष्ट ज्ञान के धारक थे। उन्होने इस तथ्य को भलीभाति समझ लिया था। अतएव उन्होने नीति और धर्म–दोनो की ही शिक्षा दी।

भगवान ऋषभदेव के उपकार का न मानने या भूल जाने क कारण ही आज जगत की दुर्दशा हो रही हे। अगर उनका उपकार मानकर उन्हे याद किया जाए ता मनुष्य पशु वनने स रुक सकता हे। मगर आज दुनिया उनक

उपकार को उनके आदर्शो को, उनके उपदेशो को भूल रही है। आज उनकी बताई हुई नीति का ह्रास हो रहा है। व्यवहार खान–पान, विवाह–शादी आदि के अवसर पर उस नीति को याद करते हो?

भगवान् ऋषभदेव ने दस प्रकार का धर्म बतलाया है। उन्होने एकदम से मोक्षमार्ग की स्थापना नही की, बल्कि पहले ससार नीति की स्थापना की है। यह बात जम्बूद्वीप–प्रज्ञप्ति सूत्र से भलीभाति प्रगट होती है।

उस समय ससार मे बडी ही विकट घटना घटी थी। कल्पवृक्षो ने सहायता देना बन्द कर दिया था और उस समय के लोगो को पता नही था कि अन्न कहा से लाए और प्राण कैसे बचाए? उस समय की इस भयानक मुसीबत की कल्पना करना भी कठिन है। ऐसे घोर सकट के समय भगवान ऋषभदेव सहायक न होते तो कौन जाने क्या स्थिति होती? मनुष्य मनुष्य को खाने लग जाता और न मालूम क्या–क्या कुकर्म होने लगते? मगर जिस समय ससार घोर कष्ट मे पड जाता है उस समय महापुरुष उसका त्राण करता है कष्ट–सागर मे पडी हुई नौका को वह पार लगा देता है।

उस समय की परिस्थिति बडी ही भीषण थी। देश मे त्राहि–त्राहि मची थी। आपत्ति मे कौन किसका सहायक होता है? विपदा के समय अपना शरीर भी वैरी हो जाता है। कोई किसी का सहायक नही था। उस समय की प्रजा का निर्वाह कल्पवृक्षो से होता था। मगर अब उन्होने अन्न वस्त्र देना बन्द कर दिया था। स्त्रिया मर्यादा भग करने लगी। किसी का किसी पर अनुराग नही रहा। ऐसी विकट परिस्थिति मे जब जीवन के लिए सबसे बडा सकट उपस्थित था भगवान ऋषभदेव ने आगे आकर सब को शाति प्रदान की। उन्होने लोगो को बतलाया कि कल्पवृक्ष की राह मत देखो। भीख मागना दीनता है। अब कर्मयुग का आरम्भ हुआ है। पुरुषार्थ करके जीविका उपार्जन करो यही तुम्हारे लिए हितकर और सुखकर है।

तुलसी कर पर कर धरो कर तल कर न करो।
जा दिन कर तल कर करो वा दिन मरण खरो।।

तात्पर्य यह है कि दान देना तो अच्छा है मगर दीनतापूर्वक दान लेने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर है ऐसा तुलसीदास जी का कथन है।

मागना और मरना बराबर है। अनुभव करो और अभ्यास करो तो पता चले। भगवान ऋषभदेव जी ने कहा– इस प्रकार [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

स्वाधीनता की आवश्कता हे। मे आप लोगो को भीख मागना छुडाकर दातार वनाता हू। आप पृथ्वी को दो तो वह आपको देगी। भीख मागना भूल जाओ।

अभी तक युगलिया कल्पवृक्ष से लेकर कल्पवृक्ष को वदले मे क्या देते थे?

'कुछ भी नही।'

विना उद्योग किए, पराया दिया खाते थे। तब उनमे बडी बात कहा से आती? पर भगवान् ऋषभदेव ने उन्हे उद्योग करने की शिक्षा दी। गीता मे जो कर्मयोग बतलाया गया हे, उसका तत्व ऋषभदेव से आरम्भ होता है।

ऋषभदेव ने लोगो को बतलाया कि तुम अब तक कल्पवृक्ष के भरोसे थे, किन्तु उद्योग करने से कल्पवृक्ष तुम्हारे हाथ मे ही आ जायेगा। मनुष्य अपने हाथ से उत्तम भोजन बना सकता है या नही? भगवान् ऋषभदेव ने लोगो को कृषि करना सिखला कर कहा कि तुम स्वय अपने हाथो से अच्छा–अच्छा भोजन बनाकर खा सकते हो।

आप लोग आज अच्छे–अच्छे भोजन किसके दिये खाते हे? सेठानी के दिये या नोकर के दिये? नही! अगर परम्परा को समझो तो यह ऋषभदेव का दिया भोजन हे। उन्होने ही इसको उत्पन्न करना ओर बनाना सिखलाया हे। लेकिन भगवान् ने भोजन की यह क्रिया जीवन कायम रखने के लिए बतलाई हे। आपका बडप्पन इसी मे हे कि केवल जीवन के लिए अन्न समझो। जीवन के लिए भोजन कर सकते हो, पर भोजन के लिए जीवन मत समझो।

ससार मे दो प्रकार के मनुष्य हे। दोनो मे जमीन–आसमान सरीखा अन्तर हे। एक प्रकार के मनुष्य जीने के वास्ते खाते हे। उन्हे जीने का अधिकार हे। अन्न सब प्राणी खाते हे। यह जीवन अन्नमय हे। साधुओ को भी अन्न खाना ही पडता हे। खाये विना जीवन नही रह सकता। दूसरे प्रकार के मनुष्य खाने के लिए जीते हे। जो खाने के लिए जीता हे वह हीनता का पकडे विना नही रहेगा। ससार मे जो जीने के लिए खाता हे वह अपने शरीर की रक्षा करता हे ओर जो खाने के लिए जीता हे वह शरीर ओर परलोक दोनो को विगाडता हे।

आज आपको खान–पीन कृषि ओर व्यापार आदि की स्वतन्त्रता हे वह ऋषभदेवजी की बतलाई हुई ह। उन्हाने ऐसी स्वतन्त्रता बतलाई हे जा मुक्ति प्राप्त करने क लिए समर्थ बना दती हे। इस कमभूमि का परिपूर्ण आरम्भ भगवान ऋषभदव स ही हुआ ह।

जिन ऋषभदव ने ससार का इतना महान उपकार किया हे। उनके लिए अब कुछ लोग कहते हे कि ऋषभदेव ने बडा पाप किया। जगत को पापमय देखने वाले यह एकान्त पापवादी लोग जगत के सारे पाप उन पर ही डाल देते हे। कहते हे– व्यापार ओर खेती करना विवाह–शादी करना, मकान बनवाना आदि सभी पाप के काम ऋषभदेव जी ने ही बतलाये है अत इन सब पापो के फलस्वरूप उन्हे बारह महीनो तक आहार नही मिला और एक हजार वर्ष तक तपस्या करनी पडी।

मित्रो! यह चर्चा गूढ हे। भगवान ऋषभदेवजी को बहुत कष्ट सहना पडा यह सही नही है। छह महीनो तक तो उन्होने भोजन ही नही करना चाहा था ओर छह महीने तक विधिपूर्वक भोजन न मिलने के कारण वह निराहार रहे। उन्होने ससार को पूर्वोक्त कार्य सिखलाये, इससे यदि पाप हुआ तो पुण्य भी कुछ हुआ या नही? अगर भगवान जीविका का उपाय न समझाते तो न जाने कितना अनर्थ होता! मनुष्य मनुष्य को खा जाता और ससार नरक बन जाता। मित्रो! फिर कोरा पाप ही पाप क्यो गिनते हो ओर पुण्य की गिनती ही नही करते! खर्च को नामे लिखते हो ओर जमा को छिपाने की चेष्टा करते हो? कलकत्ते मे आपका मुनीम हो। उसका खर्च तो लिख लो मगर उसने जो कमाई की हे, उसे जमा न करो तो क्या हिसाब बराबर कहा जायेगा?

नही।'

लेकिन यह बात जाने दीजिए। जरा इस बात पर विचार तो कीजिए कि भगवान् ऋषभदेव क्या आप लोगो से भी कम ज्ञानी थे? आपको जिस काम मे एकान्त पाप ही पाप नजर आता हे, उसमे क्या भगवान् को नजर नही आया होगा? फिर वे जान–बूझकर ऐसा क्यो करते? भगवान् ऋषभदेव की नीयत क्या थी? बिगाडने की थी या सुधारने की? बिगाडने और सुधारने वाले की नीयत एक–सी हे? भाइयो नीयत को देखो। प्रत्येक कार्य का फल नीयत पर निर्भर होता हे।

कार्य का फल नीयत पर किस प्रकार निर्भर हे, इस विषय मे एक उदाहरण प्रसिद्ध हे। वह इस प्रकार हे–

दो मित्र थे। उनमे से एक ने कहा–फला जगह की वेश्या बहुत अच्छी हे। आज ही महफिल मे उसका नाच देखने चले। बडा मजा आयेगा।

दूसरे ने कहा– आज एक महात्मा भी पधारे हे। उनका धर्मोपदेश सुनने चलना अच्छा हे। इससे जीवन की उन्नति होगी ओर आत्मा का कल्याण होगा।

इस प्रकार दो मित्रो की दो प्रकार की मति हुई। एक वेश्या की महफिल मे जाना चाहता है ओर दूसरा साधु के व्याख्यान मे। इन दोनो की मति पर विचार करके नीयत का प्रभाव देखिए।

दोनो मित्र अपने–अपने अभीष्ट स्थान पर गये। दूसरा मित्र जब साधु के पास गया तो वहा वैराग्य की रूखी बाते हो रही थी। फला चीज का त्याग करो, इस काम मे पाप है, उस काम मे पाप है इस प्रकार की बातो के सिवाय कहा राग–रग की बाते कहा से होती? उन बातो को सुनकर वह सोचने लगा–कहा आकर फस गये! यहा तो सभी बाते रूखी ही रूखी हे। मेरा मित्र तकदीर वाला निकला जो महफिल मे बैठा गाना सुन रहा होगा। मे वृथा यहा आ गया। इस प्रकार उसकी भावना मे विकार आ गया।

मित्रो! क्या पलटा? साधु पलटे या व्याख्यान पलटे?

'नीयत पलटी।'

पहला मित्र जो, वेश्या के यहा गया था, तरह–तरह के मनुष्यो को आते देख ओर वेश्या के घृणित ओर लज्जाजनक हाव–भाव देखकर तथा आने वालो की नीच मनोवृत्ति पर विचार करके पछताने लगा। उसने सोचा वेश्यावृत्ति कितनी नीच हे! वेश्या ने अपना शरीर पेसो के वास्ते बेच दिया हे। इसका यह नाच–गाना ओर हाव–भाव पेसो के लिए ही हे! वास्तव मे वेश्या किसी की सगी नही–पेसो की हे। जेसे मृत कलेवर पर कुत्ते पडते हे, उसी प्रकार इस पर मूर्ख लोग पडते हे ओर सभी समझते हे कि यह मेरी हे! चाहे कोई रोगी हो या कोढी हो, किसी की सगति इसके लिए वर्जनीय नही हे। यह नारी के रूप मे साक्षात् नरक हे। में इस नरक मे क्यो आ फसा? मेरा मित्र भाग्यवान हे जो मुनिराज का व्याख्यान सुनकर अपना जीवन धन्य बना रहा होगा।

अव जरा इसकी नीयत पर विचार कीजिए। ऐसी नीयत रखने वाले को वेश्या के पास जाने पर भी पाप हुआ या पुण्य?

'पुण्य!

नीयत पलटने से पाप भी पुण्य के रूप मे परिणत हो गया। एक साधु के पास जाकर ओर व्याख्यान सुनकर भी पाप मे पडा ओर दूसरा वेश्या के पास जाकर भी पुण्य का भागी हो गया। अतएव यह सच्चाई कभी नहीं भूलनी चाहिए कि पाप ओर पुण्य हृदय की भावना पर निर्भर हे। कहा हे–

मन एव मनुष्याणा कारण बन्ध–मोक्षयो ।

अर्थात् बन्धन और मुक्ति का प्रधान कारण मन है।

श्री आचारांग सूत्र मे कहा गया है–

'जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा।

अर्थात्– नीयत के कारण बन्ध के स्थान भी सवर के स्थान हो जाते हैं और सवर के स्थान भी आस्रव के स्थान हो जाते हैं।

जो लोग भगवान् ऋषभदेव को पाप लगना कहते हैं वे स्वय कितने ज्ञानी हैं? उन्हे कितना ज्ञान है जो भगवान् ऋषभदेव का पाप देखने लगे हैं? क्या ऋषभदेवजी ने खोटी नीयत से काम किया था? जरा उस समय की परिस्थिति पर विचार करो। ऋषभदेवजी ने सबको गडढे मे गिरने से बचा लिया–ससार को मुसीबत से छुटकारा दिलाया। तो क्या यह एकान्त पाप हुआ? जबान मिली है तो जरा सोच–विचार कर बोलना चाहिए अन्यथा जबान मिलना मुश्किल हो जायेगा। भगवान् ऋषभदेव ने अनीति छुडाकर लोगो को नीति का मार्ग बतलाया पाप से बचाकर कल्याण के मार्ग पर लगाया। उन्होने किसी का अकल्याण नही किया और न अकल्याण करने की भावना को ही हृदय मे स्थान दिया। फिर उन्हे किस प्रकार का एकान्त पाप लगा यह समझ मे नही आता। अपनी खोटी जिद पर अडकर भगवान को पापी बनाने वाले को क्या कहा जाय।

मित्रो! अपने मन मे विचार करो कि ऋषभदेव अगर विवाह का नियम न बतलाते तो नर और नारियो की हालत क्या कुत्तो और कुत्तियो सरीखी न हो जाती? अगर विवाह करने से ही पाप होता है और विवाह न करने वाला ही धर्मात्मा होता है तो कुत्ता–कुत्तियो का विवाह कहा होता है? फिर उन्हे धर्मात्मा और ब्रह्मचारी कहना पडेगा। वह विवाह न करके भी क्या ब्रह्मचर्य पालते है?

नही।

भगवान के अनन्त नाम ओर अनन्त गुण हे। उनका कोई पार नही पा सकता। देहधारी की तो बात ही क्या हे देवो का गुरु कहलाने वाला बृहस्पति भी पार नही पा सकता। जब बृहस्पति भी पार नही पा सकते तो हम केसे पार पा सकते है? फिर भी जितनी प्रार्थना हो सकती हे या होती है वह आत्मा के विकास का सहारा है। जिस तरह सूर्य से कमल विकसित और प्रफुल्लित होता है, उसी तरह परमात्मा की प्रार्थना से हृदयकमल खिल जाता है। आत्मा अपूर्व आनन्द अनुभव करने लगती है। इसीलिये ज्ञानियो ने कहा हे–

श्री आदिश्वर स्वामी हो, प्रणवो सिर नामी तुम भणी।

यहा तक प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के विषय मे जैनशास्त्र के अनुसार थोडा सा कथन किया गया हे। अब जरा ओर सामान्य विचार करना आवश्यक हे।

भगवान् पार्श्वनाथ शातिनाथ ओर महावीर के गुणो का अभ्यास सब को होते हुए भी विशेषत जेन ही उनका नाम लेते हैं परन्तु ऋषभदेव का नाम ऐसा हे, जिससे जेन ही नही बल्कि हिन्दूमात्र के हृदय मे जागृति होती हे।

भगवान् ऋषभदेव ने ही सबसे पहले इस अन्धकारमय जगत् मे प्रकाश किया हे। इसे भरतक्षेत्र मे असत् से सत् की ओर ओर अन्धकार से ज्योति की ओर ओर मृत्यु से अमृतत्त्व की ओर ले जाने वाले भगवान ऋषभ ही हुए ह। इसी कारण उनके विषय मे जेन साहित्य मे कहा हे–

आदि धरमनी कीधी हो, भरतक्षेत्र सर्पिणीकाल मे,
प्रभु जुगल्या धर्म निवार।

इस छोटे से पद मे हजारो श्लोको की महिमा भरी हे। प्रार्थना ऐसी ही होनी चाहिए। प्रार्थना मे विस्तार की नही, सग्रह की ही आवश्यकता हे।

इस पद मे यह बतलाया गया हे कि इस भरतक्षेत्र मे मोजूदा अवसर्पिणी काल मे ऋषभदेव ने धर्म का प्रकाश किया। जुगलिया म स्वाभाविक कर्म नही था इससे धर्म भी नही था। यद्यपि बिना कर्म के कोई जी नही सकता परन्तु उस समय असि मषि ओर कृषि कर्म नही था। जेरा आज जगली जीव वृक्षो के फल आदि खाते ओर उन्ही क नीचे निवास करत हे इसी प्रकार युगलिया लोगा की आवश्यकताए कल्पवृक्षा रा पूरी हाती थी। इस प्रकार उनम कर्म (पुरुषार्थ) नही था आर धर्म भी नही था। बिना कर्म क धर्म नहीं आर बिना धर्म क माक्ष नही। भगवान ऋषभदय न सर्वप्रथम कर्म सुधारा आर फिर धर्म का प्रकाश किया।

नैतिक जीवन के अभाव मे धर्म नही रह सकता। नैतिक जीवन परतन्त्र हुआ और गुलामी मे फसे कि धर्म भी चला जाता है। गुलामो का धर्म गुलामी है। जिस पकार गुलामो को इज्जत का ख्याल नही रहता, उसी पकार धर्म का भी ख्याल नही रहता। भगवान् ऋषभदेव ने जुगलियो को सबसे पहले स्वतन्त्र बनाकर शिक्षा दी कि कल्पवृक्षो के पति भिखारी मत बनो। यह भीख मागना छोडे बिना धर्म की पात्रता नही पाप्त हो सकती।

खेद है कि आज बहुत से हट्टे–कट्टे अनधिकारी व्यक्ति भी भीख मागते देखे जाते है। ऐसे लोग धर्म का क्या पालन करेगे। जिन्हे कर्म–अकर्म का भान नही है जिन्हे नैतिक जीवन बिताने की परवाह नही है, वे धार्मिक जीवन व्यतीत करना कैसे जान सकेगे?

भगवान ऋषभदेव ने कल्पवृक्षो से भीख मागना छुडाकर दूसरो से भीख मागना क्यो नही सिखाया? अगर कल्पवृक्षो ने देना बन्द कर दिया था तो क्या हुआ। भगवान ऋषभदेव तो समर्थ पुरुष थे। उन्होने कल्पवृक्षो के समान ही दूसरा कोई प्रबन्ध क्यो नही कर दिया? इसमे बडा गम्भीर रहस्य है। बिना गहरा विचार किये उस रहस्य को नही समझा जा सकता।

एक आदमी भीख मागकर अपना जीवन–निर्वाह करता है और दूसरा उद्योग करके मेहनत–मजदूरी करके खेती नौकरी व्यापार आदि से जीवन व्यतीत करता है इन दोनो मे किसका जीवन अच्छा है?

'उद्योग करने वाले का।

भीख मागने वाले की आत्मा इतनी गिरी हुई होगी कि उसमे सत्य नही ठहरेगा जबकि उद्योग करने वाले का जीवन तेजस्वी होगा?

यही विचार करके भगवान् ऋषभदेव ने सबसे पहले युगलियो को स्वतन्त्र बनाया। जब वे स्वतन्त्र हो गये और उनमे स्वतन्त्रता का तेज फूटने लगा तब भगवान ने प्रभावशाली धर्म प्रकट कर दिया। वास्तव मे स्वतन्त्रता के बिना आत्मज्ञान की ज्योति पकट नही होती। इसलिए भगवान ने परतन्त्रता को धर्म मे बाधक जान उसे हटाकर ससार को कल्याण का मार्ग बतलाया।

श्रीमद्भागवत मे वेदव्यास जी ने ऋषभदेव भगवान के विषय मे लिखा है –

नित्यानुभतनिजलाभनिवृत्ततृष्ण
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धे ।
लोकस्य य करुणयाभयमात्मलोक–
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ।।

जिसे वेदव्यास जी नमस्कार करे उसे कोन हिन्दू नमस्कार नही करेगा? वेदव्यास जी कहते हैं—में उन ऋषभदेव को नमस्कार करता हू जिन्होने नित्य आत्मानन्द प्राप्त कर लिया हे अर्थात केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। केवलज्ञान प्राप्त करने से यह गुण हुआ कि मोह ओर तृष्णा का विलय हो गया। मोह ओर तृष्णा को जीतकर भगवान् परमानन्दमय हो गये।

भ ऋषभदेव स्वय परमात्मरूप हो गये यह तो उनका स्वय का ही विकास और हित हुआ। पर हमे यह भी देखना चाहिए कि उनसे ससार का भी कुछ हित हुआ या नही? इसके लिए में कई बार कह चुका हू कि जो हमको प्रकाश न दे वह सूर्य नही, जो प्यास न बुझावे वह पानी नही अर्थात् उपकार करने के कारण ही इनका महत्त्व है। फिर जिन्हे हम तीर्थंकर कहते हैं, परमात्मा मानते हैं, वह यदि हमारा कल्याण न करे तो उन्हे हम परमात्मा केसे माने?

ऋषभदेव भगवान् के विषय मे वेदव्यासजी कहते है कि उन्होने ससार पर कृपा करके निजानन्द को प्रकट करने का सतत उपदेश दिया ओर अपना मोह जीत कर ससार को मोह जीतने का आदर्श ही नही समझाया वरन उपदेश भी दिया। उन्होंने कहा—मत डरो। निर्भय होओ। इस आत्मा मे तुमने ही भय उत्पन्न किया हे। वास्तव मे आतमा को कोई भय नही हे।

लोग डराने से डरते हे। आजकल मनुष्य साप सिह आदि स भी सभवत उतना न डरते होगे जितना मनुष्य स ही डरते हैं। लोगो ने अपनी स्मृति को विशाल वना लिया हे। जिस भूत को कभी देखा नही, अपनी कल्पना से उसका भी निर्णय कर डाला ह।

मारवाड के भाई—वहिनो को दखो तो उनमे विरल ही मिलेग जिनक शरीर पर तावीज गडे या डोर न हो। उनकी समझ से तावीज आदि क कारण भूत नहीं लगता! मगर जो भय भूतरूप होकर भीतर घुस गया ह वह इन तावीजो से केसे निकल?

भय क भूत स धूर्तों की शक्ति ऐसी वढ गई हे कि उस शक्ति क आगे अर्थात धूर्तों द्वारा भ्रम म डाल दने स परमात्मा की भक्ति का प्रभाव पडना मुश्किल हो रहा ह। वहिनो को तो अपनी छाया मे ही भूत दिखाई देता ह। जहा चार वहिनें इकट्ठी हुई वहा यही चर्चा चली। मतलब यह ह कि मनुष्यो ने अपने आपके लिए आप ही भय पैदा कर लिया ह। इसीलिए भगवान कहते

है– जितो भयान। साराश यह हे कि डरो मत। अपनी आत्मा को निर्भय बनाओ। इस तरह भगवान् ने आत्मा को अभय देने का उपदेश दिया हे। अन्य ग्रन्थो मे भी लिखा है–

'वर्द्धते भी ।'

तुममे डर बढ रहा है। उसे निकाल फैको और अभय हो जाओ।

आज अनेक भाई और बहिने अपने बालको को केवल रोना बन्द करने के लिए या अन्य प्रयोजन के लिए डराते है। उन्हे मालूम नही है कि इस तरह डराने का परिणाम क्या होता है? अभी से बच्चे डरपोक होते जाते है और समझ आने पर पहले के सुने हुए शब्दो का सस्कार अपना काम करते है। अर्थात् आगे चलकर बालक खूब डरपोक बन जाता है। मे पूछता हू, आपने कभी अपनी नजर से भूत को देखा है?

नही।'

नही देखा है। फिर भी तुमसे यदि कोई कहे कि सौ रुपये लेकर आधी रात को श्मशान मे चले जाओ तो कितने भाई तैयार होगे?

सौ मे से पाच–चार।'

वयो? इसीलिए कि यद्यपि तुमने भूत नही देखा है, फिर भी बालकपन का भूत का सस्कार डरा रहा है।

मै यह नही कहता कि भूत या देवता है ही नही। परन्तु प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा है कि जो भूत से डरता है वह मरता है और जो नही डरता भूत उसकी सेवा करता है।

जिती भवान वर्द्धते भी ।

अर्थात तुम हार गये वयोकि तुम्हारे हृदय मे भय का निवास हो गया है।

मा हन मा हन का पाठ तुम सुनते हो। इसमे सभी का समावेश हो गया या नही? फिर तुम दूसरो को अभयदान देने को कहते हो परन्तु अपनी आत्मा को वयो भयभीत बनाये हो? पहले अपनी आत्मा को अभयदान दो अर्थात अपने भीतर भय मत रहने दो।

आज कई एक साधुओ ओर सतियो को भी जन्तर–मन्तर पर भरोसा है परन्तु यह भरोसा आत्मा को गिराने वाला हे। जनसिद्धात मे भय को कही स्थान नही दिया गया है।

थोडी देर के लिए मान ले कि ससार मे भय का स्थान है परन्तु कही निर्भय स्थान भी है या नही? यदि है तो निर्भय स्थान को छोडकर भयस्थान मे क्यो पडते हो?

आप अभयदायाण का रोज पाठ करते है परन्तु उस पर विश्वास नही है। अभयदान का दाता मिलने पर भी अभयदान न लेकर भय का ही सग्रह करो, यह कौन–सी बुद्धिमानी है? आपको विश्वास होना चाहिए कि मैने परमात्मा को प्राप्त किया है, फिर डर किसका है? हृदय मे ऐसी निर्भीकता आये बिना काम नही चल सकता।

वेदव्यास कहते है कि भगवान ऋषभदेव ने ससार को अभयदान दिया है। लोग निर्भय होकर विचरने लगे।

शास्त्र मे कहा है– 'असाहिज्जा देवा।'

यह पाठ कितना जोरदार है। परन्तु जिसके हृदय मे भ्रम है उसके लिए यह पाठ किस काम का? जिसके हृदय मे कायरता बस गई है, उसके लिए वीरता का उपदेश काम नही आता। आपको अपने अन्त करण से भय का सस्कार निकालकर निर्भयता लानी चाहिए। इतना न कर सको तो भी कम से कम इन कोमल–मति बालको के हृदय मे तो भय का सचार मत करो।

जिस कृष्ण के विषय मे यह कहा जा सकता है कि उन्होने जनमते ही पूतना को मार डाला था, उन्ही कृष्ण का भजन करते हुए भी लोग डाकिनी से डरते हें यह कितनी लज्जा की बात हे। जब तक आप लोगो के दिल से ऐसा मिथ्या भय नही जायेगा परमात्मा का पता लगना मुश्किल हे।

प्राचीनकाल के श्रावक देवता गन्धर्व, राक्षस आदि किसी से नही डरते थे। दो उगलियो पर जहाज उठाकर देवता आकाश मे ले गया और उसने वही से पटक देने का भय दिखाया। तब भी श्रावक के हृदय मे भय का सचार नही हुआ। सुदर्शन सेठ श्रावक ने अर्जुनमाली के मुद्गरो का जरा भी भय नही खाया इसका क्या कारण हे? प्राचीनकाल के श्रावक इतने निडर और आजकल के श्रावक इतने डरपोक क्यो हे? इसमे क्या रहस्य हे? इसमे रहस्य यही हे कि पहले ऐसे शब्द सुनाये जाते थे ऐसी शिक्षा दी जाती थी कि राक्षस के सन्मुख दिखाई देने पर भी भय नही होता था। इसके विपरीत आज ऐसे शब्द सुनाये जाते हें ऐसे सस्कार डाले जाते हे कि लोग कल्पना के भूत से भी भयभीत हो जाते हे। निर्ग्रन्थ प्रवचन के मानने वाले श्रावक इस प्रकार डरपोक हो यह कितनी कायरता हे।

पहले के लोग डरना तो दूर रहा वरन सहधर्मी की सेवा करके पुण्य बाधते थे और अब नगण्य बात के लिए सहधर्मी की ही खराबी करने को तैयार हो जाते हे। और चाहे कोई स्वार्थ हो या न हो केवल रोष मे आकर सहधर्मी को हानि पहुचाने के लिए कटिबद्ध हो जाते हे। ऐसे लोग अगर

समकित पावे तो भी तो कैसे पावे? भाइयो, इस बात की प्रतिज्ञा करो कि कम से कम अकारण किसी सहधर्मी को या किसी भी अन्य मनुष्य को कष्ट न देगे।

जो बिना कारण दूसरे की जड काटने को तैयार रहता है, उस आत्मा को अभय बनाने का उपदेश किस प्रकार लग सकता है? बिना मतलब दूसरे का अनिष्ट करके क्रोध का पोषण करना कितना अनुचित है इस बात का विचार करो।

पाचीनकाल मे मतलब होने पर भी काका और भतीजे दिन भर युद्ध करते और रात को एक दूसरे की सेवा करते थे। मेवाड के पृथ्वीराज और सूरजमल को देखो। वे दिन भर लडते और रात को एक साथ भोजन करके एक दूसरे के घावो पर पट्टी बाधते थे और आगामी दिन के लिए सावधान रहने की आगाही करते थे। एक वह भी मनुष्य थे और एक आप है कि कर तो कुछ भी नही सकते, फिर भी औधा–सीधा करने की नीयत रखते है। इसी प्रकृति के कारण आपका क्षत्रियत्व चला गया और कायरता आ घुसी है।

दो कुत्ते आपस मे लडते है। उनमे जो छोटा और निर्बल होता हे वह हार कर बडे का कुछ बिगाड नही कर सकता, इसलिए छोटे–छोटे पिल्लो पर ही अपना क्रोध निकालने लगता है। यही स्थिति आज मनुष्य–ससार मे दिखाई देती है। जो बडो का कुछ बिगाड नही सकते उनसे तो हार मान जाते है वे गरीबो पर या स्त्री–बच्चो पर टूट पडते है। मगर यह लक्षण वीरता का नही कायरता का है। मै आशा करता हू कि यह बात कभी न कभी आप लोगो के हृदय मे आएगी और आपको कल्याण का मार्ग सूझेगा। मे अपनी इसी आशा के सहारे अपने हृदय के उदगार आपके पास तक पहुचा रहा हू। मित्रो! अपने मन को उच्च कोटि पर लाओ तो कल्याण जल्दी होगा। वेदव्यास कहते है–

नित्यानुभूतिनिजलाभनिवृत्ततृष्ण,
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धे।
लोकस्य य करुणयाभयमात्मलोक–
मारव्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै।।

बहुत दिनो से सोये हुए लोगो को जगा दिया। जिस धर्म का अठारह कोडी वर्षो से लोप हो गया था उस धर्म को भगवान ऋषभदेव ने फिर प्रकट किया।

(2)

करू मै सेव ऋषभदेव प्रथम जिनन्दा,
मरुदेवी मात तात नाभि के नन्दा।। करु।।

भगवान् ऋषभदेव की इस प्रार्थना मे अपूर्व बात मिलती हे। इस पर यहा विचार करना है। इस भजन के द्वारा आत्मा को शिक्षा दी गई हे कि–

करूं मैं सेवा ऋषभदेव प्रथम जिनन्दा।

हे आत्मन्! मै भगवान् ऋषभदेव की सेवा करने का निश्चय करता हू। वे ऋषभदेव कौन हैं?

मरुदेवी मात तात नाभि के नन्दा।

वे महारानी मरुदेवी की आखो के तारे ओर महाराज नाभि के कुल के चन्द्रमा हैं।

इनकी सेवा करने से क्या लाभ है? इस प्रश्न पर जरा विचार कीजिए। सेवक ओर सेव्य मे भेद है। जो सेवा करता हे वह सेवक कहलाता हे ओर जिसकी सेवा की जाती हे वह सेव्य कहलाता हे।

प्रश्न हो सकता हे कि सेवा तो प्रत्येक की करनी चाहिए। जो सेवक हे वह सेव्य ओर असेव्य का भेद क्यो करे? फिर जो सेवा–आराधना करने के योग्य हो उसी की सेवा की जाय अन्य की नही इस प्रकार का भेदभाव करना तो उचित नही हे। हा जिसको सेवा की आवश्यकता हे उसकी सेवा पहले करनी चाहिए। उदाहरणार्थ एक आदमी सशक्त हे ओर दूसरा असशक्त हे तो सेवाधर्मी मनुष्य पहले असशक्त की सेवा करेगा क्योकि उसे सेवा की आवश्यकता हे।

मान लीजिए कि माता के पाच पुत्र हैं। उनमे एक छाटा हे जो पडा रहता है ओर उसमे खाने की शक्ति नही हे दूसरा रोगी रहने से अशक्त हे तीसरा अपग या अन्धा हे चोथा शक्तिमान् हे किन्तु उसकी शक्ति का अभी विकास नही हुआ हे पाचवा शक्तिमान भी हे ओर उसकी शक्ति का विकास भी हो चुका हैं। माता की भावना सभी पुत्रा पर समान हे। वह पाचा की सवा करगी किन्तु जो अशक्त हे– असमर्थ हें उनकी सवा पहल करगी।

सवा के मुख्य दो प्रयाजन हे–अशक्त की सवा अशक्त का शक्ति देन के लिए की जाती ह दूसर प्रकार की सेवा का प्रयाजन यह हाता हे कि मै स्वय अशक्त हू इसलिए मुझ शक्ति मिल। भगवान् की सवा उन्हे अशक्त समझकर नहीं की जाती वरन अपने को अशक्त मानकर शक्ति का प्राप्त करन के लिए की जाती हें।

[illegible] सूर्य का देखन वाला की गरज नही ह बल्कि देखन वाला का ही सूर्य की गरज ह सरोवर का प्यास की जरूरत नही ह बल्कि प्यास का [illegible]

सरोवर की जरूरत है कपडे को पहनने वाले की परवाह नही वरन् पहनने वाले को ही कपडे की आवश्यकता है, इसी प्रकार भगवान् को भक्त की, सेवक की गरज नही किन्तु भक्त को ही भगवान की आवश्यकता है। तात्पर्य यह कि जब जगत् के इन छोटे–छोटे पदार्थ को ही तुम्हारी गरज नही है तो जगत् के नाथ जगदीश्वर भगवान् को तुम्हारी क्या गरज हो सकती है?

प्यासे को सरोवर की आवश्यकता है, किन्तु जिस सरोवर मे जल हो उसी की आवश्यकता रहती है निर्जल सरोवर से प्यासे का प्रयोजन पूरा नही होता। इसी पकार जो कपडा, कपडा पहनने का प्रयोजन पूरा करता है, उसी की अपेक्षा की जाती है। साराश यह कि साधारणतया जीवनोपयोगी पदार्थो के व्यवहार मे भी इस बात की अपेक्षा रखी जाती है कि वे हमारे प्रयोजन को पूरा करे। इस प्रकार जब इन पदार्थो की भी छानबीन की जाती है तो क्या इस बात की छानबीन नही करनी चाहिए कि अनादि काल से अशक्त और दु खो का पात्र बनी हुई इस आत्मा को किसकी सेवा से लाभ होगा? इसीलिए कहा है।

हे प्रभो! अनादि काल से मेरे गले मे यम की फासी पडी हुई है। काल चौरासी के चक्कर मे घूम रहा हू। अब आप अपनी भक्ति मुझे दीजिए। जिससे मै–

करू मै सेव ऋषभदेव प्रथम जिनन्दा
मरुदेवी मात तात नाभि के नन्दा।।

जिस कठ मे आदिनाथ की भक्ति है उस कठ मे यम की फासी नही लग सकती। अब तक के जन्म–मरण का कारण यही था कि जिसकी भक्ति करनी चाहिए थी उसकी भक्ति नही की और जिनकी भक्ति की वे स्वय जन्म–मरण के चक्कर मे पडे हुए थे। पभो! मेरी अपनी शक्ति से बन्धन नही टूटे है। इसलिए मै आपकी भक्ति चाहता हू।

मित्रो! वेदव्यास ने भी जिनकी प्रार्थना की है वही भगवान ऋषभदेव तुम्हारे फन्दे को काटने मे समर्थ है। तुमने भगवान् ऋषभदेव की भक्ति की होती तो अवश्य यम के फन्दे से मुक्त हो गये होते। मगर तुम तो उनकी भक्ति मे लगे रहे जो स्वय जन्म–मरण से नही छूटे है। ऐसी स्थिति मे तुम्हारा छुटकारा कैसे होता?

सूर्य तो नित्य उदित होता है। उसका प्रकाश पाकर जिन्हे काम करना हो कर ले। इसी पकार परमात्मा की लोकोत्तर शक्ति के सहारे आत्मा का कल्याण करना हो तो कर लो। जो अवसर मिल गया है सम्भव है फिर कभी न मिले।

अवसर बार–बार नहि आवे।

2. भगवान् अजितनाथ

प्रार्थना

(कुविसन मारग माथे रे धिग–धिग वह देशी)

श्रीजिन अजित नमूं जयकारी, तू देवन को देवजी।
जितशत्रु राजा ने विजया राणी को, आतमजात तुमेवजी।।
श्रीजिन अजित नमू जयकारी।।1।।
दूजा देव अनेरा जग मे, ते मुझ दाय न आवेजी।
तह मन तह चित्त अपने, तू हिज अधिक सहावे जी।।2।।
सेव्या देव घणा भव–भव मे, तो पिण गर्ज न सारीजो।
अब के श्री जिनराज मिल्यो तू पूरण पर–उपकारी जी।।3।।
त्रिभुवन मे जस उज्ज्वल तेरी फैल रह्यो जग जानेजी।
वन्दनीक पूजनीक सकल को, आगम एक बखानेजी।।4।।
तू जग जीवन अन्तरयामी प्राण आधार पियारोजी।
सब विधि सायक सत सहायक भक्ति–वत्सल व्रत थारोजी।।5।।
अष्टसिद्धि नवनिधि को दाता तो सम ओर न कोई जी।
बधे तेज सेवक को दिन दिन जेथतेथ जय होईजी।।6।।
अनन्त ज्ञान–दर्शन सम्पत्ति ले ईश भयो अविकारीजी।
अविचलभक्ति 'विनयचद' को दो जाणुरीझ तुम्हारी जी।।10।।

परमात्मा के एक–एक नाम में एक एक अपूर्व गुण भरा हुआ है। उस नाम का स्मरण करने से उस गुण का स्मरण हो जाता है और प्रार्थना करने में विशेष सुविधा होती है। भगवान का अजितनाथ नाम भी एक अपूर्व गुण शक्ति का स्मरण कराने वाला है। उनके नाम में क्या यथार्थता है यह बात समझ लेने से कीर्तन–भजन करने वाले को उस नाम के बहुत से गुण आसानी से समझ में आ सकते हैं।

अजित का अर्थ है–जयकारी। जो किसी के द्वारा जीता न गया हो और जिसने सबको जीत लिया हो जिसकी विजय चरम और परम विजय हो वह अजित' कहलाता है।

कोई मनुष्य लडाई करके किसी को जीत लेता है तो वह एक को जीतने वाला कहा जाता है, ससार को जीतने वाला नही। इसके अतिरिक्त विजेता ने जिस एक को हराया है, उस हारे हुए व्यक्ति के हृदय मे विजेता के प्रति विद्वेष का भाव उत्पन्न हो जाता है। वह दिन–रात सन्ताप किया ही करता है। अतएव एक को जीतना भी वास्तविक जीतना नही है। विजेता की सच्ची विजय वह है जिसमे पराजित व्यक्ति विजेता के प्रति मनसा, वाचा, कर्मणा वैरभाव न रखे। अर्थात् पराजित विजयी का चेरा बनकर उसका गुण–गान करने लगे। यही जीतना सच्चा जीतना है। 'अजित' ऐसे ही विजेता है। पर अजित की व्याख्या इतने ही मे पूर्ण नही हो जाती। उसकी व्याख्या के लिए काफी समय की आवश्यकता है।

मैने जिनकी प्रार्थना 'जिन अजित' कह कर की है उन्होने राग–द्वेष को पूरी तरह जीत लिया है और राग–द्वेष को जीतने के कारण ही उनका नाम अजित है।

अर्जुन माली, सुदर्शन सेठ का शत्रु था, परन्तु सुदर्शन सेठ ने उसे जीत लिया। उनके जीतने की पद्धति निराली ही थी और वह यह थी कि सुदर्शन अपने हृदय मे अर्जुन माली के प्रति किचितमात्र भी द्वेष नही लाये। यही नही बल्कि पहले दो करण तीन योग से द्वेष का त्याग था, पर मुकाबले के समय तीन करण और तीन योग से द्वेष का त्याग कर दिया। अर्जुन सुदर्शन को मारने चला था परन्तु उसी का क्रोध मारा गया।

इसे कहते है विजय। अहिसा की प्रबल भावना के द्वारा जो विजय प्राप्त की जाती है वह विजय अन्तिम और परिपूर्ण होती है तथा विजेता और विजित दोनो के कल्याण का द्वार खोल देती है। उस विजय मे विजेता तो विजयी होता ही है पराजित होने वाला भी विजयी होता है। वहा सघर्ष का उपशम ही नही विनाश हो जाता है और विजेता तथा विजित–दोनो मे मगलमय मैत्री की स्थायी स्थापना होती है।

सुदर्शन को भलीभांति ज्ञात था कि एक आत्मा दूसरी आत्मा का शत्रु नही हो सकती। शत्रुता करना आत्मा का विभाव है–विकार है, वस्तुतः आत्मा के दुर्गुण ही शत्रु है। आत्मा तो स्वभावतः प्रत्येक दशा मे [illegible]

क्रोधरूपी शत्रु का यदि क्रोध से ही बदला लिया जायेगा तो शत्रुता बढेगी, घटेगी नही। कीचड से भरा हुआ पैर कीचड से साफ नही होता, इसी प्रकार क्रोध से क्रोध की उपशाति नही होती। शास्त्र मे कहा है–

उवसमेण हणे कोह।

अर्थात् उपशान्त होकर क्रोध को जीतना चाहिए।

जब तुम अपने क्रोध को जीत लोगे तो तुम्हारे विरोधी का क्रोध आप ही समाप्त हो जायेगा। जैसे अग्नि को ईंधन न मिलने पर वह आप ही शात हो जाती है, उसी प्रकार क्रोध को क्रोध का ईधन न मिले तो वह भी नष्ट हो जाता है।

यह विजय का निष्कटक और सरल मार्ग है। धर्मनिष्ठ बनना है तो इसी मार्ग पर चलो। जब तक इस राजमार्ग पर नही चलते, समझ लो कि धर्म की परिभाषा से अनभिज्ञ हो।

जो अपने ऊपर मुद्गर लेकर आवे उसे अपनी आत्मा के तुल्य समझना ओर मित्र बना लेना कोई सहज काम नही हे। सुदर्शन मे ऐसी मति थी। इसी कारण अर्जुन उनके अधीन हो गया। अब जरा विचार कीजिए कि जिसके भक्त मे–लघु भक्त मे इतना जोश हे कि उसने वैरी को भी अपनी मैत्री–भावना के द्वारा अपने वश मे कर लिया उस परमात्मा मे कितनी क्षमता न होगी? अर्थात् उसने सारे ससार को इसी प्रकार जीत लिया हे तभी तो उनका नाम परमात्मा हे।

त्रिभुवन मे जस उज्ज्वल तेरो, फैल रह्यो, जग जाणे जी।

जिसके लिए त्रिभुवन के प्राणी एक भावना से मित्र रूप हो गये ह उस त्रिभुवनपति को त्रिभुवन वन्दन करता हे।

अगर आपको विजयशाली बनना हे तो विजय के महान सदेशवाहक जीत का अमोघ मन्त्र देने वाले विजय के मगल–मार्ग पर प्रयाण करके उस पथ को पुनीत करने वाले विजयमूर्ति श्री अजितनाथ भगवान को अपने हृदय–मन्दिर मे स्थापित करो। क्रोध को जीतो। द्वेष को नष्ट करो। मेत्री भावना का प्रदीप प्रज्ज्वलित करो। चित्त मे किसी प्रकार का विकार न रहन दो। अगर आपने इतना कर लिया तो आप विजयशाली हे। विश्व की कोई प्रचण्ड शक्ति भी आपको पराजित नही कर सकती। आप आत्मविजयी अर्थात विश्वविजयी वन जाएगे। उस अवस्था म आप म आर भगवान अजितनाथ म काई अतर नही रह जायेगा।

(ख)

अजित जिनन्दजी सो लगन लगावे।
सुख–सम्पति वछित फल पावे।।

अजितनाथ भगवान् की यह स्तुति है। परमात्मा अजितनाथ के साथ अपनी लगन लगा देने पर प्राणी सुख सम्पत्ति के लिए सौभाग्यशाली बनता है। मगर पश्न यह है कि लगन लगे कैसे?

यो तो सभी प्राणियो की इच्छा रहती है कि परमात्मा के प्रति प्रेम तो अच्छा ही है। मगर परमात्मा–प्रेम का मार्ग कौन सा है, इस बात को समझना आवश्यक है। किस रास्ते से भगवान् से गाढा प्रेम होकर प्रीति बनी रहे यह बतलाने के लिए ही उपदेश देने की आवश्यकता होती हे।

प्राणी प्रत्येक वस्तु से प्रीति करता है यह उसकी एक वृत्ति है। मगर यह नही भूलना चाहिए कि जैसी वस्तु से प्रीति की जाती है, उसे वैसा ही फल मिलता है। सासारिक पदार्थो से जो प्रीति होती है वह भोग–विलास के लिए होती है और उसका फल मोह की वृद्धि होता है। जो ससार परिभ्रमण से बचना चाहते है उन्हे भोग–सामग्री सबधी प्रीति का त्याग करना ही उचित हे। मगर वह प्रीति निरालम्बन नही कर सकती। उसका आलम्बन परमात्मा को बनाना चाहिए। परमात्मा को आलम्बन बनाकर जगाई हुई प्रीति परमानन्द का कारण है, असीम शाति और अक्षय सुख का स्रोत है शाश्वत कल्याण का हेतु है ओर ससार भ्रमण का अन्त करने वाली है। इसलिए विवेकशील पुरुष अपनी प्रीतिरूप शक्ति का मुह भोगसामग्री की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर फेर देते हे। ऐसा करके वे जिस निराकुलता का अनुभव करते हे वह भोगलोलुप विषयो के दास इन्द्रियो के गुलाम लोगो को कभी नसीब नही होती। वह निराकुलता करने की वस्तु नही है अनुभव से ही उसका मजा लिया जा सकता है।

प्रीति अनन्ती पर थकी जे तोडे हो तो जोडे एह के।
परम पुरुष थी रागता एकता हो दीखे गण गेह के।।

जाता है। भूलकर उल्टे मार्ग पर चला जाता है। अत वस्तुस्थिति को समझना चाहिए। आत्मा से पूछना चाहिए कि प्रीति समान से की जाती है या हीन ओर तुच्छ से? राजा अगर किसी नीच पुरुष के साथ प्रीति करे तो उसका राजपद शोभा नही देता। इस बात को दूर रख कर सासारिक दृष्टि से देखो तो भी मालूम हो जाता है कि जेसे की प्रीति तेसे के साथ ही शोभा देती है। कहा भी हे 'समाने शोभते प्रीति' अर्थात समानशील वाले ओर समान आदतो वालो मे ही मित्रता होती हे। विषय–असमान के साथ की हुई प्रीति न सुखदाई होती हे, न शोभा देती है ओर न स्थायी ही होती हे। लहसुन और कस्तूरी को मिलाया जाये तो कस्तूरी की दुर्दशा ही होगी। इसी प्रकार असमान के ससर्ग से उत्तम वस्तु का भी मान घट जाता हे।

इतना समझ लेने के पश्चात् अब देखना चाहिए कि आत्मा के समान शील–गुण वाला कौन है, जिसके साथ उसे प्रीति करनी चाहिए? आत्मा चिदानन्द स्वरूप है, पुद्‌गलो मे न चित् हे और न आनन्द है। अतएव पुद्‌गल आत्मा के समान गुण वाले नही हैं। पुद्‌गल रूपी हे, आत्मा अरूपी है। पुद्‌गल सडते–गलते और नष्ट होते हें, आत्मा सूक्ष्म हे। दोनो एक दूसरे से विपरीत धर्म वाले है। दोनो मे कोई समानता नही हे। ऐसी स्थिति मे पुद्‌गलो के साथ प्रीति कल्याणकारिणी नही हो सकती।

जो पुद्‌गल बडे–बडे चक्रवर्तियो के अधिकार मे नही चले वह तेरे अधिकार मे कैसे चलेगे? जब तू यह जानता हे तो पुद्‌गलो को समेटने मे उन्हें अधिकार मे करने मे क्यो लगा हे?

दूसरी ओर देखे तो स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि परमात्मा के साथ आत्मा की पूरी समानता हे। जो गुण जो स्वभाव ओर जो शील आत्मा का हे, वही परमात्मा का हे। परमात्मा का स्वभाव प्रकट हो गया हे। परमात्मा ने अपने समस्त आवरणो को हटा दिया हे ओर आत्मा अभी तक हटा नहीं पायी हे। यही दोनो मे अन्तर हे। मगर यह अन्तर अस्वाभाविक नहीं हे मोलिक नही हे। अस्तु स्वभाव से दोनो एक हे अतएव आत्मा की प्रीति परमात्मा के साथ होना ही उचित हे।

यह सब समझकर भी अरे आत्मा! तू किस चक्कर मे पडी हे। तू परमात्मा को भूलकर पुदगलो के साथ प्रीति का नाता जोडती हे। क्या तेरे लिए यही उचित हे?

कल्पना करो तुम्हारे घर किसी का विवाह हे। जिस दिन विवाह होने वाला है उसी दिन कोई मेहमान जाना चाहता हे ओर तुम्हारे रोकने पर

भी नही रुकता है, तो तुम्हारे मन मे क्या विचार उत्पन्न होगा? यही न कि यह समय जाने का नही आने का है। अगर जाते है तो भविष्य मे इनके साथ सबध नही रखेगे। मेहमान आपका कोई अपमान या अमगल करके नही जा रहा है फिर भी आप आगे उससे सरोकार न रखने का विचार कर लेते है। किन्तु ऐसे अवसर पर जब यह पुद्गल छूटते है तब साक्षात् अमगल दीखता है। पुत्र के विवाह के समय पिता मर जाये तो अमगल दीखता है या नही? फिर उस मेहमान के विषय मे आप जो विचार करते है, वही विचार इन पुदगलो के विषय मे क्यो नही करते? क्यो नही सोचते कि इनके साथ भविष्य मे प्रीति नही रखेगे?

बुद्धिमान पुरुष पुद्गलो के स्वभाव का विचार करके परमात्मा के साथ प्रीतिसबध स्थापित करते है और जो ऐसा करते है वही वास्तव मे बुद्धिमान है।

परमात्मा का आदेश है कि पुद्गलो से प्रीति हटाने पर ही मुझसे प्रीति हो सकती है। अगर पुद्गलो से प्रीति करोगे तो मुझसे प्रीति नही हो सकेगी।

आत्मा चाहे सुख मे हो चाहे दु ख मे हो, साधु हो या गृहस्थ हो, कुछ भी हो और कही पर हो हृदय मे शाति रखकर विकारो को निकाल दो, तो परमात्मा के साथ आप ही आप प्रीति जुड जायेगी। किसी भी क्षेत्र और किसी भी काल मे यह प्रीति जोडी जा सकती है चाहिए सिर्फ निर्मल अन्त करण।

कई लोग परमात्मा के आगे लड्डू और ऊपर जेवर चढा कर परमात्मा से प्रीति जोडने का प्रयास करते है और दूसरी दिखावटी क्रियाए करके प्रीति जोडना चाहते है मगर वह मार्ग सही नही है। गीता मे भी कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूताना, मैत्रा करुण एव च।
निर्ममो निरहकार समदु खसुख क्षमी।। अ 12

अर्थात जो किसी भी प्राणी से द्वेष न रखता है, उनसे मैत्रीभाव रखता है करुणाशील होता हे, ममता और अहकार से रहित होता है, वही परमात्मा से प्रीति करता है। आत्मा जैसे ही इस स्थिति मे पहुची कि परमात्मा के साथ प्रीति जुडी। आत्मा का परमात्मा के साथ ज्यो—ज्यो प्रेम बढता चला जाएगा त्यो—त्यो आत्मिक ओर सासरिक सुख भी बढता जायेगा।

कहा जा सकता है कि अभी हमे सासारिक पदार्थो की चाह हे। जब तक यह चाह नही छूटती तब तक परमात्मा के साथ प्रीति कैसे जुड सकती

है ? इसका उत्तर कठिन नही हे। थोडा–सा सूक्ष्म विचार करने से इस विकार का स्वय ही समाधान किया जा सकता है। बात यह हे कि आप इन सासारिक वस्तुओ मे जितनी आसक्ति रक्खोगे, उतनी ही वह आपसे दूर भागेगी। आसक्ति रखने पर कोई वस्तु मिल भी जाती है तो वह दु ख का कारण बनती है, उदाहरणार्थ उदार पुरुष के पास धन होता हे तो वह उस धन से दु ख पाता है। इसके विपरीत कृपण पुरुष उसी धन से दु ख पाता हे और मरते समय तक हाय–हाय करता है। इसका कारण यही हे कि उदार पुरुष धन के प्रति उतनी आसक्ति नही रखता, जितना कृपण रखता है। इससे स्पष्ट है कि आसक्ति दु ख का कारण हे।

साराश यह है कि वाह्य वस्तुओ मे जितनी–जितनी आसक्ति कम होती जायेगी, वस्तुए वैसे–ही–वैसे बिना बुलाये आएगी और जैसे–जैसे अधिक आसक्ति रक्खोगे, तेसे–तैसे वह दूर भागेगी।

परमात्मा के भजन से दो लाभ हैं–आत्मिक सुख ओर सासारिक सुख। सुबाहुकुमार को आप ही आप सब पदार्थो की प्राप्ति हुई। वह पदार्थ मे आसक्त नही थे, इस कारण पदार्थ भी मिलते गये ओर उनकी आत्मा भी ऊची चढती गई।

जो वस्तु राजा से मिल सकती हे उसके लिए किसी नीच के पास जाने की क्या आवश्यकता हे ? अमृत के मिलते हुए जो रोग उसस मिट सकता हे, उसके लिए विष, जो धोखे की चीज हे क्यो पीया जाये ? परमात्मा की प्रीति मे किसी प्रकार का धोखा नही हे ओर उससे ससार के समस्त दु ख मिट जाते हे। ऐसी स्थिति मे दु खो को दूर करने के लिए सासारिक पदार्थो का सेवन करना उचित नही हे, क्योकि उनके द्वारा अकल्याण हाने का खतरा हे।

(ग)

श्री जिन अजित नमू जयकारी
तू देवन को देवजी।।

भगवान अजितनाथ की इस प्रार्थना म अनक एसी बात ह जिन पर विशेप रूप स ध्यान खीचने की आवश्यकता हे। उन सब पर अगर सक्षप म भी प्रकाश डाला जाय ता पर्याप्त समय लगगा। अत आज एक ही बात पर आपका ध्यान आकर्पित करना ह। इस प्रार्थना म भगवान अजितनाथ क विपय म कहा गया ह

तू देवन को देवजी।

अर्थात्–अजितनाथ भगवान् देवो के भी देव है।

देव पाय स्वर्ग मे रहते है और उनकी गति मनुष्य गति से अलग गिनी गई है। मनुष्य की अपेक्षा देवो का सुख असख्यात गुणा है। उनकी ऋद्धि और सम्पदा के आगे मानवीय ऋद्धि और सम्पदा की कोई गिनती ही नही है। साधारणतया मनुष्य देव होने की आकाक्षा करते है। फिर भगवान् अजितनाथ को देवो का भी देव क्यो कहा गया है ? अजितनाथ तो मनुष्य गति मे उत्पन्न हुए थे। वे देवो के देव कैसे हुए ? इस प्रश्न पर यहा विचार करना है।

साधारण मनुष्यो के मस्तिष्क मे भोगोपभोगो और सासारिक सुखो के प्रति जो विशिष्ट आकर्षण देखा जाता है उसी के कारण यह प्रश्न उठता है। अगर आत्मिक दृष्टि से देखा जाय तो स्वर्गलोक की अपेक्षा मर्त्यलोक मे और देवभव की अपेक्षा मनुष्यभव मे अधिक विशिष्टता है। त्रिभुवननाथ का जन्म स्वर्ग मे नही होता मर्त्यलोक मे ही होता है। स्वर्ग मे इन्द्र है पर भगवान् वहा नही जनमते। श्री स्थानागसूत्र मे कहा है कि देवता तीन बातो की कामना करते है।

देवता प्रथम तो मनुष्य–जन्म चाहते है। अब विचार करना चाहिए कि मनुष्य–जन्म मे क्या विशेषता है ? क्या मनुष्य के शरीर मे हीरे–पन्ने जडे है? कदाचित हीरे–पन्ने भी जडे हो तब भी क्या मर्त्यलोक स्वर्ग की बराबरी कर सकता है ? फिर देवता क्यो मनुष्य–जन्म चाहते है ?

दूसरी कामना देवो की यह है कि मनुष्य–जन्म मे भी हम आर्यकुल मे उत्पन्न हो। अनार्यकुल मे हमारा जन्म न हो।

तीसरी कामना देवो की यह है कि हमारा जन्म आर्यक्षेत्र मे ही हो, जहा साक्षात् भगवान् के दर्शन होते है।

देवता आर्यकुल मे जन्म चाहते है अनार्यकुल मे नही। लेकिन आर्य कौन हे और अनार्य किसे कहना चाहिए ? जो बुरे कामो से बचे, जिनकी नैसर्गिक भावना ही बुरे कामो से बचने की हो वे आर्य कहलाते है ओर जिन्हे बुरे काम प्रिय हो, जो बुरे कामो से घृणा नही करते हो वे अनार्य है।

मित्रो ! जरा सावचेत होकर ख्याल करो कि देव–गण भी आर्यकुल ओर आर्यक्षेत्र की कामना करते है। आज लोग फ्रास और अमेरिका आदि देशो की बडाई करते हैं और पेरिस पर तो लट्टू हे किन्तु सच पूछो तो वे भारत–वर्ष

की एक झौपडी की भी बराबरी नही कर सकते। भारत की झोपडियो मे रहने वालो मे भी अभी वहुत से ऐसे निकलेगे जो अपना सिर भले ही दे दे किन्तु किसी जीव की हत्या नही करेगे। स्त्रिया अपने प्राण भले दे दे मगर शील हर्गिज न देगी। और फ्रास मे ? वहा शील का कोई महत्त्व ही नही गिना जाता। बडे से वडे घर की स्त्रिया भी शील खोने मे घृणा नही करती। अव दोनो की तुलना करके देखो कि भारत अच्छा देश है या फ्रास आदि अन्य देश अच्छे हैं ?

एक सुन्दर महल है। सगमरमर का उसका फर्श है। दीवाले चिकनी और मनोहर चित्रो से सुशोभित है। उन पर सोने आदि से मीनाकारी की गई है। एक ओर ऐसा सुन्दर महल है ओर दूसरी ओर काली मिट्टी का खेत है। इन दोनो मे से आप किसे बडा समझते है ?

'खेत को !'

क्यो ? महल तो वडा सुन्दर हे। उसमे सुगन्ध भी आती है। खेत न सुन्दर हे ओर न उसमे सुगन्ध भी आती हे। फिर वह खेती के लिए महल को पसन्द करेगा या खेत को ?

'खेत को !'

क्योकि खेती खेत मे ही हो सकती है। महल सुन्दरता मे भले ही वडा प्रतीत हो पर गहराई से विचार करो तो मालूम होगा कि उसकी सुन्दरता खेत के ही प्रताप से हे। खेत मे अन्न न पके तो महल कव तक टिकेगा ?

उस सुन्दर महल मे किसी आदमी को रखकर उसे खेत की कोई चीज न दो ओर उससे कहो तुम महल के सोन्दर्य का उपभोग करो। महल मे मोज करो। तो उसे आनन्द मिल सकेगा ?

'नही !'

इसी प्रकार अगर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट मालूम होने लगेगा कि खेती ही महल से वढकर है। खेत से मनुष्य का जीवन मिलता हे महल मे नही।

इस मर्त्यलोक मे सव ओदारिक शरीर के धारक प्राणी हैं। यहा के मनुष्यो का शरीर हाड–मास आदि सात धातुओ से वना हे। यहा राग–शोक आदि भी लगे हुए है। इसके विपरीत देवगण वेक्रिय शरीरी है–इच्छानुसार रूप वना सकते है। न उनका राग है न शोक है। इस दृष्टि से देव महल के समान सुन्दर है। इस सुन्दरता की तराजू पर अगर देव ओर मनुष्य को तोला जाय तो देव मनुष्यो से घृणा करे। इसके अतिरिक्त देव–विमानो मे जो [illegible]

स्वच्छता है वैसी स्वच्छता भी यहा कहा! यहा तो अशुचि, दुर्गन्ध आदि सभी कुछ हे। फिर देवलोक छोटा और मनुष्य लोक बडा कैसे ?

यही विचार करने की आवश्यकता है। विचार करने से जान पडेगा कि पुण्य की खेती करने का स्थान मर्त्यलोक ही है। मर्त्यलोक की कमाई से देवलोक मिलता है। देवलोक की कमाई से देवलोक नही मिलता।

अगर मर्त्यलोक की कमाई देवलोक मे न हो तो देवलोक भयकर हो जाये। वहा यही का पुण्य है इसी कारण देवगण मनुष्य होने की कामना करते है जैसे किसान लालायित रहता है– आषाढ आवे और कब हमारी खेती हो! देव लालायित रहते है कि कब हम मनुष्य जन्म धारण करे और पुण्य की खेती उपजाए।

मित्रो ! इसी मर्त्यलोक मे सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होकर सवर तथा निर्जरा आदि का धर्म होता है देवलोक मे नही। मनुष्य–जन्म ही साक्षात् परमानन्द की प्राप्ति का कारण है–कोई भी देव देवभव से परम–पद को प्राप्त नही कर सकता। आध्यात्मिक विकास की चरम सीमा मनुष्यभव मे ही प्राप्त होती है। देवगण मोक्षमहल की पहली सीढी तक ही चढ सकते हैं। आगे जाने का सामर्थ्य उनमे नही है जबकि मनुष्यभव से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

आपको मनुष्य जन्म आर्यकुल और आर्यक्षेत्र आदि की यह सब सामग्री मिली है जिसके लिए देवराज इन्द्र भी तरसता है। फिर भी अगर आप अपना कल्याण न करे तो कितने परिताप की बात है! आप लोगो को कल्याणमार्ग से विमुख देखकर ज्ञानियो को चिन्ता होती है। वे सोचते है–यह अपना मनुष्य–जन्म वृथा गवा रहे हैं, कौवे को रत्न फेक कर उडाने की मूर्खता कर रहा हे। इसलिए कहता हू–भाइयो! कुछ कल्याण के कार्य करो। बोलो–

श्री जिन अजित नमू जयकारी, तू देवन को देवजी।

प्रभो ! मै तुझे नमन करता हू। कामी, क्रोधी, दम्भी, लोभी देव मुझे नही सुहाते। तू ही रुचता है। तू देवो का देव है। प्रभो! मेरा भी नाथ बन । मुझे तार दे। मेरा कल्याण कर। मै अपने को तेरे शरण मे अर्पित करता हू।



3. श्री सम्भवनाथ

प्रार्थना

{आज म्हारा पारसजी ने चालो वन्दन जइए–यह देशी}

आज म्हारा सम्भव जन का, हित चित्त सु गुण गास्या।
मधुर–मधुर स्वर राग अलापी, गहरे शब्द गुजास्या राज।।
आज म्हारा सम्भव जिन का, हित चित सु गुण गास्या।।1।।
नृप 'जीतारथ'' सेना'' राणी, ता सुत सेवक थास्या।
नवधा भक्तिभाव सो करने, प्रेम मगन हुइ जास्या राज।।2।।
मन वच काय लाय प्रभु सेती, निसदिन सास उसास्या।
सम्भव जिनकी मोहनी मूरति, हिये निरतर ध्यास्या राज।।3।।
दीन दयाल दीन बन्धु के, खानाजाद कहास्या।
तन धन प्राण समरपी प्रभु को, इन पर वेग रिझास्या राज।।4।।
अष्ट कर्म दल जोरावर, ते जीत्या सुख पास्या।
जालम मोह मार को जामे, साहस करी भगास्या राज।।5।।
ऊबट पन्थ तजी दुर्गति को, शुभगति पन्थ सगास्या।
आगम अरथ तणे अनुसारे, अनुभव दशा जगास्या राज।।6।।
काम क्रोध मद लोभ कपट तजि, निज गुणसु लव लास्या।
'विनयचन्द' सम्भव जिन तूठ्या आवागमन मिटास्या राज।।7।।
आज म्हारा सभव जिनजी का हित–वित से गुण गास्या,
मधुर–मधुर सुर राग अलापी गहरे शब्द गुजास्या राज। आज।

परमात्मा से प्रेम का साधन क्या है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उत्कृष्ट से प्रेम करने के लिए उत्कृष्ट भाव होना चाहिए। गन्दी बातें गन्दे चलन–यह सब मोह के प्रभाव से प्रिय हो रहे हैं। इन गन्दी बातों और गन्दे चलन से जब तक मोह न उतरे परमात्मा आत्मा का पूरा प्रेम नहीं [illegible]।

महात्माओ और ज्ञानियो ने परमात्मा से प्रेम करने के उपाय बताये है। उन उपायो को भक्तो ने बालभाषा मे अपने साथियो को समझाया है जैसे–

आज म्हारा सम्भव जिनजी रा, हित चित से गुण गास्या राज।

अर्थात्–आज मै अपने प्रभु का स्वच्छ हृदय से गुण गान करूगा। वहा, आज, शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। इस 'आज का मतलब क्या है?

दुनिया के लोग कहते है कि फला काम आज करूगा। अमुक काम को आज ही कर डालो, कल की कौन जाने ? आज तो अपनी स्थिति शरीर और बुद्धि आदि अनुकूल है, इसलिए जो आज न कर पाये तो कल क्या कर सकेगे ? इसलिए जो सोचा है आज ही कर लो।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल मे परलय होयगो, बहुरि करोगे कब।।

इस प्रकार का अवसर साध कर दुनिया वाले बोध देते है कि किसी काम के लिए वृथा समय गवाना उचित नही है।

दुनियादारी के काम आज नही हुए, वह कल नही हो पाते, ऐसा जब दुनियादार सोचते है तो ज्ञानियो के हृदय मे भी यही बात उत्पन्न होती है कि–

आज म्हारा सम्भव जिनजी रा,
हित चित से गुण गास्या राज।

अर्थात्– आज मै भगवान् का भजन करूगा। अगर आज, जब कि शरीर आदि की स्थिति अनुकूल है, उसका भजन न कर सका तो फिर कब भजूगा ?

जोधपुर मे वच्छराज जी सिघी धनी और कुलवान् आदमी थे। पूज्य रघुनाथजी महाराज ने, जो फक्कड ओर ज्ञानी महात्मा थे, सिघीजी से कहा–आपने मनुष्यजन्म पाया है। इस जन्म को पाकर कुछ कल्याण का भी काम करते हो ?

वच्छराजजी बोले–महाराज! कल्याण का काम करके करना क्या है? रहने को अच्छी हवेली है, सिघी परिवार मे जन्म लिया है, जागीर है, स्त्री है नौकर–चाकर आदि सभी कुछ है पहले बहुत कर आये है। अब क्या करना हे ?

रघुनाथजी महाराज ने कहा–पहले कर आए सो तो ठीक है। उसका फल मिला ही है। परन्तु अब मर कर अगर कुत्ते हुए तो इस हवेली मे कोई आने देगा ?

वच्छराजजी—नही महाराज, फिर तो कोई नही आने देगा।

रघुनाथजी महा०——इसीलिए कहता हू कि कुछ कल्याण का कार्य करो। अभी नही करोगे तो फिर कब करोगे ?

मित्रो ! बुद्धिमान मनुष्य विचार करेगा कि पहले किया सो अब पाया। अगर अब न करेगे तो क्या मिलेगा ? पहले कितने—कितने दु ख उठाये हे, कोन—कोनसी योनिया भुगती है, उन्हे देखते हुए आज जिस स्थिति मे हो उस स्थिति मे भजन न करोगे तो कल क्या करोगे ?

कल की किसने देखी है। कल मर कर कही गधे, कुत्ते आदि हुए तो फिर क्या कर सकोगे ? इसीलिए ज्ञानी कहते हैं—

आज म्हारा सम्भव जिनजी रा,
हित चित से गुण गास्या।
मधुर—मधुर स्वर राग अलापी,
गहरे शब्द गुजास्या राज।।

अर्थात हम कल पर भरोसा न करके आज ही परामात्मा का भजन करेगे ओर उसके भजन के मीठे—मीठे स्वर गुजा देगे। इस काम को भविष्य के लिए नहीं छोडेगे। हम चाहे पढे—लिखे न हो हम मे चाहे बुद्धि न हो केवल हमारी निष्ठा भगवान के स्मरण मे लग जाये तो फिर हमे भव—सागर की चिन्ता नही।

भाइयो ! कल की कोन जानता हे कि कल क्या होगा ? हाथ की माला हाथ म ही रह जाती हे ओर प्राणपखेरू उड जाते हैं। भजन करने रा विचार को भी पूरा कर पाने का समय तक नही मिलता।

आजकल माला भी केसी फेरी जाती हे ?

माला तो कर मे फिरे, जीभ फिरे मुख माय।
मनडा तो चहु दिसि फिरे सुमिरन यह न कहाय।

माला कही फिर रही हे जीभ कही फिर रही हे ओर मन कही ओर ही जगह फिर रहा ह ! एसा भजन भी काई भजन हे ?

माला फेरन की यह पद्धति गलत हे, इतना ही नही बल्कि माला फेरन का उद्देश्य भी अक्सर गलत होता ह। कोई किसी मतलब से माला घुमाता ह और कोई प्रयोजन से फेरता ह। अधिकाश लोग तो रुपयों के लिए माला फेरते ह। माला फेरते समय वे रुपयों का ही ध्यान करते ह। ऐसे लोगों [illegible] होता ह। कामदार की प्रीति ही [illegible] [illegible] का परमात्मा के प्रति प्रीति [illegible]

[illegible]

हो ? मित्रो ! प्रेम का मार्ग बडा दुर्गम है। बिना कष्ट उठाये प्रेम का मजा नही मिलता। नि स्वार्थ हो कर बिना किसी कामना के भगवान् का भजन करना ही सच्चा भजन है। ऐसा भजन करने वाले विरले ही मिलते है और वही भजन के असली फल को प्राप्त करते है।

दीनदयालु दीनबन्धु के, खानाजाद कहास्या।
तन धन प्राण समर्पी प्रभु को, इन पर वेग रिझास्या राज।।

परमात्मा का सेवक बनने के लिए क्या होना चाहिए ? परमात्मा को आप दीनदयाल कहते है। आप दीनदयाल के खानाजाद नौकर हैं। दीनदयाल वह कहलाता है जो गरीबो पर दया करे। परमात्मा के, जो गरीब पर दया करता है, आप खानाजाद नौकर है तो आपमे क्या लक्षण होना चाहिए ? परमात्मा को दीन प्यारे लगते है और आपको कौन प्यारे लगते है? दीन या ढीग ? दीन प्यारे उसके सेवक, अगर ढीग प्यारे लगे तो क्या तुम उसके सेवक–नौकर कहला सकते हो ? नही।

माया से माया मिली, कर–कर लम्बे हात।
तुलसीदास गरीब की, कोइ न पूछे बात।

मित्रो ! परमात्मा को प्रसन्न करना हो, उससे प्रेम जगाना हो तो वह तुम्हारे सामने मूर्तिमान खडा है। उसे अपना लो। दीन से प्रेम लगा कि समझ लो परमात्मा से प्रेम लग गया और जो दीनो का गला काटने मे हिचकता न हो, उन पर दया करना पाप समझे तो उसे परमात्मा को दीनदयाल कहने का अधिकार नही है। ईश्वर से प्रेम बाधने का उपाय दोनो के प्रति हृदय मे दयाभाव रखना ही है। उन पर दया का भाव रखो और उनके दु ख को अपना ही दु ख समझो। ऐसा करने पर तुम परमात्मा के खानाजाद सेवक कहला सकते हो।

सम्भव है, आप मेरे कथन के अभिप्राय को न समझे हो। इसलिए मे एक दृष्टात द्वारा आपको समझा देता हू।

किसी हाकिम के सामने मुकद्दमा पेश हुआ। हाकिम न्याय करने बैठा। वादी कहने लगा–गरीबपरवर, दीनदयाल, मेहरबपर, दया करके न्याय कीजिए। मेरी इस पर इतनी रकम बाकी हे। यह देता नही है। दया करके दिलवा दीजिये।

प्रतिवादी कहता हे– दीनानाथ मेरा उलटा इस पर इतना लेना बाकी है। कृपा करके दिला दीजिए।

अब बतलाइए हाकिम किस पर दया करे ?

इतने मे पहला कहता है—मेरा लेना इससे दिला दीजिए। इसकी कीमत सुनिये। यह मुझसे जो रकम मागता हे उस पर आप विचार मत कीजिए। आप तो मेरा लेना मुझे दिला दीजिए।

हाकिम अगर इसी के कथानानुसार दूसरे की न सुनकर उससे रुपया दिलवा दे तो क्या यह न्याय होगा ?

'नही।'

यदि वह हाकिम, हाकिम है तो यही कहेगा कि उसका देना उसे चुकाओ ओर अपना लेना तुम ले लो। ऐसा कहने वाला हाकिम ही न्यायी कहा जायेगा, अन्यथा नही।

इसी प्रकार आप परमात्मा को दीनदयाल कहते हे तो दीन लोग आपसे अपना देना मागते हैं, अपना हक चाहते हैं। तुम उन पर करुणा करो। तभी तुम परमात्मा की करुणा चाह सकते हो। तुम किसी पर करुणा न करो और फिर भी परमात्मा की करुणा चाहो तो अगर वह न्यायी है तो आप पर दया केसे करेगा ?

भक्त कहते हैं मै उस परमात्मा का खानाजाद तभी होऊगा जब तन मन धन उसको समर्पित करके उसकी भक्ति करूगा। जब सर्वस्व समर्पण करके कहा जाये– प्रभो! मुझे इसकी आवश्यकता नही हे। मुझे तो केवल तेरा प्रेम चाहिए।

प्रश्न हो सकता हे—भगवान् तो वीतराग हैं। उन्हे तन मन और धन की आवश्यकता नहीं। फिर यह सब उन्हे किस प्रकार समर्पित करना चाहिए? कैसे उसका खानाजाद बनना चाहिए ? इसका समाधान इस प्रकार हे–

भगवान की भक्ति भी रहे ओर तन भी रहे मगर यदि कोई ऐसा समय आ जाय कि जब या तो भक्ति ही रहे या प्राण ही रह तो उस समय किसकी रक्षा की जाय ? भक्ति ओर प्राण म से किसे बचाया जाय ?

जो प्राणों की परवाह न करके भक्ति की रक्षा करे उसी को सच्चा भक्त समझना चाहिए। यही भक्त की पहिचान होती है। साधारण लोग कहते—हम भक्ति लेकर क्या करें ? हमें धन चाहिए। धन के लिए ही तो भक्ति करते हैं। धन त्यागना पड़ा तो भक्ति किस काम की ? और तन के लिए भी [illegible] भक्ति जाय तो भले जाय पर तन नहीं जाना चाहिए।

[illegible] खड़ा था। [illegible]

'अरणक ने जो किया वही करना चाहिए।'

'श्रावक ने क्या किया ?'

तन–धन त्याग दिया।

तन के टुकडे–टुकडे हो जाने पर भी आत्मा को हाथ लगाने की किसी मे शक्ति नही है। आत्मा कदापि नही मर सकती। तन जाता है तो जाये, तन के बदले धर्म है, ऐसी दृढता धारण करने पर ही परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम होगा।

अर्जुन माली प्रतिदिन छह पुरुषो की और एक नारी की हत्या करता था। उसके डर के कारण कोई भी पुरुष भगवान् महावीर के दर्शन करने के लिए जाने का साहस नही कर सका। दर्शन और वन्दना करने जाए तो कैसे जाए ! रास्ते मे अर्जुन मुद्गर लिये प्राण लेने को बैठा है। मगर सुदर्शन सेठ सच्चा श्रावक था। वह ऐसे विकट सकट के समय भी, अर्जुन माली के मुद्गर की परवाह न करके भगवान् की वन्दना करने के लिए चल दिया। लोगो ने समझाया, वह नही माना। अगर उसे प्राणो का मोह होता तो और लोगो की तरह वह भी क्या घर से निकलता?

'नही !'

यह तो केवल भक्ति की कसौटी थी। यदि आपको परमात्मा से प्रीति है उसकी भक्ति प्रिय है, तो तन, मन, धन का मोह त्यागना पडेगा। या तो ईश्वर से प्रेम कर लो या इन चीजो से प्रेम कर लो। एक साथ दोनो से प्रेम नही हो सकता। मन, वचन, और तन को एकत्र करके, उस दीनदयाल के प्रेम की मूर्ति हृदय मे धारण करके पुरुष उसकी भक्ति के रग मे रगा रहता है, वह भक्त शीघ्र ही अपना कल्याण करेगा।

आप सुबह से शाम तक कितने कीडे देखते हैं ? उन कीडो–मकोडो मे भगवान् का गुणगान करने की शक्ति है ?

नही ।'

उनमे परमात्मा को समझने की योग्यता है ?

नही ।'

तो इन कीडो–मकोडो को देखकर यह विचार करना चाहिए कि इन योनियो मे मै कई बार जन्मा हू और मरा हू। अनादिकाल–अब तक सम्पूर्ण समय मैंने इन्ही योनियो मे व्यतीत किया है। मुझे परमात्मा के गुणगान का अवसर नही मिला। आज मैं मनुष्य की अवस्था मे हू और मेरे लिए भजन करने के सब साधन प्रस्तुत है। अगर आज भजन न करूगा तो फिर कब करूगा?

कीडो–मकोडो और अपनी स्थिति का मिलान करके सोचना चाहिए कि यदि आदि भगवान् के भजन का अवसर न साधूगा तो कब साधूगा ? मेरी और कीडो की स्थिति मे क्या अन्तर है ? अगर आप यह माने कि मैं कीडो से बडा हू, मुझमे कीडो को मसल डालने की शक्ति विद्यमान है, तो क्या आपकी शक्ति की सार्थकता है ? वास्तव मे नाश करने वाला बडा नही कहलाता।

सतो और सतियो को भी विचार करना चाहिए कि हम ससार मे सब से बडे दर्जे पर है। यह बडप्पन हमे ईश्वर की आराधना करने आत्मकल्याण करने की प्रतिज्ञा के कारण प्राप्त हुआ है। अतएव हमे ईश्वर–भजन करने का अवसर नही चूकना चाहिए।

मित्रो ! कीडो–मकोडो मे और आपमे जो विशेषता है उस विशेषता से आपने लाभ न उठाया तो आपमे और उनमे अन्तर ही क्या रहा ? विषयो का आनन्द तो कीडे भी लूटते है, मिष्ठ पदार्थ भी खाते है। बल्कि एक दिन मेने कहा था कि मनुष्य, कीडो–मकोडो का जूठा खाते हैं। भ्रमर का सूघा हुआ फूल सब सूघते है। मक्खियो का जूठा शहद सब खाते है। अधिक क्या कहू, आप जो रेशम पहनते है वह कीडो का ही कलेवर है। कीडो के सुन्दर शरीर को नष्ट करके तुम सजे हो। इसे पहन कर गर्व मे मत फूलो बल्कि लज्जित होओ। अपने घर का भी गर्व मत करो। कीडे ऐसा घर बनाते हैं जो उनकी शक्ति के अनुसार बहुत बडा गिना जा सकता है। कीडियो को देखो, कैसे बिल बनाती हैं। उनका शरीर देखते हुए उनका घर बडा हे या तुम्हारे शरीर को देखते हुए तुम्हारी हवेली ? वह भी तुमने दूसरे पुरुषो की सहायता लेकर बनाई है। कीडिया किसी मनुष्य की सहायता न लेकर पृथ्वी के भीतर से मिटटी निकालकर चढती ओर अपना घर बनाती हे। ऐसी अवस्था म तुम कीडो स बड रह ? जरा विचार करो कि यह शरीर सासारिक भोगो म लगाने क लिए हे अथवा परमात्मा का भजन करने के लिए है ?

मनुष्य–शरीर की सामग्री अगर उन भोगो म लगाई जिन्हे कीडे भी भोगते है तो मनुष्य एक बडे कीडे के समान ही है। यही सोचकर ज्ञानी कहते

पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज एक दृष्टात दिया करते थे। वही दृष्टान्त मै आपको सुनाता हू

किसी नगर से तीन जौहरी व्यापार के उद्देश्य से बाहर निकले। पहले के जौहरी आदि व्यापारी देहात आदि मे भमण करने निकल जाया करते थे। तदनुसार यह जौहरी भी पृथक्–पृथक् बाहर निकले। एक को दूसरे के निकलने का हाल मालूम नही था।

एक ग्राम मे किसी कृषक को कृषि कार्य करते समय एक हीरा मिला। कृषक हीरे को पहिचानता तो था नही, उसने एक सुन्दर पत्थर समझ कर उठा लिया। सोचा अगर पैसे–दो–पैसे मे बिक जायेगा तो अच्छा ही है। उसी ग्राम मे एक वणिक् रहता था और नमक–तम्बाखू आदि का व्यापार करता था। कृषक हीरा लेकर उसके पास पहुचा। वह भी हीरे का परीक्षक नही था। फिर भी उसे वह अच्छा लगा। उसकी तराजू मे पासग था। हीरा पासग के बराबर हो गया। इस कारण उसने अपनी तराजू मे बाध कर पासग मिटा लिया और कृषक को दो पैसा का सौदा उसके बदले दे दिया।

एक जौहरी घूमता–फिरता उसी ग्राम मे आया। उसे भूख लगी थी। वह खाने का सामान लेने उस वणिक् की दुकान पर आया। खाने के सामान मे वणिक् की दुकान पर भुने चने थे। वणिक् ने जब चने तौलने के लिए तराजू उठाई तो जौहरी को वह हीरा दिखाई दिया। देखते ही वह हीरे की उत्तमता को समझ गया। उसने सोचा–हीरा मूल्यवान् तो है, मगर इसका भेद खोल दिया तो बनिया देगा नही, या बहुत मूल्य मागेगा। अतएव जौहरी ने कहा–तराजू मे यह ककर, क्यो बाध रक्खा है सेठजी ?

वणिक्–आ गया, इससे बाध दिया है।

जौहरी–हम व्यापारी है। पैसे मिले तो थाली की रोटी भी बेच दे। फिर इसकी तो बात ही क्या है ।

जौहरी–क्या लोगे ?

वणिक जानता था कि यह जौहरी है। बिना मतलब ककर क्यो खरीदने लगा ? उसने फिर डरते–डरते कहा–सौ रुपये लूगा।

जौहरी ने सोचा–चीज तो बहुत मूल्यवान् है और मागता है सौ रुपया। मगर सौ मे से भी बचे उतना ही लाभ है। यह सोचकर उसने कहा–पचहत्तर रुपये ले लो।

वणिक् ने जौहरी की वात सुनकर सोचा–मै इसे दो–चार पैसो का समझता था, पर जोहरी की बात से 75 रु॰ का पक्का ठहरा । सम्भव है और भी ज्यादा कीमत का हो। उसने जौहरी से कहा–एक कोडी भी कम न लूगा।

जोहरी ने सोचा–सो रुपया तो मागता ही है। यहा दूसरा कोई इसका ग्राहक नही जल्दी क्यो करु ? मान जायेगा तो ठीक नही तो दस वीस ज्यादा देकर ले लूगा। यह सोच कर उसने कहा–ठीक है, आटा–सामान दे दो, रोटी बनाकर खा ले। फिर जैसा होगा देखा जायेगा।

जोहरी वहुत खुश था कि आज बाहर निकलना सार्थक हो गया। 100 रु॰ मे लाख रुपयो की चीज मिल रही है। वह अव अपनी ही है। दूसरा कोन लेगा ? यह सोचकर वह भोजन बनाने–खाने मे लग गया।

सयोगवश दूसरा जोहरी भी उस वणिक् की दुकान पर पहुचा। उसने भी खाने–पीने के सामान के विषय मे पूछताछ करते समय उस हीरे को देखा और उसकी कीमत पूछी। वणिक् ने सोचा–उससे 100 रु0 मागे थे, इससे हजार क्यो न कह दू ? और उसने एक हजार रुपया कीमत कह दी। पहले जोहरी की तरह इसने भी लोभ मे पडकर आठ सौ कहे। वणिक् ने देने से इन्कार कर दिया इस जोहरी ने भी पहले के समान ही सोचकर रत्न लेने मे ढील की। यह भी भोजन बनाने–खाने मे लग गया। वणिक् ने सोचा कि 100 के वदले 800 रु का माल तो पक्का हुआ।

दोनो जोहरी अलग–अलग भोजन बनाने मे लग गये। दोनो अपने–अपने मन मे प्रसन्न थे। अत दोनो माल–मसाला उडाने मे मस्त हो गये।

इसी वीच तीसरा जोहरी भी वणिक की दुकान पर जा पहुचा। उसने भी भोजन–सामग्री के विषय मे प्रश्न करके आटा–दाल आदि तुलवाना चाहा। वणिक ने तराजू उठाई। जोहरी की नजर हीरे पर पडी। उसने भी पूछा इसे वेचते हो ?

वणिक–वच भी देगे।

जौहरी–क्या लोग ?

वणिक ने सोचा–दूसरे से एक हजार मागे थे। इससे एक विन्दु और बढाकर क्यो न मागू ? और उसने दस हजार माल वता दिया।

जोहरी ने सोचा– इस पर किसी का हाथ पड गया ? अन्यथा दस [illegible] की इसकी हिम्मत नही हो सकती थी। इसके अतिरिक्त वणिक [illegible] इसकी इतनी कीमत समझता तो इसे तराजू मे न बाध रखता। लेकिन [illegible] पर विचार करना व्यर्थ है। जब हम 90 हजार का लाभ हो रहा [illegible]

[illegible]

जौहरी ने कहा—अच्छा, दस हजार लो और यह ककर मुझे दे दो।

वणिक् ने सोचा—चीज तो कोई बहुत कीमती है, पर मुह से कह दिया है। अगर बहुत कीमती है तो इसका भाग्य। मुझे तो दो पैसे की तराजू मे मिली है।

वणिक् ने हीरा तराजू से खोल कर जौहरी को दे दिया और जौहरी ने दस हजार की हुडी दे दी। इसके पश्चात् जौहरी ने पूछा— इसे खरीदने के लिए और भी कोई आया था? वणिक् ने कहा—दो जौहरी पहले आये थे। वे रोटी बनाने—खाने मे लगे है।

जौहरी ने सोचा—अब यहा ठहरना झगडे मे पडना है। और उसने चने खरीद कर, जेबो मे डाले और अपने घर की ओर रवाना हो गया।

पहला जौहरी भोजन और विश्राम करके तीसरे पहर वणिक् के पास आया। उसने कहा सौ रुपये तो बहुत होते है। जरा विचार कर कहो।

वणिक्—किस चीज का सौ रुपया बहुत है ?

जौहरी— उस ककर का।

वणिक्—वह ककर नही था। वह तो एक बडी चीज थी।

जौहरी—(आश्चर्य से) थी तो क्या अब नही है ?

वणिक्—नही वह तो बिक चुकी।

जौहरी—कितने मे ?

वणिक्— दस हजार मे।

जौहरी—सेठ, तुम डूब गये ।

वणिक्—क्यो ?

जौहरी—वह तो एक लाख की चीज थी ।

वणिक् —तो मै कैसे डूबा ? डूबे तो तुम डूबे । वह लाख रुपये की है, यह तुम जानते थे मै तो नही जानता था । मेरे यहा वह दो पैसे मे आई और दस हजार मे बिकी ।

इतने मे दूसरा जौहरी चिल्लाता हुआ आया—खबरदार! चीज पहले मेने देखी है, मै लूगा। जौहरी ने कहा—अब क्या लोगे, वह तो पहले ही ले ली गई ।

जौहरी बोला—सेठ, तुमको बहुत घाटा हुआ है। अब तुम मानो और उसे मुझे बेच दो। हम उस जौहरी पर दावा करके उससे चीज ले लेगे ।

वणिक् ने कहा—ऐसे झूठे काम तुम करो मे नही करता। तुम आठ सौ मे ले जाते उसका तो दावा नही, और वह दस हजार मे ले गया सो उस पर दावा । मुझसे यह नही होगा।

अन्त मे दो जोहरी पश्चात्ताप करने लगे कि थोडे से लोभ मे बडा लाभ गवा दिया ।

तीसरा जोहरी नीतिमान् था। उसने उस वणिक के साथ भाईचारा जोडा। उसने कहा–तुम मेरे सेठ हो और मै तुम्हारा ग्राहक हू। मेरे साथ परायापन न रख कर सदा मिलते रहा करो।

धीरे–धीरे उसने वणिक् को शहर के व्यापार से परिचित करके उसे अच्छा व्यापार करा दिया।

मित्रो ! इन जोहरियो मे कौन प्रवीण है ?

'तीसरा।'

इस कथन का प्रमाण शास्त्र मे भी मिलता है। शास्त्र मे पाठ आता है–

जहा य तिन्नि वाणिआ, मूल घेत्तूण निग्गया।
एगोत्थ लहइ लाह, एगो मूलेणा आगओ।।
एगो मूल पि हारित्ता, आगया तत्थ वाणिया।
ववहारे उवमा एसा, एव धम्मे वियाणह।।

श्री उ॰ 7वा अ॰ 15–16 गा॰

अर्थात तीन वणिक व्यापार के लिए निकले उनमे से दो तो गफलत म रह गये और एक बाजी मार गया ।

लेकिन हमे इन व्यापारियो की बात सुन कर अपने विषय म विचार करना चाहिए। हम किस जोहरी का अनुकरण करे ?

भाइयो ! धर्म हीरा के समान है। हीरे का तो मूल्य हो भी सकता ह पर धर्म सर्वथा अमूल्य है। इस अनमोल धर्मरत्न को खाने–पीने और गुलछर्रे उडाने म मस्त रहकर खो देने से अन्त मे पश्चात्ताप का भागी होना पडता ह। पश्चात्ताप करने पर भी बिगडी बाजी का सुधरना कठिन है। इसलिए विवेक का उपयोग करो। ऐशो–आराम म जीवन की यह अनमोल [illegible] मत खोओ। धर्म के लिए समय मिलने पर भी धर्म–ध्यान न करके समय खोना कितना अनुचित है ? भजन म कल्याण जान करके भी भजन

आज म्हारा सम्भव जिनजी रा,
हित चित से गुण गास्या राज।

आज मैने मनुष्य–अवस्था पाई है। मुझे भजन करने का अवसर मिला है। इसलिए मे सम्भवनाथ भगवान् का भजन करूगा। और–

मन वच काय लाय प्रभु सेती,
निश दिन श्वास उश्वासा।
सम्भव जिनजी की मोहनी मूरत,
हिये निरन्तर ध्यासा राज।। आज0।।

सम्भवनाथ भगवान् की मोहिनी मूर्ति हृदय मे बैठते ही अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होगी।

मित्रो! जो आयु गई सो गई, परन्तु जो रही है उसे तो रक्खो! मेरा यह सन्देश है कि ईश्वर–भजन के आनन्द को छोडकर गन्दी बातो मे मत पडना। यह सही है कि आप गृहस्थी मे रहते है, मगर गृहस्थी मे रहकर भी विकथा छोडो और भगवद्भजन मे समय लगाओ। इतना करने से भी दु ख से बचोगे।

(ख)

भगवान सम्भवनाथ की यह स्तुति है। भगवान् सम्भवनाथ के नाम या परमात्मा के और नामो से प्रीति होने मे क्या गुण है ? तथा परमात्मा का हित–चित्त से गुणगणन किस प्रकार करना चाहिए ? इस विषय पर मै थोडा–सा प्रकाश डालना चाहता हू।

कई भाइयो का कहना हे कि परमात्मा को हमने देखा नही है, तब उसके गुणो से या उसके गुणगान से हमे अनुराग किस प्रकार हो सकता है? उनके इस कथन मे परमात्मा के प्रति सन्देह मौजूद है। इस सदेह के कारण वे परमात्मा का गुणगान करने से उदासीन रहते है। किन्तु जिन्हे इस प्रकार का सन्देह नही है उन्हे भी गुणगान मे तल्लीन नही देखते जैसे कि वे लक्ष्मी के गुणगान और आराधना मे रहते है। वे लोग–

भज कल्दार, कल्दार भज मूढमते ।

इस मन्त्र मे जितना चित्त लगाते है उतना परमात्मा के भजन मे नही लगाते। वे कल्दार मे अपना हित देखते है इसीलिए उसमे उनका चित्त ज्यादा लगता हे। परमात्मा तो दिखाई नही देता और रुपया गोल–गोल चमकता हुआ नजर आता हे। अत उसमे विशेष प्रीति होती है। किसी ने कहा है –

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहिन कहे मेरा भैया।
घर की जोरू यो कहे, सब से बडा रुपैया।।

मतलब यह है कि रुपया आखो से दिखाई देता है और उससे होने वाला हित भी प्रत्यक्ष है, इस कारण लोग उससे प्रीति करते हैं। और परमात्मा दीखता नही है, इसीलिए उसके विषय मे सदेह करते हैं या उसकी उपेक्षा करते हे।

यद्यपि इस विषय को सरलता से समझना और समझाना कठिन है तथापि ध्यान देने से जल्दी समझा भी जा सकता है।

किसी वस्तु को जानने और समझने के लिए अकेला प्रत्यक्ष ही साधन नही हे। हम लोगो के प्रत्यक्ष प्रमाण से तो बहुत कम, स्थूल समीपवर्ती पदार्थ ही जाने जाते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत बडी वस्तुराशि ऐसी है जो प्रत्यक्ष से हमे नही जान पडती। उसकी भी सत्ता है और वह भी प्रमाणसगत हे। उसका दर्शन हमे या तो कारणसम्बन्ध से होता है या कार्यसम्बन्ध से अथवा आगम से। किसी वस्तु का दर्शन कारणसम्बन्ध से होता है और किसी का कार्यसम्बन्ध से। इस विषय को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए–

आप यमुना के किनारे खडे हैं। आप जिस जगह खडे हैं उस जगह से यद्यपि यह नही दिखाई देता कि यमुना कहा से निकली है और कहा तक गई हे। आप उसका आदि–अन्त नही देख पाते। फिर भी उस बीच के भाग को देखकर यह अवश्य विश्वास करते हैं कि जब यमुना का बीच है तो उसका आदि और अन्त भी कही न कही होगा ही। अब विचारना चाहिए कि आपने यमुना के आदि और अन्त को प्रत्यक्ष न देखने पर भी कैसे समझ लिया ? इससे यह निष्कर्ष निकलता हे कि मनुष्य के पास ऐसा भी कोई ज्ञान है जो प्रत्यक्ष से भिन्न है और उस ज्ञान का उपयोग वह सदा किया करता हे। अगर वह ज्ञान, जिसे न्याय शास्त्र मे अनुमान और तर्क आदि नामो से कहा गया है, न हो तो लोकव्यवहार एक दिन भी चलना कठिन हो जायगा। फिर क्या कारण है कि लौकिक बातो मे जिस ज्ञान का उपयोग करते हैं, उसका धार्मिक बातो मे नही करते ? ईश्वर के विषय मे क्या कहा जाता है कि वह प्रत्यक्ष से दिखाई नही देता, इसलिए उसका अस्तित्व ही नही !

अगर परमात्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई नही देता तब भी वह

प्रत्यक्ष वह नही है। असली प्रत्यक्ष वह है जो इन्द्रिय या मन के द्वारा न होकर सीधा आत्मा से ही होता है। ऐसा प्रत्यक्ष योगियो को होता है, इसलिए वह योगिप्रत्यक्ष भी कहलाता है। योगिप्रत्यक्ष परमात्मा के स्वरूप को साक्षात् जानता है। अतएव यह कहना कि प्रत्यक्ष से परमात्मा नही दिखाई देता, ठीक नही है। उस प्रत्यक्ष को पाने के लिए साधना और तपश्चर्या की आवश्यकता है। जो लोग सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ साधना मे रत रहते है उनमे अलौकिक शक्ति पैदा हो जाती है। उनके आत्मा के बन्धन कट जाते है। वे परमात्मा के स्वरूप को देखते ही नही, स्वय भी क्रमश परमात्मा बन जाते है। यह अन्तिम सिद्धि है। इसका आरम्भ परमात्मा के प्रति श्रद्धा और प्रीति से होता है। श्रद्धा और प्रीति को उत्पन्न करने के लिए भगवान् का नाम–स्मरण सर्वप्रथम उपयोगी होता है।

मित्रो ! परमात्मा के नाम–स्मरण मे और ध्यान मे अपूर्व शक्ति है। उसकी महिमा का बखान करना मेरे लिए सभव नही है। बडे–बडे महात्मा, सत और पण्डित भी हार मानते है। परमात्मा के ध्यान और स्मरण से अत्यन्त कठोर कर्मो का भी विनाश हो जाता है। आपके कल्याण का सरल से सरल कोई मार्ग अगर है तो यही है। अगर आपके चित्त मे अपना कल्याण करने की इच्छा जागी हो तो आप इस उपाय का सहारा लीजिए। निस्सन्देह आपका कल्याण होगा।

4. श्री अभिनन्दन स्वामी

प्रार्थना

श्री अभिनन्दन दु खनिकन्दन, वन्दन पूजन योगजी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी।।1।।
'सवर' राय 'सिधारथ' राणी, तेहनो आतमजातजी।
प्राण पियारो साहब साचो, तू ही मात ने तातजी।।2।।
कइएक सेव करे शकर की, कइएक भजे मुरारजी।
गणपति सूर्य उमा कइ सुमरे हू समरू अविकारजी।।3।।
देव कृपा सू पामे लक्ष्मी, सो इण भव को सुखजी।
तो तूठा इन भव परभव मे, कदी न व्यापे दु खजी।।4।।
यद्यपि इन्द्र नरेन्द्र निवाजे तदपि करता निहालजी।
तू पूजनीक नरेन्द्र इन्द्र को, दीनदयाल कृपालजी।।5।।
जब लग आवागमन न छूटे, तब लग ए अरदासजी।
सम्पत्ति सहित ज्ञान समकित गुण, पाऊ दृढ विश्वासजी।।6।।
अधम उधारण विरुद तिहारो, जोवो इण ससारजी।
लाज 'विनयचद' की अब तो ते भवनिधि पार उतारजी।।7।।

(क)

श्री अभिनन्दन दु ख निकदन, वन्दन पूजन जोग जी।।

प्राणी का स्वभाव है कि वह अपने लिए सब कुछ करता है। लोग कहते है अमुक आदमी अमुक का काम करता है पर जरा गहराई से सोचें तो प्रतीत होगा कि सब अपने-अपने काम मे लगे है। कोई किसी दूसरे के [illegible] निज पदार्थ का जो स्वभाव या गुण है उसके अनुसार [illegible] दूसरे लोग [illegible] लाभ उठा ले। [illegible] वर्तमान के [illegible]

[illegible]

पकाश और उष्णता देने के कारण हम सूर्य को सूर्य मानते है। जल अगर प्यास न बुझावे तो उसे जल कौन कहे ? पवन श्वास न दे तो वह पवन ही क्या ? तात्पर्य यह है कि पत्येक अपने–अपने काम मे लगा है। जिस परमात्मा के हम गीत गाते है उसमे यदि दूसरे के दु ख को हरण करने की अलौकिक शक्ति न होती तो उसे भी कोई परमात्मा न कहता। इस गुण का जिसमे अभाव है वह परमात्मा नही कहलाता।

हम अपनी आत्मा को सुखी बनाने के लिए परमात्मा को मानते–पूजते है। अपनी आत्मा के सुख के लिए उसे मानना पडता है। प्यासा पुरुष पानी से रूठ कर बैठ जाये भूखा आदमी भोजन पर कुपित होकर बैठ जाये, जो अन्धेरे मे है वह अगर प्रकाश से रूठ जाये तो इसमे हानि किसकी ? रूठने वाला हानि उठायेगा या जिनसे रूठा है वे पदार्थ हानि उठावेगे ?

'रूठने वाला ।'

इसी तरह हम परमात्मा से रूठ कर बैठे रहे, उससे प्रीति न करे तो इसमे परमात्मा की कुछ हानि नही है, बल्कि हमारी ही हानि है। आधिक–व्याधि रोग दु ख आदि से घिरा हुआ मनुष्य अगर उस दु ख हरने वाले को याद न करे परमात्मा उसे न सुहावे तो समझना चाहिए कि उसका दुर्भाग्य है।

लोग अपने भाग्य को इसी से अच्छा समझते है कि उन्हे भोजन, पानी प्रकाश और वायु आदि यथासमय मिल जाते है। वे इन छोटी–छोटी बातो से अपना सद्भाग्य समझ लेते हे। इसी तरह भक्त लोग ईश्वरभक्ति मे सुख मानते हे। उसके मिल जाने पर अपने भाग्य को सद्भाग्य समझते है। वे कहते है–

श्री अभिनन्दन दु खनिकन्दन, वन्दन पूजन जोग जी,
आसा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी।

हे अभिनन्दन तू दु ख का नाश करने वाला है, इसीलिए तू वन्दनीय ओर पूजनीय हे।

लोग आज सब तरह से दु खी है परन्तु भगवान् से, जिनमे दु खो के नाश करने का गुण है विमुख रहते हे। ऐसा तो कही नही देखा जाता कि प्यास लगने पर मनुष्य पानी के पास न जाते हो ओर उसकी इच्छा न करते हो बल्कि पानी के पास जाते है ओर पानी की इच्छा करते हे परन्तु दु ख मे पडे हुए भी भगवान की इच्छा करने वाले बहुत कम है।

लोग दु ख मे पडे हुए हें फिर भी भगवान से विमुख है। इसका कारण क्या है ? इस कारण पर विचार करोगे तो परमात्मा से प्रेम–सम्बन्ध स्थापित होगा। परमात्मा का सच्चा स्वरूप क्या है ? और दु ख कैसे पैदा होते तथा केसे नष्ट होते हे ? यह जान लेते तो परमात्मा से विमुख न होते। किन्तु दु ख क्या है यह नहीं जानते और इसी कारण परमात्मा से विमुख हो रहे हैं।

दाद रोग वाले दाद को खुजलाते हैं। क्या उससे आराम मिलता हे ?

'नही ।

फिर भी क्या लोग खाज को खुजलाते नही हैं ? ऐसे ही अज्ञानी सुख और दु ख की अज्ञानता के कारण परमात्मा से भेट नही करता और उससे विमुख रहता है। जो सुख और दु ख को समझ लेगा वह परमात्मा से भेट किये विना कदापि न रुकेगा।

सुख और दु ख वास्तव मे क्या चीज है ? लोग मानते हैं कि इच्छित वस्तु का मिलना सुख और न मिलना दु ख है। परन्तु मनमानी चीज मिल जाना सुख कैसे है ? उसी चीज से एक सुख मानता है और दूसरा दु ख मानता हे फिर वह चीज सुखदायक कैसे हुई ? सोने के आभूपण पहनने वाली को पीतल के आभूपण दो तो वह प्रसन्न होगी?

'नहीं ।

आर जिस पीतल क भी आभूषण न मिलत हा उसे पीतल क आभूपण दो ता वह प्रसन्न हाकर पहनगी ओर सुख मानगी। वास्तव म ससार की इन सामान्य वस्तुआ म सुख ओर दु ख अज्ञान से पेदा हाते हैं। इनका मिलना सच्चा सुख नही हें।

कुत्ता सूखी हड्डी चबात समय अपनी जाड से निकलन वाले खून को चाट खुश हाता है। वह समझता हे कि ससार म इससे बढकर कोई चीज ही नही है। पर आप सूखी हड्डी चबात दखकर उसे धिक्कारग। इसका कारण क्या ह ? कुत्ता उसमे अपूर्व आनन्द मान रहा ह ओर आप उसे धिक्कारत क्या ह ? इसका कारण यही ह कि उस कुत्ते का ज्ञान नही ह आर आपका ज्ञान ह। [illegible] अन्तर आप म और ज्ञानियो म है। आप ससार की वस्तुआ म सुख [illegible] अनित्य और दु ख का कारण समझकर छा [illegible] सुख ज्ञानिया की दृष्टि म दु ख ह। आप जब तक इ [illegible] दु ख [illegible] सुख समझत ह–सुख मानत रहग तब तक [illegible]

[illegible]

किसी ने मीरा बाई से कहा—तुम्हे राणा सरीखे पति, राज्य का सुख—वैभव आदि मिला है, फिर भी तुम उदासीन होकर साध्वी जैसी फिरती हो और ससार की कीमत नही समझती । इसमे तुम्हे क्या आनन्द मिलता है?

मीरा ने उत्तर दिया

ससारीनो सुख काचो, परणी ने रडापो पाछो,
तेने घेर सिद जैये रे मोहन प्यारा।
मुखडानी माया लागी रे मोहन प्यारा।

मैने ससार के सुखो की जाच कर ली। वह सच्चे नही निकले। इन सुखो मे मुझे सत्यता नजर ही नही आई। यह सुख झूठे है। मै इन झूठे सुखो से प्रीति कैसे करू ? इसीलिए मैने परमात्मा से प्रीति की। विवाह का सुख सच्चा सुख नही है। मै स्वामी की दासी बनू, उनकी सेवा करू और ब्याह पर रडापा भुगतू । ऐसे कच्चे सुख मे क्यो पडू ।

मित्रो । मीरा की इस बात पर आप यदि व्यापक दृष्टि से विचार करे तो आपको मालूम होगा कि ससार के सब सुख, सुख नही, अपितु दु ख है। जिन वस्तुओ से आप प्रेम करते है वे वस्तुए आपसे तो प्रेम करती ही नही, फिर आपके प्रेम करने से क्या लाभ ? आपने सोने के कडे से प्रेम किया। उसे पहन कर गर्व अनुभव किया, परन्तु वह कडा भी आपसे प्रेम करता है ?

'नही ।'

फिर तुम कैसे कच्चे आदमी हो कि उस कडे से प्रेम करते हो और उस पर अभिमान भी करते हो ?

उस कडे को आपके सिर पर कोई दे मारे तो क्या वह सुख देगा? चोर चुरा ले जाये तो क्या वह जाने से इन्कार कर देगा? आपको रोना पडेगा? फिर पहले ही क्यो नही विचार किया कि जिससे मै प्रेम करता हू, वह मुझसे प्रेम ही नही करता। अगर प्रेम करता तो क्यो मेरा साथ छोडता। भाइयो, यह प्रेम मोह है, अज्ञान है।

इसी प्रकार ससार की और—और वस्तुओ की परीक्षा कर देखे। सब मे ऐसी ही बात मिलेगी।

आप अपने शरीर से प्रेम करते हैं, जरा इसकी जाच करके देखो कि यह आपको स्वीकार करता हे या नही। कोई भी मनुष्य अपने बाल सफेद हुए देखना चाहता है ?

नही ।'

सभी यह चाहते हैं कि मेरे वाल काले ही रहे। पर वे काले नहीं रहते, सफेद हो जाते हैं। ऐसी अवस्था मे यह शरीर किसका रहा—आपका या पुद्‌गलो का ?

'पुद्‌गलो का'

यह अपना कहना नहीं मानता। अपन इसका कहना मानो यह कितना अज्ञान हे ! इस अज्ञान मे लिप्त होकर लोग दु खो को सुख समझते हैं। इस अज्ञान के मिट जाने पर ही समझ मे आ सकता हे कि दु ख क्या हे ओर सुख क्या हे ?

मित्रो ! यह ससारी सुख कच्चा हे। इसके धोखे मे पडना उचित नही है। इस सुख के प्रेम मे पडना सच्चा प्रेम नहीं हे। सच्चा प्रेम तो परमात्मा—प्रेम ही है जो कल्याणकारी हे। परमात्मा से प्रेम करना ही सच्चा सुख हे। परमात्मा के प्रति साधु होकर ही प्रेम किया जा सकता हे ओर गृहस्थावस्था मे नहीं किया जा सकता, ऐसा समझना भूल हे। गृहस्थ भी अगर इतना समझ ले कि यह वस्तु जो हमसे प्रेम नहीं करती वास्तव मे हमारी नही हे, तो वह दु ख से वच सकेगा।

सोने का कडा अगर चोर चुरा ले गया तो उसमे दु ख क्यो माना जाये ? वह हमारा नही था। हमारे न होने का प्रमाण यही हे कि चोर उसे ले गया। जो वास्तव मे हमारा हे उसे चोर या ओर कोई ले ही केसे सकता है ? कडा सुख के लिए पहना था, फिर उसके निमित्त से दु ख क्यो मनाया जाये ?

इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के सम्वन्ध मे अगर अनित्यता ओर अन्यता का विचार किया जाये जो दु ख नही होगा। ऐसा समझने वाले मोत को भी मगलरूप समझते हैं। वे मोत से किचित् भी भय नही करते।

जिस वस्तु से सुख लिया हे उस वस्तु के लिए अन्तरात्मा मे क्लेश होने से कर्म--वन्धन होता हे। ज्ञानी पुरुष उस वस्तु की अनित्यता समझ लेते हैं अत उन्हे न तो दु ख होता हे न कर्मबन्धन ही होता हे।

दु ख किस प्रकार जीता जा सकता हे ? यह वात समझने के लिए दृष्टात लीजिए

किसी पेड की एक डाल पर एक पक्षी ओर एक वन्दर वेठा हे। यह दोनो एक ही झाड के वासी लगते ह परन्तु वारीक नजर से देखो तो दोनो के वैठने मे अन्तर हे। बन्दर पेड के बल पर बेठा हे ओर पक्षी अपने पखो के

बल पर बैठा है। अगर पेड या उसकी डाल टूट कर गिर पडे तो कष्ट बन्दर को ही होगा। चोट बन्दर को ही लगेगी। पक्षी तो उड जायेगा।

हम अगर पक्षी की तरह रहे तो हमारा कल्याण है—अकल्याण नही। ससार—डाल यदि टूट कर गिर जाये तो हम नीचे न गिरे ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए। ज्ञानियो की यही तो विशेषता है कि वे इस प्रकार का प्रबन्ध पहले ही कर लेते है। जो ऐसा नही करते, ससार सदैव उनके लिए दु खदायी रहता है।

ससार की वस्तुए दु खदायी न हो तो, इसके लिए क्या करना चाहिए?

श्री अभिनन्दन दु खनिकन्दन, वन्दन पूजन जोगजी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोगजी।।

भगवान अभिनन्दन की शरण मे जाने से—उनकी भक्ति मे तल्लीन रहने से आत्मा दु ख मे नही पडेगी। आप लोग आज मौज—मजे मे डूब कर इस बात को भूल रहे है, परन्तु जिस दिन ससार की डाल टूटेगी उस दिन सैकडो पश्चात्ताप करने पर भी आप कुछ न कर सकेगे।

आप मेरी बातो को भलीभाति समझ जाए, इसीलिये यह उदाहरण दिये है। महापुरुषो के चरित भी इसी के लिए है।

(ख)

प्राणी—मात्र सुख की ही अभिलाषा करता है। दु ख कोई नही चाहता। सुख की प्राप्ति के लिए सब प्राणी न्यारे—न्यारे प्रयत्न करते हैं, परन्तु उन सबको यह ज्ञान नही है कि सच्चे सुख की कुजी क्या है ? अर्थात् सच्चा सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है, जिसके मिलने पर दु ख न हो। इसी अज्ञान के कारण अधिकाश प्राणी सुख के इच्छुक होते हुए भी दु ख के भागी हो रहे है।

ठडी बरसाती हवा चलने पर कीडे—मकोडे अपने—अपने स्थानो से बाहर निकल कर ऐसी जगह घूमने लगते है जहा गाडी, तागे आदि का आवागमन होता रहता हे। यह कीडे—मकोडे बाहर तो सुख के लिए निकले थे परन्तु ज्ञान न होने से सुख की वह चाह घोर दु ख का कारण बन जाती हे और उन्हे प्राणो से हाथ धोना पडता है। इसी प्रकार ज्ञानहीन मनुष्य सुख

के लिए उद्योग करता है, पर वह उद्योग दु ख का हेतु सिद्ध होता है। जिस वस्तु मे सुख समझ कर उससे मोह करते है, वही दुखदायी हो जाती है। इसका कारण मनुष्य का अज्ञान ही है। अज्ञान के ही प्रताप से सुख चाहने और सुख के लिए प्रयत्न करने पर भी दु ख ही पल्ले पडता है।

कीडे–मकोडे तो अज्ञानी हैं ही, परन्तु जो समझदार कहलाते हैं उनमे भी अज्ञान मौजूद है। यह समझ लीजिए कि जिसको सादा अन्न भी नही पचता, वह मिष्ठान्न क्यो खाता है।

'अज्ञान से।'

मिष्ठान्न खाया जाता है सुख के लिए, मगर अज्ञान के कारण ही मिष्ठान्न दु खदायी हो जाता है। मनुष्य कहता है–क्या करू, पचता नही। वह पहले क्यो नही सोचता कि जब पचता नही तो खाऊ क्यो?

आपके जीवन मे रात–दिन यह खेल होते हैं, पर अज्ञान के वश आप लोग इन पर विचार नही करते। अगर खाने और खेलने मे ध्यान रक्खा जाये तो दु ख पास फटकने भी न पाये।

इस प्रकार की तरकारी, चटनी, अचार, पापड आदि किसलिए बनवाये जाते है ? इसीलिए तो कि बिना भूख भी इनके सहारे भोजन खाया जाये। जिसे भूख लगने पर ही खाना है उसे इन चीजो की सहायता लेने की आवश्यकता नही होती। भूख मे तो रूखी–सूखी रोटी भी आनन्द ही देगी।

खाने मे ही नही, पहनने–ओढने तथा गहने आदि मे भी देखते हो कि कितना दु ख है, परन्तु सुख की अभिलाषा से मोह के वश होकर उन्ही को अपनाते जाते हो।

जो पुरुष विवेक को विस्मृत करके किसी काम को किये जाता है वह चाहे साधु हो या गृहस्थ, वह अज्ञानी ही कहलाएगा। यह अज्ञान पाप से पैदा होता है और उस पाप को काटने का सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की जाती है –

श्री अभिनन्दन दु खनिकन्दन, वन्दन पूजन जोगजी।

इसके पश्चात् चाहा जाता है–

आशा पूरो चिन्ता चूरो आपो सुख आरोग जी।

जब हमारे हृदय मे यह है कि हमारा दु ख नष्ट होना ही चाहिए, तब हमको भगवान् अभिनन्दन की शरण लेना उचित है। उनकी शरण मे जाने से सब चिन्ताओ का नाश हो कर आशाए पूरी होगी और कभी नष्ट न होने वाला सुख प्राप्त होगा। इन भगवान् को दु खनिकन्दन कहा है—अर्थात् दु खो का नाश करने वाले है। भगवान् दूसरो का दु ख नष्ट करते है इसी से वह वन्दनीय है और पूजनीय है।

लोग सूर्य को वन्दनीय और पूजनीय इसलिए मानते है कि वह अन्धकार का नाश करके आखो को ज्योति देता है। मगर सूर्य के उपकार की व्याख्या इतनी ही नही है, बल्कि ससार के सचालन के लिए प्रकाश वही देता है। उसी के प्रताप से अन्न पकता है, जल बरसता है और फल—फूल उत्पन्न होते है। अपने शरीर मे जो रक्त दौड रहा है वह सूर्य की ही गर्मी से। अपन जो शब्द सुनते है सो सूर्य के ही प्रताप से। यदि सूर्य वायु को गर्म न करे तो शब्द वही जाडे मे ठिठुर जाये—दूर तक पहुचे ही नही। मतलब यह है कि जड पदार्थो का खेल सूर्य पर निर्भर है। ऐसी अवस्था मे अगर कोई सूर्य को वन्दनीय मानता है तो क्या वह सूर्य पर अहसान करता है ?

'नही ।'

इस चिदानन्द ने अनन्त सूर्यो का प्रकाश पाया है, परन्तु इसके आतरिक कर्म नही कटे। इससे सिद्ध होता है कि द्रव्य के प्रताप से व्यावहारिक कार्य हुए, आतरिक कार्य नही हुए। यह चिदानन्द सूर्य विमान मे भी उत्पन्न हो आया फिर भी इसका विस्तार नही हुआ। इसलिए अब भावसूर्य भगवान अरिहन्त को देखे। यह भगवान् अरिहत सूर्य की भाति, किन्तु आतरिक दु ख का नाश करने वाला है। इसलिए मेरा वदनीय और पूजनीय वही है।

प्रश्न किया जा सकता है कि भगवान् दु खो का नाश तो करते नही, फिर उनकी प्रार्थना करने से क्या लाभ है ? वह तो वीतराग है। उन्हे दूसरे के दु ख दूर करने ओर न करने से क्या मतलब ? इस प्रश्न का भी समाधान करना उचित है।

सूर्य अपने तेज से प्रकाशमान होता है। वह किसी को काम मे लगाता है ? अर्थात क्या वह यह कहता हे कि तू यह काम कर ?

'नही।'

सूर्य सब को काम मे लगावे तो कोई गरीब रहे ?

'नही।'

यद्यपि सूर्य के निमित्त से वस्त्र–भोजन–सामग्री आदि की उत्पत्ति होती हे, फिर भी अगर कोई कहने लगे कि जब सूर्य सब काम करता हे तो मैं क्यो करु? तो समझना कि ऐसा कहने वाला मूर्ख हे। उसने सूर्य की असलियत ही नही समझी। सूर्य तो तटस्थ रहकर प्रकाश कर देता हे ओर उसके होने पर सब अपने–अपने काम मे लग जाते हें।

इस प्रकार काम तो सब अपन ही करते हें, परतु करते तो सूर्य के प्रकाश से ही हैं न ?

'हा।'

तो यह तात्पर्य निकला कि सूर्य निमित्त हे ओर उपादान कारण दूसरे–दूसरे हैं। सूर्य–रूप निमित्त के बिना वे काम नही हो सकते। सम्भव है, इतना कहने पर भी आप न समझे हो। इसलिए ओर सरल करके समझाता हू।

आप कलम से लिखते हें। बताइए कर्त्ता आप हे या कलम ? आप कहेगे कि कर्त्ता हम हैं और निमित्त कलम हे। परतु दीपावली के दिन कलम की पूजा क्यो करते हे? कलम बनाई हे तुमने ओर लिखते भी हो तुम्ही, फिर पूजा करते हो कलम की। इसका क्या कारण हे ?

'वह सहायता देती हे।

इसी तरह परमात्मा काम नही करता। वह तो तटस्थ हे मगर उसी की बताई हुई क्रिया से ही काम होता है। इस से सूर्य की महिमा सूर्यभक्तो ने गाई हे ओर परमात्मा की महिमा परमात्मा के भक्तो ने गाई हे।

जिस तरह अक्षर लिखने मे कलम सहायक होती हे उसी तरह यदि परमात्मा मोहादि का नाश करने मे सहायक न हो तो कभी दु ख कम नही हो सकता अर्थात सुख प्राप्त नही हो सकता।

आप जो अक्षर लिखते हें वह दूसरो से देखकर ही लिखते हें। किसी शिक्षक ने आपको सिखाने के लिए अक्षर पट्टी पर लिख कर बतलाये होगे। उन्ही को देखकर आपने दूसरे अक्षर लिखे होगे। यह सत्य हे न ?

जी हा ।

उन अक्षरो ने आपसे कहा था कि आप हमको देख कर लिखे?

'नही ।'

फिर भी उनका उपकार मानते हो ?

हा ।'

ऐसे ही यदि पूर्वकालीन महात्मा अरिहत पद पर न पहुचते तो उसके साथ वाले किस आदर्श को देखते ? आज हम लोग जो कुछ धर्मकार्य करते है, वह पूर्वकाल से महात्माओ के ही प्रकाश से कर रहे है, इसलिए उनका उपकार मानना चाहिए। यह उपकार मानकर ही भक्त लोगो ने कहा है–

श्री अभिनदन दु खनिकन्दन, वंदन पूजन जोग जी।

हे भगवान् अभिनदन ! तू दु खो का नाश करने वाला है। इस कारण वदनीय और पूजनीय है। इसके बाद–

आसा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी।

मै आपकी शरण आया हू। दूसरो की शरण मे गया था तो उन्होने उल्टा ससार मे डाल दिया। शुभ सहायक के बिना आत्मा नही चढती और मुझको जो सहायक मिले थे वे अशुभ थे। उनसे सहायता लेने पर पापानुबधी पुण्य मिलता है जो थोडा सुख और फिर दु ख देता है। आपकी सहायता से पुण्यानुबधी पुण्य की प्राप्ति होती है, जिससे आत्मा चढकर फिर गिरती नही हे।

सुबाहुकुमार को तेरी सहायता मिल जाने से कोई कष्ट न उठाना पडा और धीरे–धीरे मोक्ष भी मिल गया। इसीलिए मै सब जजाल छोडकर तेरी शरण मे आया हू। तुझ मे रागद्वेष नही है। रागी से राग करने पर आत्मा मोह मे डूब कर कर्मबध करती है और वैरागी अर्थात् तुझ परमात्मा से राग करने पर आत्मा कल्याण करके परमात्मदशा को प्राप्त हो जाती है। इसीलिए मै तेरी शरण मे आया हू।

मित्रो ! नाम तो परमात्मा का लिया हे परतु परमात्मा से प्रेम करो या परमात्मा के आदेशानुसार प्राणीमात्र से प्रेम करो, बराबर है। जैसे राजा

की सहायता करना राज्य की सहायता करना हे ओर राज्य की सहायता करना राजा की सहायता है। इसे समझने के लिए उदाहरण लीजिए–

एक सेठ का लडका कुए मे डूब रहा हे। किसी दयालु ने उस डूबते हुए लडके को वचा लिया। ऐसी दशा मे सेठ वचाने वाले पर खुश होगा या नही ?

'होगा।'

इसी प्रकार परमात्मा सव का माता–पिता है। परमात्मा की सेवा करना चाहते हो तो उसकी सतान पर कृपा रक्खो, उन पर दया करो। चाहे राग से ही सेवा करो, परतु वही पुण्य वधेगा जो अरिहत की सेवा करने पर बधता है।

कई लोग कहते हैं–परमात्मा कहा है ? उनको समझाना चाहिए कि ससार के सब जीव स्वभावत परमात्मा ही हैं। सुधर्मा स्वामी कहते हैं–

दाणाण सेड्ढ अमयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज वयंति।
तवेसु वा उत्तमं बभचेरं, लोगत्तमे समणे नायपुत्तं।।

ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने मुझे समझाया हे कि प्राणियो को अभयदान का पात्रा समझो, तो सुख तुम्हारे समीप ही है ओर भयभीत प्राणियो को अभयदान देने वाले के समीप ही परमात्मा हे।

मित्रो ! दवाई का पात्र कौन हे–रोगी या निरोगी ?

'रोगी !'

चिकित्सक किसे दवाई देता हे ?

'रोगी को !'

अगर कोई चिकित्सक रोगी को दवा न दे तो उसे आप क्या कहेगे?

'मूर्ख !'

इसी आधार पर समझो कि भगवान ने सव दानो मे अभयदान को उत्तम वतलाया हे, परतु अभयदान का पात्र कोन हे ? अभयदान उसी को दिया जा सकता हे जो भय पाया हुआ हे भय के दु ख से पीडित हो। जिसे भय ही नही हे उसे अभयदान लेने की क्या आवश्यकता हे ?

लेकिन आपको तो यह समझाया जाता हे कि किसी का दु ख दूर कर दोगे तो कर्मवध हो जायेगा। कहा तो भगवान का उपदेश ओर कहा

तेरापथियो का कथन । तेरापथियो का कहना है कि भय न उपजाना, बस यही अभयदान है।

इनसे पूछना चाहिए कि भय न उपजाना अभयदान है तो जिसको भय हुआ है उसका भय मिटा देना क्या भयदान हुआ ? मित्रो! जो अभयदान का पात्र हो उनको अभयदान दो। अभयदान का पात्र भयग्रस्त जीव ही है।

भयभीत प्राणी को अभयदान देने की आज्ञा जैनशास्त्र मे तो है ही, पुराणो ने भी अभयदान की महिमा गाई है। महाभारत मे कहा है

एकत काचनो मेरु कृत्स्ना चैव वसुधरा।
एकस्य जीवित दया न्न च तुल्य कदाचन।।

अर्थात्–हे युधिष्ठिर । एक ओर कचन का मेरु और रत्नमय पृथ्वी का दान करो और दूसरी ओर भयभीत को अभयदान दो। इन दोनो मे अभयदान ही श्रेष्ठ दान है।

(ग)

मै प्रतिदिन प्रार्थना के विषय मे कुछ कहता हू। प्रार्थना करना और प्रार्थना के विषय मे अपने भावो को प्रकट करना मेरे लिए यह बहुत प्रिय कार्य है। इसलिए आज भी कुछ कहता हू।

ससार मे जितने भी आस्ति धर्म के अनुयायी है, किसी न किसी रूप मे वे परमात्मा की प्रार्थना अवश्य करते हैं। परन्तु सच्ची प्रार्थना का रूप कैसा है, इस सम्बन्ध मे कहने की इच्छा है।

शास्त्र मे कहा है कि ससार मे चार प्रकार के प्रार्थना करने वाले है– (1) आर्त्त (2) जिज्ञासु (3) अर्थार्थी और (4) ज्ञानी।

आर्त्त लोग केवल दु ख मिटाने के लिए प्रार्थना करते है। सिर दुख रहा है तो, हे परमात्मा, सिर का दर्द मिटा दे । पेट दुखता है तो, हे भगवन्! पेट अच्छा कर दे । अर्थात ऐसे लोग चिन्ता और दु ख के समय परमात्मा का नाम लेते है। इस सम्बन्ध मे एक परम्परा–सी पड गई है

ते ही तू याद रे दरद मे।

अर्थात्–प्रभो । दु ख आ पडने पर तू याद आता है। कहने का तात्पर्य यह हे कि आर्त्त लोग दु ख से पीडित होने पर दु ख को दूर करने के लिए परमात्मा का स्मरण करते हे।

दु ख की सीमा भी निराली–निराली हे। वडे को वडा ओर छोटे को छोटा दु ख होता हे। वालकपन मे भूख का दु ख होता हे जो मा के स्तनपान करवाने पर मिट जाता हे। वही वालक जव वडा होता हे ओर लाखो की सम्पत्ति का स्वामी वनता हे, उस समय आहार की भूख के दु ख के वदले उसका दु ख ओर ही प्रकार का होता हे। तव उसे मान–वडाई आदि की नवीन भूख लगती हे। उस समय वह मान–वडाई का इच्छुक होकर पुत्र स्त्री आदि की अभिलाषा से परमात्मा की प्रार्थना करता हे। यह अर्थार्थी हे, ज्ञानी नही, उसने परमात्मा की सत्ता को नही पहचाना।

जैसे एक चोर चाहता है कि में जेल न भेजा जाऊ। दूसरा चोर कहता हे कि मेंने चोरी की हे, इसलिए जेल जाने मे हर्ज नहीं। मगर में चाहता हू कि जेल जाने के कारण–चोरी करने की टेव–नष्ट हो जाय। इसी प्रकार मुमुक्षु पुरुष पाप से छूटने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हें, दु ख से छूटने के लिए नही। उनका कहना हे दु ख तो अनेक बार मिटा ओर उससे तात्कालिक लाभ भी मिला, परतु दु ख के कारण नष्ट न होने से वह लाभ स्थायी नही हुआ। अव अगर तात्कालिक लाभ ही चाहिए तो उसके लिए परमात्मा से याचना करने की क्या आवश्यकता हे ? ऐसा लाभ तो ओरो से भी मिल सकता हे। ईश्वर से तो में यही चाहता हू कि मेरे दु ख के कारणो का ही समूल नाश हो जाये।

अर्थार्थी, परमात्मा को किसी मतलव से याद करते हें, परमात्मा को अपनी आवश्यकताए पूर्ण करने वाला मानकर उसकी भक्ति करते हें। मतलव न हो तो उसे याद न करे। इसलिए उन्हे सकट के समय ही परमात्मा की याद आती हे। उनका यह परमात्म–स्मरण भी श्रेष्ठ नही हे।

हा, ज्ञानी क्या प्रार्थना करता हे वह अकथनीय हे। उसका वर्णन करने की शक्ति किसी मे नही हे। आगम कहता हे

तक्का तत्थ न विज्जइ

तथा–

यत्र वाचो निवर्त्तन्ते।

जिस स्थान पर जाकर वाणी सहित मन लोट पडा उसका दिग्दर्शन तो कराया जा सकता ह परन्तु उस स्थान पर पहुचने वाला ही उस वस्तु को

भली–भाति जानता है। गूगा गुड के स्वाद को क्या बतलाएगा ? गुड मीठा तो उसे लगता है परतु उस मिठास का वर्णन करने की शक्ति उसमे नही है। फिर भी जैसे गूगा गुड खाकर उसका स्वाद पकट करने के लिए मुह मटकाता है, उसी पकार मै भी इस विषय मे कुछ कहने की चेष्टा करता हू।

ज्ञानी कहते है–आत्मा और परमात्मा मे भेद ही नही है। मै किससे क्या मागू ?

तू तसे प्रभु प्रभु सो तू है, द्वैत–कल्पना मेटो।
सुध चेतन आनन्द विनयचन्द परमारथ पद भेटो।
रे सुज्ञानी जीवा! भज ले रे जिन इकवीसवां!

जिसकी दृष्टि मे आत्मा और परमात्मा के बीच भेद ही नही रह गया है वह परमात्मा से क्या याचना करेगा ।

एक पतिव्रता स्त्री पूर्ण रूप से पति की हो गई। उसकी अर्धागिनी बन गई। क्या वह कहेगी कि यह मकान मेरा है और यह गहने मेरे है, सो मुझे दे दो ?

नही।'

मगर जो लोग सोने–चादी के पति–पत्नी है वे इन बातो को कैसे समझेगे ? आज तो दोनो की चाबिया अलग होती है। एक की वस्तु को हाथ लगाने का दूसरे को अधिकार भी नही होता। मगर जो सच्ची पतिव्रता है, अपने पति को प्राणो से भी अधिक चाहती है, वह क्या यह माग करेगी कि अमुक चीज हमे दे दो ।

पिता और पुत्र का सबध होने पर कौनसी वस्तु किसकी ? भेद रहने की बात निराली है परतु पूर्ण विश्वास होने पर यह चीज मेरी और यह चीज तेरी इस तरह का भेदभाव रहता है ?

नही ?

इसी प्रकार ज्ञानी परमात्मा के साथ अभेद–सबध स्थापित कर लेते हे। उनमे कोई भेद नही रहता। फिर माग के लिए अवकाश ही कहा हे ?

जिस दिन आत्मा उस कोटि पर पहुच जाती हे सब सासारिक सुख तुच्छ लगते हैं। आप सोचते होगे बिन सिर मुडाये अर्थात साधु हुए बिना यह

सुख नही मिल सकता, परतु यह बात नही हे। जिसकी भी आत्मा वहा पहुच जाएगी वही इस सुख को पा सकता हे। वास्तव मे आत्मज्ञान का अनुभव करके परमात्मा का साक्षात् करने का सुख अवर्णनीय हे।

ज्ञानियो की यह भावना हे। इस वास्ते जो ज्ञानी होकर परमात्मा की प्रार्थना करता है उसकी आत्मिक रचना निराली हे। जब आत्मा ओर परमात्मा की एकता हो जाती हे तभी यह निराली रचना बनती हे।

'हस' को उलट दीजिए' 'सह' बन जायेगा। 'सह' का सस्कृत रूप 'सोऽह' है। ज्ञानियो की भावना यह रहती हे कि 'ह–स' अर्थात् जो मे हू वही वह है और जो वह है, वही में हू। मुझमे और परमात्मा मे कोई अन्तर नही है।

य परमात्मा स एवाहं, योऽहं स परमस्तत.।
अहमेव मयाऽऽराध्य , नान्य कश्चिदिति स्थिति ।

अर्थात्–जो परमात्मा है वही मे हू। जो में हू वही परमात्मा है। अतएव मै स्वय ही अपना आराध्य हू। मेरा आराध्य ओर कोई नही है। यह असली–पारमार्थिक स्थिति है।

मगर ऐसा विचार कर अभिमान नही उत्पन्न हो जाना चाहिए। इस कोटि पर पहुचने के लिए सम्पूर्ण अभिमान को गला देना होता है। फिर जेसे मिश्री की डली जल मे गल जाती है, ऐसे ही आत्मा, परमात्मा के साथ एकाकार हो जाती है। अगर मिश्री की डली पानी मे न गली तो समझ लीजिये कि या तो वह मिश्री नही है, या जल से मिली नही हे। इसी प्रकार जिस आत्मा मे मेरे–तेरे की भेद–कल्पना बनी हुई हे, समझ लो कि वह 'सोऽह' नही बनी हे।

जिसकी जेसी इच्छा हो, परमात्मा का नाम भजे। वह–

श्री अभिनन्दन दु.खनिकन्दन, वन्दन पूजन जोग जी।

श्री अभिनन्दन भगवान दु ख का नाश करने वाले हे। उनकी प्रार्थना चाहे अर्थार्थी करे या ज्ञानी, प्रार्थना से दु खो का नाश होगा ही।

5. श्री सुमतिनाथ स्वामी

प्रार्थना

सुमति जिणेसर साहिबाजी 'मेघरथ' नृप नो नन्द।
'सुमंगला' माता तणो जी, तनय सदा सुखकन्द।।
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी।।1।।
सुमति सुमति दातार, महा महिमा निलोजी।
प्रणामु वार हजार, प्रभु त्रिभुवन तिलोजी।।2।।
मधुकर नो मन मोहियोजी, मालती कुसुम सुवास।
त्यू मुझ मन मोह्यो सही, जिन महिमा सुविमास।।3।।
ज्यू पकज सूरजमुखीजो, विकसे सूर्य प्रकाश।
त्यू मुझ मनडो गह्महोजी, सुनि जिन चरित्रहुलास।।4।।
पपईयो पीउ– पीउ करेजी, जान बर्षाऋतु मेह।
त्यू मो मन निसदिन रहे, जिन सुमरन सू नेह।।5।।
काम भोगनी लालसाजी, थिरता न घरे मन्न।
पिण तुम भजन प्रतापथी, दाझै दुरमति वन्न।।6।।
भवनिधि पार उतारियेजी, भक्त वच्छल भगवान्।
'विनयचन्द नी वीनती, थे मानो कृपानिधान।।7।।
श्री सुमति जिनेश्वर सायबा रे।

ससार की माया के बन्धन से आत्मा का छुटकारा कैसा हो ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। ससार के बन्धनो ने आत्मा को ऐसा जकड रक्खा है कि इससे आत्मा का निस्तार होना कठिन जान पडता है। मगर शास्त्रकार कहते है– हिम्मत मत हारो। पुरुषार्थ मत त्यागो। हिम्मत करने से सभी कुछ हो सकता है। आत्मा के लिए और कुछ न बने तो भगवान् से प्रीति करना सीखो। भगवान् से प्रीति करने पर आत्मा ससार के बन्धनो से मुक्त हो जाती है।

तब प्रश्न खडा होता है कि परमात्मा से प्रीति करना सीखे किससे? इसे सीखने के लिए किसके पास जाए ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए शास्त्रकारो का कथन है कि तुमको परमात्मा से प्रीति करना सीखने के लिए ओर कही नही जाना पडेगा, प्रकृति के नियम ओर ससार के पदार्थ ही प्रेम करना सिखा देगे।

भौंरा जब मकरन्द की सुगन्ध मे मग्न हो जाता हे तो वह ससार के किसी दूसरे पदार्थ की गरज नही करता। बस, इसी तरह अपने मन को उस परमात्मा से लगा दो, जिससे विषय–वासना पेदा न हो।

शास्त्र मे प्रेम का प्रत्यक्ष उदाहरण अरिष्टनेमि ओर राजीमती का दिया है। प्रेम की साक्षात् मूर्ति देखना हो तो राजीमती का उदाहरण मिलेगा, जिसमे भगवत्प्रेम ओतप्रोत है। तोरण से नेमिनाथ लोट गये विवाह किये बिना ही, उसकी तो कोई बात ही नही, पर राजीमती ने भगवान् से जो सम्बन्ध जोडरा, उनके लिए उसने कैस मर्मस्पर्शी उद्‌गार प्रकट किये ।

सखियो ने राजीमती को एक–एक ऋतु का पृथक्–पृथक् वर्णन और उसमे होने वाली कामवेदना को अच्छी तरह सुना कर दूसरा लग्न करने के लिए समझाया। पर राजीमती ने उनके कथन का एक ही उत्तर दिया–

प्रीति मे मैने वचन द्वारा है उसके वास्ते,
प्रेम का जो भाव है सारा है उसके वास्ते।
सुख से बढकर दु ख मुझे प्यारा है उनके वास्ते
यह शरीर इस जीव ने धारा है उनके वास्ते।
छोडकर यह देह जब परलोक मे भी जायगा
फिर भी उनके प्रेम मे डूबा हुआ ही जायगा।

राजीमती कहती हे– सखियो, किसे सकटो का भय दिखलाती हो? सकट तो मुझसे परे हो चुके हें। तुम कहती हो कि में कुवारी हू, पर मेंने अपना हृदय उनके चरणो मे समर्पित कर दिया हे। तुम मुझे सासारिक सुखो का प्रलोभन देती हो पर ससार के सुख मुझे अग्नि के समान सतापजनक दिखाई देते हैं ओर जो दु ख तुम्हे घोर से घोर प्रतीत होते हे वे मेरे लिए आनन्ददायक हें।

मित्रो । राजीमती की बात समझ मे आई ? आप लोगो ने कभी प्रेम किया हे? प्रेम की गति ऐसी ही हे। प्रेम मे दु ख भी सुखद हो जाता हे ओर सुख भी दु खप्रद वन जाता हे। आप लोग प्रेम की नही मोह की हालत म

है। मोह मे फस कर पैसो के लिए भूख–प्यास के सकट ऐसे सहे होगे जैसे साधु भी नही सहते है पर निष्काम पेम किया तो केवल भक्तो ने ही। दूसरे उस प्रेम के मिठास को क्या समझे!

राजीमती के दृष्टान्त से आपको कौन–सा तत्त्व ग्रहण करना चाहिए? वह तत्त्व यही है कि जिससे पेम किया जाये उससे सच्चा ही प्रेम किया जाये। बिना सच्चे पेम के आनन्द की अनुभूति नही हो सकती। सामायिक और सवर आदि के प्रति सच्चा प्रेम होगा तो वे आनन्ददायक ही प्रतीत होगे, नही तो उतनी देर भी दु खदायी हो जायेगी।

जो राजीमती जैसा प्रेम एक घडी को भी कर लेगा, ससार के सुखो मे मग्न न होकर उसी प्रेम मे आनन्द मानेगा उसे उसी अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होगी जो राजीमती को प्राप्त हुआ था।

जो प्रेम राजीमती मे पैदा हुआ, ससार मे अत्यन्त दुर्लभ है। फूल का तो नाश हो सकता है पर राजीमती के प्रेम का नाश नही हो सकता। फूल जल मे गल सकता है अग्नि मे जल सकता है, जाडे से जम भी सकता है, पर राजीमती के प्रेम का किसी भी प्रकार नाश नही हो सकता। पवन, पानी और आग–सब मिलाकर भी राजीमती का नाश नही कर सकते। शरीर का अर्थ न करो, प्रेम का अर्थ करो अर्थात् जिसमे प्रेम है उसका नाश नही है।

सीताजी अग्नि के कुड मे कूद पडी। अग्नि उन्हे जला सकी ?

नही ।

क्यो ?

'राम के प्रति प्रेम के प्रभाव से ।'

भक्तो ने भगवान् से निवेदन किया है

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्प,
दावानल ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिग।
विश्व जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्त
त्वन्नाम कीर्तनजल शमयत्यशेषम्।।
भक्तामर स्तोत्र।

प्रलयकाल की हवा से प्रेरित प्रचण्ड दावानल जल रही हो। उसकी लपटे उठ रही हो। उसकी भयकरता को देखकर ससार भले ही डरे, मगर जिसके हृदय मे तेरे प्रति प्रेम होगा उसे वह भीषण आग भी भयभीत नही कर सकती। भक्त के सामने ऐसी आग भी ठडी पड जाती है।

भक्त प्रह्लाद के विषय मे भी यही वात कही जाती हे। आग उसका क्या बिगाड सकी ? वह उल्टे जलाने वाले को ही जलाने लगी। यह प्रताप परमात्मप्रेम का ही था। ईश्वर से प्रेम करो तो कोई अग्नि जला नहीं सकती।

जिसके हृदय मे परमात्मा का प्रेम है, उस पर हलाहल जहर का भी कोई प्रभाव नही होता। भगवान् महावीर को चण्डकोशिक सर्प ने डसा। मगर क्या उन पर विष का असर हुआ ?

'नही !'

मीरा को जहर पिलाया गया। क्या वह मरी ?

'नही !'

बल्कि मीरा ने क्या उद्‌गार प्रकट किये–

राणा भेजा विष का प्याला पी के मगन होई।
अन्त में से तन्त काढ पीछे रही सोई।

यह सब ईश्वर–प्रेम का ही प्रताप था। जिसके हृदय मे ईश्वर–प्रेम का अमृत लबालब भरा होता है, उस पर जहर अपना प्रभाव नही दिखा सकता। वह जहर भी अमृत बन जाता हे।

मित्रो ! प्रेम मे आओ। प्रेम बडी चीज हे। प्रेम मे आने पर आपको कोई भी दु ख नही सता सकता।

चन्दनबाला ने भगवान् महावीर को उडद के बाकले (घूघरी) बहराये। किन्तु हृदय मे प्रेम था तो वे कितने फलीभूत हुए ? आज स्वर्णमय उडद के बाकले दो तो भी क्या ? ढोग से काम नही चलता, प्रेम होना चाहिए। दान और तप आदि मे भाव मुख्य है। सच्चे अन्त करण से थोडा भी करो तो वह कल्याणकारी हे।

बाइबिल मे लिखा हे कि राई जितना भी प्रेम हो तो वह पर्वत जितना काम करेगा। जिसके हृदय मे प्रेम है वह मागना नही जानता, देना जानता है।

आपके यहा कोई गुमाश्ता कुछ न लेकर काम करे तो उसके प्रेम की कितनी कीमत होगी ?

एक आदमी तुम्हे स्त्री भी देता हे ओर धन भी देता हे। इसके बदले तुम क्या देते हो ?

सारे घर की मालकिन बना देते हे !

क्यो ? प्रेम से। ओर अगर खरीद कर लाये होते तो ऐसा न होता।

सब कार्य शुद्ध अन्त करण से करो तो शाति मिलेगी। अगर कोई समझता है कि वह सब कुछ काम शुद्ध अन्त करण से करता है फिर भी शाति नही मिलती तो उसे समझना चाहिए कि कही न कही त्रुटि अवश्य है उसे वह त्रुटि दूर कर देने का पयत्न करना चाहिए। जो प्रेम करके अपना तन,मन, धन परमात्मा को अर्पित करता है उसे शाति मिले बिना रह ही नही सकती।

(ख)

परमात्मा के प्रति प्रेम–सम्बन्ध स्थापित करने के उनके लिए चरित्र को सुन–समझ लेना उपयोगी होता है। महापुरुष होते है उनका चरित्र दिव्य होता है। चरित्र मे श्रद्धा होने से परम पद की प्राप्ति होती है। गीता मे कहा है

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

श्रीकृष्ण कहते है, अर्जुन ! जो हमारे जन्म–कर्म को साधारण दृष्टि से देखता है उसे वह साधारण ही दीखता है और जो दिव्य दृष्टि से देखता है अर्थात जो हृदय से समझता है वह देह छोड कर पुनर्जन्म नही धारण करता।

साराश यह है कि परमात्मा का जीवनचरित्र सुनने से परम पद की प्राप्ति होती है। किस भाव से परमात्मा का चरित्र सुनना चाहिए, यह समझने के लिए प्रकृति के नियम पर ध्यान देने की आवश्यकता है। मैने अभी जो स्तुति गाई थी उसमे भी कहा है

मधुकर नो मन मोहियोजी,
मालती कुसुम सुवास।

भ्रमर का मन पुष्प पर मोहित हो गया। उसकी प्रीति सुगन्ध से लग गई। फिर वह दुर्गन्ध पर नही बैठ सकता। लाख प्रयत्न करने पर भी वह दुर्गन्ध के पास नही जाता। अतएव भगवान् से एकनिष्ठ प्रीति करने के लिए भ्रमर के उदाहरण को सदैव ध्यान मे रखना चाहिए।

भ्रमर को पुष्पो से ऐसी प्रीत करना किसने सिखलाया? वह किस पाठशाला मे यह सीखा हे ? किसी इतिहास से पता लगता है ?

'नही।

अगर सृष्टि की आदि का पता लगे तो इस बात का पता लगे कि भ्रमर ने पुष्प से प्रीति करना कहा, किससे ओर कव सीखा ? जेसे सृष्टि अनादि हे, उसी प्रकार भ्रमर की यह प्रीति भी अनादिकालीन हे।

भवर की प्रीति पुष्प–सुगन्ध पर ऐसी हे कि चाहे वह मर जाये परन्तु दुर्गन्ध के पास नही जा सकता। जाना तो दूर, उसका चित्त भी उस ओर नही जा सकता। अब हमे देखना चाहिए कि अपना मन भी भवर की तरह किसी से अनन्य प्रीति करता है या नही ?

मित्रो ! भवर की यह प्रीति आप लोगो की जानी हुई हे। उक्त भजन को भी आप गाते है, परन्तु कभी आपने अपने मन से यह भी पूछा है कि वह परमात्मा से प्रीति करने मे इसका पालन करता है या नही ?

ससार मे सुगघ और दुर्गन्ध दोनो हैं और रहेगे। यह सम्भव नहीं कि केवल सुगन्ध ही रहे। दोनो न हो और सिर्फ सुगन्ध ही हो तो यह भी नही मालूम हो सकता कि किसकी प्रीति किस पर और कैसी है ?

भवर की प्रीति किस सुगन्ध से है, परन्तु मक्खी, जो भवर की ही तरह का छोटा जीव है, कभी सुगन्ध के पास जाती है ? आप चन्दन घिसते है तो मक्खी पास मे आती है ?

'नही !'

और बालक की अशुचि पर बहुत आती हे। मक्खी को अशुचि से प्रेम करना किसने सिखलया है, कि हटाने पर भी नही हटती। वह अशुचि के कीटाणुओ को सब जगह फैलाती है। भले आदमियो के मस्तिष्क मे भी भर देती है, दूसरी चीजो पर बैठकर उन्हे बिगाड देती है। मतलब यह है कि वह खुद तो दुर्गन्ध से प्रेम करती ही हे, ससार को भी अपनी ही भाति दुर्गन्धप्रिय बनाना चाहती है। अब आप विचार कर ले कि आप अपने मन को केसा बनाना चाहते है !

मित्रो ! अगर परमात्मा से भवर की तरह एकनिष्ठ प्रीति रखना हो तो मैं यह सुझाव देता हू कि अपने हृदय मे भाव अच्छे रक्खो। जो काम विद्वान नही कर सकता वह काम सद्भाव से हो जाता हे। इसलिए भक्तजनो ने कहा हे–

मधुकरनो मन मोहियो रे, मालति कुसुम सुवास।
तू मुझ मन मोहियो रे जिन महिमा सु पियास।

अर्थात–मेरा मन परमात्मा के चरित्र से ऐसा मोहित हो जेसे भवर का मन सुगध पर मोहित होता है।

आप लोग भी परमात्मा से इतना ही मागो, ज्यादा न मागो। ज्यादा मागने से इसमे भी गडबड हो जाती है। परमात्मा से पार्थना करो कि, प्रभो! मुझे इतना ही मिल जाये। मै राज्य, देश आदि ससार के सुख नही चाहता, मुझे तो केवल तेरी प्रीति चाहिए। किसी कवि ने कहा है

चहू न सुगति सुमति सम्पति कछु, रिधि सिधि मान बडाई।
हेतु रहित अनुराग राम–पद, रहो उदित अधिकाई।।

प्रभो ! मुझे न सुगति चाहिए, न सम्पत्ति चाहिए। मुझे ऋद्धि–सिद्धि, मान–बडाई भी नही चाहिए। मुझे सिर्फ यही चाहिए कि किसी प्रकार का बदला चाहे बिना तेरे चरणो मे मेरी प्रीति बनी रहे। इसके सिवाय और कुछ भी मै नही चाहता।

परमात्मा से प्रीति कैसी होनी चाहिए, इसके लिए एक उपमा देता हू

ज्यो पकज सूरजमुखी विकसे सूर्य–प्रकाश।
त्यो मुझ मनडो गहगहे, सुन जिन चरित्र हुलास।।

सूरजमुखी कमल अपना मुह सदा सूर्य की ओर रखते है। सूर्य जिधर–जिधर फिरता है उनका मुह भी उधर ही उधर फिरता जाता है। शाम को जब सूरज पश्चिम दिशा मे पहुच जाता है तब उनका मुह भी पश्चिम मे ही हो जाता है। प्रात काल जब सूर्य पूर्व दिशा मे उगता है तो उनका मुह भी पूर्व की ओर हो जाता है।

अब विचार कीजिए कि इन्हे सूर्य से ऐसी प्रीति करना किसने सिखलाया ? बन्धुओ ! प्रकृति क्या–क्या दिखलाती है, क्या–क्या सिखलाती है यह देखो और फिर ग्रथो को देखे तो पता चलेगा कि उनमे कैसी अपूर्व शिक्षा भरी पडी है।

भक्त कहते है–प्रभो ! जैसे कमल और सूर्यमुखी का प्रेम सूर्य पर रहता हे इसी प्रकार मेरे हृदय का प्रेम तेरे चरित्र पर रहे। भजन, स्तवन, चरित, जो भी गाऊ, तेरे ही गाऊ। सूर्यमुखी कमल का मुह जैसे सूरज की ओर ही रहता है, मेरे नेत्र तेरे चरित्र पर ही रहे।

हृदय मे इस तरह की दृढता आप लोग भी धारण करे। यह मत सोचो कि परमात्मा साक्षात् नही दिखता तो उससे कैसे प्रेम करे? जो प्रेम विरह मे होता है वह साक्षात् मिलने पर नही रहता। यह बात चरित द्वारा मै आपको समझाता हू। मै जो चरित सुनाया करता हू वह उपदेश से खाली नही है। चरित मे जो शिक्षा भरी होती है उसी को बताने के लिए मै चरित बाचता हू।

रुक्मिणी ने जब तक कृष्ण का रथ नही देखा तब तक उसे ऐसी व्याकुलता रही कि कृष्ण के नाम की ही रट लगी रही। रुक्मिणी को इतनी व्याकुलता थी तो उसे कृष्ण मिले ही। आपके हृदय मे परमात्मा के लिए ऐसी व्याकुलता है ? अगर आपको परमात्मा से भेट करनी है तो हृदय मे ऐसा विरह भाव उत्पन्न करो। फिर परमात्मा से भेट अवश्य होगी।

जिसके हृदय मे विरह की व्याकुलता होती हे उसे अपने प्रेमी के सिवाय और कोई सुहाता ही नही। भवरे को जब तक कमल नही मिलता वह भनभनाता ही रहता हे। सूर्य के विना सूरजमुखी मुह उठाता हे ?

'नही !'

बस, ऐसी दृढता धारण कर लो कि ससार के पदार्थों मे न उलझ कर परमात्मा के स्वरूप मे ही तल्लीन रहूगा। शरीर कहीं भी रहे, अन्त करण बराबर उसी मे लगा रहे।

मैं आपको थोडी ही देर मे यह समझा रहा हू। परन्तु दो मिनिट मे दी हुई चाबी से घडी कई दिन चलती है। यह उपदेश भी हृदय मे परमात्मा से प्रेम करने की चाबी हे। हृदय को परमात्मा से बराबर लगाओ तो हृदय परमात्मा को बहुत शीघ्र पकड लेगा। आत्मा स्वय सच्चिदानन्द हे, इसलिए उसका प्रेम परमात्मा से लगना कोई कठिन काम नही हे, केवल हृदय मे विश्वास और दृढता की चाबी भरने की आवश्यकता हे।

(ग)

सुमति जिनेश्वर सायबाजी।

परमात्मा सुमतिनाथ की स्तुति करके आत्मा को किस भाव पर जागृत करना चाहिए ? सुमतिनाथ भगवान् सुमति के दातार हे।

आत्मा मे दो प्रकार की मति हे—एक सुमति ओर दूसरी कुमति। एक के उदय से दूसरी मति का नाश हो जाता हे। अर्थात् दोनो न रहकर एक ही रहने की आत्मा की परमात्मा है। किन्तु कुमति को नष्ट करके सुमति को उदित करने के लिए किसी तीसरे की आवश्यकता होती हे। जेसे हम लोग देखते तो आख से हें, फिर भी आख की सहायता के लिए सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती हे। आखे तो हमारी रात्रि मे भी रहती हे मगर प्रकाश न होने से वे देख नही सकती। इससे सिद्ध हे कि आखे यद्यपि देखती स्वय

है किन्तु उनके लिए सूर्य के पकाश की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार यद्यपि आत्मा मे ज्ञानचक्षु है फिर भी परमात्मा रूपी सूर्य के प्रकाश के बिना वे समीचीन रूप से देख नही सकती। इसीलिए प्रार्थना की है

सुमति जिनेश्वर साहबा जी, मेघरथ नृपनो नन्द।
सुमगला माता तणो, तनय सदा सुखकन्द।
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी,
सुमति सुमति दातार महा महिमा निलोजी।

हे सुमतिनाथ ! आप सुमति के दातार है। आप महामहिमा के धारक है। सूर्य से आख को प्रकाश मिलता है और तुझसे हृदय को प्रकाश मिलता है। इसलिए तुमसे बढकर कोई नही है।

सूर्य से आख को प्रकाश मिलता है इसलिए उसका उपकार माना जाता है फिर परमात्मा जो हमे सुमति प्रदान करता है, हमारे हृदय को प्रकाश देकर ज्ञान–चक्षु को प्रकाशित करता है, उसका उपकार न मानना, उसकी स्तुति न करना क्या कृतघ्नता नही है ?

6. श्री पद्मप्रभु स्वामी

प्रार्थना

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उद्धारन हारो ।।टेर।।
जदपि धीवर भील कसाई, अति पापिष्ट जमारो।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज, पावे भवनिधि पारो ।।1।।
गौ ब्राह्मण प्रमदा बालक की, मोटी हत्याचारो।
तेहनो करणहार प्रभु भजने, होत हत्यासू न्यारो ।।2।।
वेश्या चुगल छिनार जुवारी, चोर महा वटमारो।
जो इत्यादि भजे प्रभु तोने, तो निवृते संसारो।।3।।
पाप पराल को पुंज बन्यो, अति मानो मेरु अकारो।
ते तुम नाम हुताशन सेती, लहजे प्रज्ज्वल सारो ।।4।।
परम धर्म को मरम महारस, सो तुम नाम उचारो।
या सम मन्त्र नही कोई दूजो, त्रिभुवन मोहनगारो।।5।।
तो सुमरण बिन इण कलयुग मे, अवर न कोई अधारो।
मैं वारी जाऊ तो सुमरन पर, दिन–दिन प्रीति बधारो।।6।।
सुषमा राणी' को अगजात तू, 'श्रीधर राय कुमारो।
'विनयचन्द' कहे नाथ निरजन जीवन प्राण हमारो।।7।।
पदमप्रभु पावन नाम तिहारो।

आत्मा को किसी शक्ति की आवश्यकता हे। शक्ति अशक्त चाहते हैं। जेसे रोगी को दवाई की, भयभीत को किसी वीर के आश्रय की, भूखे को भोजन की ओर प्यासे को पानी की आवश्यकता होती हे ऐसे ही अनन्तकाल से सासारिक क्लेशो मे तप कर अशक्त हुई आत्मा को भी एक शक्ति की आवश्यकता हे। वह शक्ति ऐसी होनी चाहिए जो इस तपन को शात कर दे।

कहने को ससार के सभी प्राणी रात–दिन इसी उद्योग मे लगे है। खाना–कमाना आदि सभी क्रियाओ से उद्धार नही होता। इसलिए हे आत्मा! तू सत्सगति करके यह निर्णय कर कि तेरे उद्धार के लिए किस शक्ति की आवश्यकता है ?

यह तो निश्चित है कि आत्मा को जो शक्ति चाहिए वह शक्ति ससार के जड पदार्थो की शक्ति लेते हुए अनन्तकाल बीत जाने पर भी आत्मा अब तक दुर्बल है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा का कल्याण करने वाली शक्ति दूसरी ही है। इसलिए जो शक्ति आत्मा का कल्याण करने वाली है उसको पहचान कर उसी से प्रीति करना चाहिए।

अगर आपने अपनी आत्मा का कल्याण करने का निश्चय कर लिया है तो आत्म–कल्याण का एक साधारण उपाय परमात्मा से प्रीति करना है। आत्मा को परमात्मा की प्रीति मे लगा देने से सहज ही आत्मकल्याण हो जाता है।

आपने रेल तो देखी है न ?

'जी हा ।'

रेल मे एक डिब्बा दूसरे डिब्बे से जुडा रहता है और फिर सब डिब्बे ईजिन के साथ जुडे रहते है। सब डिब्बो मे एक से आकुडे लगे रहते है, फिर चाहे वह प्रथम श्रेणी (First Class) का हो या तृतीय श्रेणी (Third Class) का हो। आकुडो मे कोई भेद नही रहता। एक डिब्बे के आकुडे को दूसरे डिब्बे के आकुडे मे फसा देने से और फिर इजिन के साथ उन्हे जोड देने से इजिन कुछ भी भेद नही करता कि यह डिब्बा प्रथम दर्जे का है या तीसरे दर्जे का है। यदि वे डिब्बे इजिन को छोड दे तो फिर वही पडे रहे। वे आगे नही जा सकते। क्योकि सबको ले जाने की शक्ति इजिन मे ही है। डिब्बो मे वह शक्ति नही है।

इसी प्रकार जिस परमात्मा मे अनन्त गुणो का पावर (शक्ति) है उससे इसी तरह का सम्बन्ध स्थापित कर लेना उचित है, जैसे रेल के डिब्बे इजिन के साथ अपना सम्बन्ध जोड लेते हे। तो जो गति डिब्बो की है वही तुम्हारी है अर्थात् परमात्मा इजिन है। उसके साथ अन्त करण मिला लेने से फिर कोई जोखिम नही रहता। जेसे रेलगाडी का इजिन पहले और तीसरे दर्जे का भेद नही करता उसी प्रकार परमात्मा के साथ प्रेम करने पर ऊच, नीच गरीब धनवान् आदि सभी का उद्धार हो जाता हे।

अव प्रश्न होता हे कि परमात्मा रूपी इजिन के साथ आकुडा केसे मिलाया जाये ? उससे किस प्रकार प्रेम किया जाये ?

मित्रो ! इसमे कोई कठिनाई नही हे। परमात्मा से प्रेम लगाना कठिन नही है। आपके हृदय मे इस समय क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि–आदि दुर्गुण भरे हे। इन दुर्गुणो को निकाल देने पर परमात्मा के साथ प्रीति हो जायेगी। इन दुर्गुणो को निकाल कर परमात्मा से प्रीति कर लेने पर फिर कोई डर नही रहता। ऐसा करने के लिए वेश्या, चुगल, चोर आदि किसी को भी बाधा नही हे। अपने दुर्गुणो को दूर कर देने पर फिर चाहे वह महापापी भी क्यो न हो, अपने पापो का पश्चात्ताप करके परमात्मा की शरण मे आ जाये तो उसका उद्धार अवश्य हो जायेगा। पतित से पतित भी परमात्मप्रेम हो जाने पर परमात्मा की शरण पाता हे। इसलिए तो परमात्मा का नाम पतितपावन हे।

परमात्मा के साथ प्रेम करने, आकुडे से आकुडा मिलाने से ही काम चलेगा। अगर कोई कहता है कि मैं बुरे काम नही करता तो परमात्मा से प्रेम क्यो करू ? तो उसका कथन भ्रमपूर्ण हे। डिब्बा भले पहले दर्जे का हो, उसे इजिन के साथ जुडना ही पडेगा। इजिन के साथ जुडे बिना वह भी ईंजिन के जाने के स्थान पर नही पहुच सकता। अतएव अभिमान छोडकर परमात्मा की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि दुर्गुणो को किस प्रकार दूर किया जाये ? केसे उन पर विजय प्राप्त की जाये ?

इसका उत्तर यह है कि हम लोग एक भ्रम मे पडे हें। अगर हम उस भ्रम को हटा दे तो दुर्गुण पर विजय प्राप्त की जा सकती हे।

वह भ्रम क्या है ? वह यही हे कि हम दुर्गुणो पर तो विश्वास करते हें किन्तु सद्‌गुण पर विश्वास नही करते। अर्थात् लोगो को यह विश्वास हे कि किसी ने थप्पड मारी तो हम भी उसे थप्पड मारे तो बदला चुक जायेगा। लोग यह मानते हैं–विश्वास करते हैं कि झूठ बोलने से झूठा व्यवहार करने से, दूसरे की हत्या करने से या इसी प्रकार के अन्य कार्य करने से लाभ होगा। पर इससे आत्मा, क्षमा, दया शील परोपकार आदि कार्यो जितना सद्‌गुणो को छोडकर दुर्गुणो का सग्रह कर लेती हे। अगर आत्मा को सद्‌गुणो पर विश्वास हो जाये तो दुर्गुण छूट जाएगे ओर परमात्मा से प्रीति होते देर नहीं लगेगी।

क्षमा मे क्या गुण हे यह वहुत कम लोग जानते हे। झूठ मे क्या दुर्गुण हे, इस वात को न समझ कर लोग उस पर इतना विश्वास करते ह कि ससार मे विना झूठ से काम नही चल सकता। लेकिन क्या झूठ के वदले सत्य से काम लेने पर ससार के काम रुक जाएगे ?

एक वकील बहुत होशियार था। पाय जो वकील सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बनाना जानते है वे बहुत निपुण माने जाते है। यह वकील ऐसा ही कायदेबाज और निपुण था। इस वकील की स्त्री धर्मवती थी।

ससार के लोग बडे भ्रम मे है कि पाप के बिना हमारी आजीविका नही चल सकती। सच्चाई यह है कि धर्म से आजीविका मजे मे चल सकती है। धर्म और पाप की आजीविका मे कार्य–कारण और भाव की तुलना है। धोखा और त्रास जीवो की विशेष हिसा आदि करके, इस तरह के बुरे धधे करके आजीविका पाप्त करने वाले को पापी कहते है। जो दगाबाजी नही करे सत्य बोले और त्रास जीव की हिसा न करे और इन सब से बच कर आजीविका प्राप्त करे वह धार्मिक कहलाता है।

एक दिन वकील भोजन करने बैठा। उसकी स्त्री सामने बैठकर उसे परोस रही थी। इतने मे एक बडा सेठ आया और उसने पचास हजार के नोट वकील के सामने रख दिये। वकील ने पूछा–यह क्या है ?

सेठ–आपका मेहनताना।

वकील–कैसा मेहनताना ? मैने आपके मुकद्दमे मे जो वकालत की थी उसका मेहनताना तो मुझे मिल चुका। फिर यह किस बात का मेहनताना है ?

सेठ–वकील साहब मेरा मुकदमा पाच लाख का था। वास्तव मे मुझे वादी का पाच लाख रुपया देना था अगर आपने इतनी कुशलता न दिखलाई होती और वादी को झूठा न साबित कर दिया होता तो मुझे पाच लाख देने पडते। पर आपकी बदौलत मे मुकदमा जीत गया। मैने सोचा–पाच लाख बचे है तो 50 हजार वकील साहब को भी दे दू। इसलिए आया हू।

सेठ यह कह कर चला गया। वकील पचास हजार रुपये पाकर फूला न समाया। उसने अपनी पत्नी की ओर गर्वभरी दृष्टि से देखा और सोचा–मैं कितना चतुर हू। सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बनाना मेरे बाए हाथ का खेल है।

मगर यह क्या ? पत्नी तो अनमनी हो गई है। वकील ने पूछा–'अरे तुम उदास क्यो हो गई ? और यह पूछते ही पत्नी की आखो से आसू बहने लगे।

पत्नी ने रोते–रोते कहा–इन पचास हजार को देख कर ही मुझे रोना आ रहा है।

वकील--आश्चर्य है। एकदम पचास हजार रुपये आ गये तो खुश होने की बात है या रोने की ?

पत्नी--मुझे ऐसा रुपया नही चाहिए। मे पीस--कूट कर पेट भरना अच्छा समझती हू, मगर पाप के पैसे से ऐश्वर्य भोगना अच्छा नही समझती। इस प्रकार पाप का पैसा इकट्ठा करके आप क्या स्वर्ग पा लेगे ? सभी को आगे जाकर जबाब देना होगा। कृपा कर आप इस धन को अलग ही रक्खे। इसमे मुझे और मेरे बाल--बच्चो को शामिल न करे।

स्त्री की बात सुनकर वकील हैरान हो गया। सोचने लगा--जिसके लिए यह सब करता हू उसका तो यह हाल है ! वकील ने साहस करके कहा--

'तुम भोली हो। सच्चे को झूठा ओर झूठे को सच्चा किये बिना पैसा आये कहा से ?'

पत्नी--दु ख की बात है कि आपको झूठ पर इतना विश्वास है और सत्य पर विश्वास ही नही है ! क्या झूठ का सहारा लिये बिना आपका पेट नही भर सकता ! अगर आपने सत्य का पक्ष लिया होता तो क्या मेहनताना न मिलता ? आपको पचास हजार मिले है, पर दूसरे के पाच लाख पर पानी जो फिर गया ! फिर इससे झूठ की प्रतिष्ठा बढी, सत्य की प्रतिष्ठा घटी। झूठे को झूठा आचरण करने का उत्साह मिला और शायद सच्चे की सत्य के प्रति आस्था उठ गई हो।

कैसी धर्मनिष्ठ स्त्री थी ! कोई मामूली स्त्री होती तो कहती--चाहे पाप करो, चाहे धर्म करो, मुझे तो दो के बदले चार बगडिया गढवा दो। अच्छा--अच्छा खिलाओ, अच्छा--अच्छा पहनाओ ! तब तो आप पति, नही तो पति कैसे ?

मित्रो ! आत्मा अजर--अमर है। इसने अनेक भव धारण किये हे और अनेक भव धारण करेगी। जिसे इस सच्चाई पर विश्वास होता हे वह अपने आपको ईश्वर के साथ जोडने के लिए खोटे कामो पर से विश्वास उठाकर सत्य पर विश्वास जमाता है। मनुष्य--जन्म का समय अपूर्व समय हे। जो क्षण चला जा रहा हे वह अनमोल हे अप्राप्य है, इसलिए सत्य पर विश्वास लाओ। जीवन को सार्थक बनाओ।

ज्यो अजलि माहे नीर समो ओ तो छिन--छिन खेरू जावे जी।
घडी रे घडी घडियाला बाजै, तो खिण लाखोणी जावे जी।
यो भव रतन चिन्तामणि सरिखो, बारम्बार न मिलसी जी।
चेत सके तो चेत रे जीवडा ऐसो जाग न मिलसी जी।।

किस निश्चित विचार मे बैठकर व्यवस्था सोच रहे हो ? सद्गुण पर विश्वास करो। अविश्वास मत करो।

सच्च भगवाओ।

यह गणधर का वचन है कि सत्य भगवान् है। सत्य की शरण लेना भगवान् की शरण लेना है। सत्य के पभाव से चमकती हुई तलवार फूल के सदृश नरम और विष अमृत के समान गुणदायक हो जाते है, जिस सत्य की इतनी शक्ति है उस पर असत्य के बराबर भी विश्वास नही करते ? कितने दु ख की बात है।

बडो की देखा–देखी बच्चे भी झूठ बोलते है। वे अकसर अपने मा–बाप से ही यह सबक सीखते है। पहले बच्चो को झूठी बातो मे आनन्द आता है और फिर वे स्वय झूठ बोलने मे कुशल हो जाते है। इस प्रकार झूठ की परम्परा चल रही है।

वकील की स्त्री ने कहा–सत्य पर विश्वास रखना चाहिए। यदि सत्य से खाने को मिलेगा तो खाएगे अन्यथा भूखे रह लेगे। आप आज से झूठ का आसरा न लेने की प्रतिज्ञा कर लीजिए। हम लोग भूखे नही रहेगे, सत्य का प्रताप बडा है।

वकील पर पत्नी का प्रभाव पडा और उसने झूठे मुकदमे लेना त्याग दिया।

अगर बहिने मेरी बात मानकर अपने–अपने पति को उपदेश दे तो वे आप लोगो को कुछ ही समय मे सुधार कर सन्मार्ग पर ला सकती हैं। मगर कठिनाई तो यह है कि बहिने भी सोने मे ही स्वर्ग समझती हैं, सोने मे ही सुख मान बैठी है। वे पति को उपदेश दे तो कैसे ?

एक कवि ने कहा है

वरु दरिद्रता होउ करत सज्जन कला।
अनाचार सू राज्य मिले तो नहि भला।

सज्जनतापूर्वक व्यवहार करते और रखते हुए यदि हम दरिद्र बन जाए तो वह दरिद्रता नही, स्वर्ग का निवास है। पर अत्याचार, झूठ–कपट दगा आदि से राज्य मिलता हो तो वह किसी काम का नही।

इस प्रकार का विश्वास और प्रेम चाहिए तभी हृदय मे सन्तोष उत्पन्न होता है।

आगे चलकर कवि ने कहा है जो शरीर तप के कारण दुर्बल होता है वह दबी हुई अग्नि के समान देदीप्यमान है। तपधारी मुनि का दुर्बल शरीर भी देवो के शरीर को लजाने वाला है।

तप की महिमा अद्भुत है। तप करने से न रोग होता है न दुःख होता है। यद्यपि तप से शरीर निर्बल दिखाई देता है परन्तु आत्मा निर्बल होने के बदले बलिष्ठ होती है।

जिस मनुष्य के शरीर पर सूजन चढ जाती है, जिसके हाथ पाव और सारा शरीर मोटा और चिकना हो जाता है, उसके लिए लोग कहते है—यह तो मरा । ऐसे आदमी का मोटे होने के कारण कोई सत्कार करता है?

'नही !'

इसी प्रकार जो अन्याय करके मोटे—ताजे बने हैं उनके प्रति ज्ञानियो के हृदय मे कोई आदरभाव नही होता। अगर कोई सत्य के सेवन से दुबले भी हुए तो ज्ञानी उस दुबले का सत्कार करेगे।

राम का राज्य छूटा। वे वनवासी होकर घूमते फिरे। परन्तु किसी ने उन्हे बुरा कहा ? इससे उनकी प्रतिष्ठा कम हुई ?

हरिश्चन्द्र ने अपना राजपाट दान देकर चाण्डाल की नौकरी की। उनकी रानी तारा को ब्राह्मण के घर बर्तन माजने और पानी भरने की सेवा करनी पडी। यह सब किसके लिए ?

'सत्य के लिए ही !'

अब तो कुछ लोग कहते है कि हरिश्चन्द्र को दान देने से दुःख भोगना पडा। कुपात्र को दान देने से भटकना पडा और चाण्डाल का सेवक बनना पडा ! ऐसे कहने वालो से क्या कहा जाये ? इस पर विस्तृत चर्चा करने का यहा अवकाश नही है। सिर्फ इतना कह देना पर्याप्त है कि कष्ट पडने के कारण ही कोई बुरा या पापी नही हो जाता। अजना को क्या कष्ट सहन नही करने पडे थे ? फिर क्या उसका शील भी पाप मे गिना जायेगा ?

कमलावती का हाथ शील के लिए काटा गया, पर उसने शील का त्याग नही किया। शील की रक्षा के लिए चन्दनबाला बिकी। उसने शील नही त्यागा तो क्या पाप किया था ?

सीता, अजना, कमलावती, चन्दनबाला आदि महान् सतियो ने अपने शील की रक्षा के लिए कष्ट सहन किए थे। कष्ट सहन के कारण शील पालने को अगर कोई पाप कहता हे तो अन्याय करता हे। इसी प्रकार दान देने वालो को अगर कोई पाप करने वाला कहता हे, उनका तिरस्कार करता हे तो ऐसा करना ही महापाप हे।

मित्रो ! आप लोगो से कुछ ओर न बन पडे तो कम से कम इस पाप से तो वचो। जिस दान का अनुमोदन असख्य लोग करते हे उसको अगर मुट्ठी

भर लोग पाप बतलाते है तो वह उनका दुर्भाग्य है। कामना करो कि उन्हे भी सुबुद्धि पाप्त हो।

दान मे पाप बतलाने वाले, दया करने मे भी पाप कहते है। पर नेमिनाथ भगवान के चरित्र को देखे। उन्हे विवाह नही करना था, फिर भी बारात सजाई। आरम्भ समारम्भ किया और पत्यक्ष रूप से मारे जाने वाले जीवो की रक्षा का बोध दिया। अन्त मे दान देकर दान की महिमा भी प्रकट की।

तात्पर्य यह है कि दुर्गुणो का त्याग करने पर ही परमात्मा के प्रति आपका पेम होगा और परमात्मपेम से आपका परमकल्याण होगा।

(ख)

परमात्मा की स्तुति करने वालो को परमात्मा के नाम स्मरण की महिमा पूरी तरह समझ लेनी चाहिए। नाम मे क्या गुण है और क्या शक्ति है, इस बात को समझ कर परमात्मा का भजन किया जाये तो आत्मा मे निराली ही जागृति हो जाती है।

नाम लेने का अधिकारी कौन है ? अर्थात् नाम कौन ले सकता है? इस सम्बन्ध मे पद्मप्रभु की प्रार्थना मे कहा है कि धीवर, झील, कसाई, गोघातक, स्त्रीघातक, बालघातक, वेश्या चुगल, छिनार जुआरी, चोर, डाकू आदि कोई कैसा भी कुकर्मी क्यो न हो सभी को भगवान् का भजन करने का अधिकार है। परन्तु वह पापो को बढाने के लिए नही किन्तु घटाने के लिए है। जिसे रोग न हो वह दवा क्यो ले? जिस प्रकार जैसे दवा रोग बढाने के लिए नही वरन् घटाने के लिए ली जाती है। इसी प्रकार भजन पाप बढाने के लिए नही करना चाहिए–घटाने के लिए करना चाहिए। इस दृष्टि से जो परमात्मा का भजन करता है वह कैसा भी पापी क्यो न हो, उसकी आत्मा पवित्र बन जाती है। आजकल प्राय पाप बढाने के लिए परमात्मा का भजन किया जाता है अर्थात् ऊपर से अपने आपको धर्मात्मा प्रकट करने के लिए लोग भजन करते हैं और भीतर कुछ और ही रचना होती है। ऐसा भजन करने वाले का उद्धार नही हो सकता।

परमात्मा का भजन करना उसके नाम को स्मरण करना अपनी आत्मा को परमात्मा के सामने उसी तरह खडा करना है जैसे ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा को परमात्मा के समक्ष खडी कर देते हैं। जिस प्रकार राजा के सामने अपने अपराध को स्वीकार करने से प्रायश्चित्त हो जाता है, उसी प्रकार

परमात्मा के समक्ष अपने अपराधो को शुद्ध अन्त करण से प्रकट कर देने पर प्रायश्चित्त हो जाता है।

इस प्रकार अपराध स्वीकार करने वाले के साहस पर जरा विचार करो। जो वीर होगा वही राजा के सामने अपना अपराध स्वीकार करेगा। अव विचार कीजिए कि परमात्मा राजा से छोटा हे या वडा? अगर वडा हे तो निष्कपट भाव से उससे प्रार्थना करो कि–प्रभो! ऐसी कृपा कर, जिससे मैं पापो से छुटकारा पा लू। ऐसा निश्चय करके परमात्मा को भजो तो अवश्य पापो से छुटकारा मिल जायेगा।

पाप से छूटने के लिए सुधर्मा स्वामी ने जम्बूस्वामी से क्या कहा? उन्होने जम्बू स्वामी से कहा–'भगवान् महावीर का बतलाया हुआ ज्ञान मैं तुझे सुनाता हू।' और उन्होने भगवान् का उपदेश जम्बूस्वामी को बतलाया। उस उपदेश का सार यह है–

पढमं होइ अहिसा, वितियं सच्चवयणति पन्नत्त।
दत्तमणुन्नायसवरो य, बमचेरयमपरिग्गहत्त च।।
तत्थ पढम अहिंसा, तस–थावर–सव्वमूयखेमकरी।
तोसे समावणाओ किचि वोच्छं गुणद्दोस।।

अर्थात् अहिसा, सत्यभाषा, अदत्तादान परित्याग, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पाच व्रत भगवान् के उपदेश का सार है। इनमे अहिसा का स्थान पहला है। अहिसा त्रास और स्थावर सभी प्राणियो का क्षेम करने वाली है।

यहा अहिसा पहले बतलाई गई हे। अहिसा का अर्थ है–हिसा न करना अर्थात् जिसमे किसी भी प्राणी की हानि न हो।

प्रश्न किया जा सकता है–प्राणी किसे कहना चाहिए ? उत्तर यह है–भगवान् ने शास्त्र मे दस प्राण कहे हे– (1) श्रोत्रेन्द्रियबलप्राण (2) चक्षु–इन्द्रियवलप्राण (3) घ्राणेन्द्रियबलप्राण (4) रसनेन्द्रियबलप्राण (5) स्पर्शनेन्द्रियबलप्राण (6) मनोबल प्राण (7) वचनबलप्राण (8) कायवलप्राण (9) श्वासोच्छ्वासबलप्राण ओर (10) आयुष्यबलप्राण। यह आयुष्य–प्राण शेष सव प्राणो का आधारभूत हे। जिसमे यह प्राण हो वह प्राणी कहलाता हे। किसी मे पूरे ओर किसी मे अधूरे प्राण होते हे। सज्ञी पचेन्द्रिय के दसो प्राण होते है, असज्ञी पचेन्द्रिय के नो प्राण होते हे चोइन्द्रिय जीवो के आठ त्रिन्द्रियो के सात द्वीन्द्रिय के छह ओर एकेन्द्रिय के चार प्राण होते हे। इन प्राणो का जिससे नाश हो वह हिसा ओर जिससे नाश न हो वह अहिसा हे।

शास्त्र मे सभी कुछ स्पष्ट कर दिया गया है परन्तु आजकल कुछ लोगो ने एक नया तर्क खोज निकाला हे। वे यह तो कहते है कि प्राणो का नाश करना हिसा और नाश न करना अहिसा है, मगर रक्षा क्या है ? रक्षा हिसा है या अहिसा।

कल्पना कीजिए एक आदमी तलवार लेकर बकरा मारता है। दूसरा चुपचाप खडा है—न मारता है ओर न रक्षा करता है। तीसरा आदमी कहता है—मत मारो अर्थात् वह बकरे की रक्षा करता है। अब इस तीसरे रक्षा करने वाले को क्या कहा जाये ? हिसक या अहिसक? पहला आदमी हिसक है और दूसरा अहिसक, क्योकि वह मारता नही है, लेकिन यह तीसरा मनुष्य किस गिनती मे गिना जाये ?

ज्ञानीजन कहते है कि अहिसा का अर्थ है—जिसमे हिसा न हो, अथवा जो हिसा का विरोधी हो। अब वह तीसरा पुरुष, जिसने जीव की रक्षा की है और जीव को मारा नही हे, उसे क्या हिसक कहा जा सकता है ?

'नही !'

जब नही मारा तो अहिसा हुई कि नही ?

'हा !'

इस प्रकार ज्ञानियो का कहना है कि न मारना और रक्षा करना दोनो ही अहिसा हे। एक ने चोरी की दूसरी ने चोरी नही की और तीसरे ने चोरी करने से वरजा, तो वरजने वाले को कोई चोर कह सकता है ?

नही !'

उसने वरजा इसलिए कि धन के मालिक को दु ख न हो। धन को तो सुख–दु ख होता नही, सुख–दु ख तो उसे होता है जिसका धन चोरी मे जाये या जो चोरी करके ले जाये।

कल्पना करो, एक दुराचारी पुरुष किसी सती का शील–भग करने के लिए हमला करता है। रावण को ही समझ लो। रावण सीता का शील–भग करना चाहता था। सीता अपने शील पर अटल है। और विभीषण ने रावण को ऐसा करने से मना किया। अब आप विभीषण को शीलवान् कहेगे या कुशीलवान् कहेगे ?

मगर कुशीलवान् कहने वालो को क्या कहा जाये ? अगर विभीषण कुशीलवान होता तो वरजता ही क्यो? इसी प्रकार 'मत मारो' कह कर हिसा वरजने वाले को क्या हिसक कहा जा सकता हे ? जिसके हृदय मे मारने की इच्छा होगी उसके मुह से मत मार ऐसा शब्द कहने वाले को पापी कहना किसी भी प्रकार उचित नही हे।

मित्रो । इस सीधी–सादी बात को समझ लो तो अहिसा के विषय मे भ्रम नही रहेगा। शास्त्र के अनुसार जीव की हिसा न करना ओर जीव को बचाना–दोनो अहिसा है पर खेद हे कि कुछ पथभ्रष्ट भाई मारने ओर बचाने–दोनो मे हिसा कहते हे। उनका कहना हे

मत मार कहे तेनो रागीरे, तीजे करणे हिसा लागीरे।

बुद्धिमान् स्वय विचार करे कि 'मत मार' कह कर जीव को बचाने वाला कैसे हिसक हो गया ? शास्त्र कहता हे

तत्थ पढम अहिसा, तसथावरसव्वभूयखेमकरी।

अर्थात् अहिसा त्रास और स्थावर–सभी जीवो का क्षेम करने वाली है अर्थात् रक्षा करने वाली है।

ससार मे किसी से पूछते हैं–'क्षेम–कुशल हैं ? या 'क्षेम–कुशल कह देना।' तो इसका अर्थ शाति ही है।

कदाचित् कहा जाये कि हमने किसी जीव को नही मारा, इस कारण वह बच गया तो क्षेम हुई और अहिसा का धर्म हुआ, तो जिसने बचाया है उसे पाप क्यो हुआ ? मित्रो । यह अन्याय है। अहिसा के स्वरूप को विकृत करना है।

इस प्रकार अहिसा के सच्चे स्वरूप को समझ कर जो उसका पालन करते है, वे पापो से बचते है। परमात्मा के साथ उन्ही की प्रीति जुडती हे। उनका परमात्मा–भजन सार्थक होता हे। एक ओर परमात्मा का नाम लेना और दूसरी ओर परमात्मा के द्वारा उपदिष्ट मार्ग के विरुद्ध प्रवृत्ति करना आत्म–वचना हे। यह कल्याण का मार्ग नही हे।

7. श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी

प्रार्थना

श्री जिनराज सुपार्श्व, पूरो आस हमारी।।टेर।।
'प्रतिष्ठसेन' नरेश्वर को सुत, 'पृथ्वी' तुम महतारी।
सुगुण सनेही साहिब साचो, सेवक ने सुखकारी।।1।।
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक, मनवाछित सुख पूरो।
बार–बार मुझ यही वीनती, भव–भव चिन्ता चूरो।।2।।
जगत् शिरोमणि भक्ति तिहारी, कल्पवृक्ष सम जाणूं।
पूरणब्रह्म प्रभु परमेश्वर, भव–भव तुम्हे पिछाणू।।3।।
हू सेवक तू साहिब मेरो, पावन पुरुष विज्ञानी।
जनम–जनम जित तित जाऊं तो, पाली प्रीति पुरानी।।4।।
तारण–तरण सरण–असरण को, विरुद इसो तुम सोहे।
तो सम दीनदयाल जगत् मे, इन्द्र नरेन्द्र न को हे।।5।।
स्वयभू–रमण बडो समुद्र मे, शैल सुमेर विराजे।
तू ठाकुर त्रिभुवन मे मोटो, भक्ति किया दु ख भाजे।।6।।
अगम अगोचर तू अविनाशी, अलख अखण्ड अरूपी।
चाहत दरस 'विनयचन्द' तेरो, सच्चिदानन्द स्वरूपी।।7।।

सारा ससार आशा पर ही टिका हे। सब लोग आशा का अवलम्बन करके अपना–अपना कार्य करते हे। बिना उद्देश्य के किसी कार्य मे प्रवृत्ति नही होती। साधु ओर साध्वियो ने भी किसी उद्देश्य को सामने रख कर ही साधुपन और साध्वीपन अगीकार किया है और वे अपना गाव छोडकर दूसरे गाव जाते हं वे भी बिना उद्देश्य नही जाते। उद्देश्य की पूर्ति हो जाना अर्थात् आशा पूर्ण हो जाना ही सिद्धि समझी जाती है। इसी आशा को लेकर भक्तजन भगवान् की प्रार्थना करते है–

श्री जिनराज सुपास, पूरो आस हमारी।

अर्थात्–हे जिनराज ! मेरी आशाओ को पूर्ण करो।

अब प्रश्न यह हे कि आशा किस बात ही है ? साधु किस आशा से साधु बने है ? अगर उन्हे ससार के सुखो की आशा होती तो वे साधु क्यो बनते ? ससार की आशा ससार मे ही पूरी हो सकती हे। साधु–अवस्था से ससार–सुख की आशा पूरी नही हो सकती।

ससारी मनुष्य को पहले स्त्री की आशा होती हे। जब स्त्री प्राप्त हो जाती है तो पुत्र की आशा उत्पन्न होती हे। जिसे पुत्र की इच्छा हे वह पहले स्त्री से ही पुत्र मिलने की आशा करता है। जब स्त्री से पुत्र नही मिलता तब देवी–देवता आदि से इसके लिए प्रार्थना करता है। तात्पर्य यह हे कि सभी लोग किसी न किसी आशा से परिपूर्ण हैं और उस आशा को पूर्ण करने के लिए ही प्रयत्नशील देखे जाते हैं। किन्तु परमात्मा से किस चीज की आशा करनी चाहिए ? अगर धन आदि के लिए परमात्मा से प्रार्थना की जाती हे तो समझना चाहिए कि परमात्मा के स्वरूप को समझा ही नही। जो परमात्मा की महिमा को समझ लेगा, वह किसी तुच्छ चीज के लिए उससे प्रार्थना नही करेगा। तो फिर परमात्मा से कौन–सी आशा करनी चाहिए ?

बार–बार मुझ विनती हो भव–भव चिन्ता चूरो।

हे प्रभो ! आपकी भक्ति के बिना मैने ससार का विलास पाया परन्तु वह दु खदायी बन गया। उससे मुझे कुछ भी प्रीति नही हुई। इसलिए अब जो चाहता हू वह धर्म और मोक्ष के साथ चाहता हू। धर्म ओर मोक्ष के सिवाय ससार का विलास नही चाहता। मेरी यह आशा पूरी करो। प्रभो ! मे आपसे यही प्रार्थना करता हू कि मेरी भव–भव की चिन्ता दूर हो जाये। मे चाहे किसी भी अवस्था मे होऊ परन्तु धन ओर काम के लिए धर्म ओर मोक्ष का त्याग न करू। मुझे ऐसी शक्ति दो कि धन जाये तो भले ही जाये पर धर्म न जाये। पुत्र जाये तो जाये, पर धर्म न जाये। इस प्रकार की दृढता धारण कर सकू।

इस तरह से प्रार्थना करके भक्तजन ओर क्या प्रार्थना करते हैं

जगत–शिरोमणि भक्त तुम्हारी, कल्पवृक्ष सम जानूं।।

अन्य वृक्षो से एक ही प्रकार के फल मिलते हे। उससे दूसरे प्रकार के फलो की प्राप्ति नही होती। इसी प्रकार ससार की एक वस्तु से एक सुख मिलता हे तो दूसरा सुख नही मिलता। किसी से दूसरा सुख मिलता हे तो तीसरे सुख की कमी रहती हे। सब सुख ससार के किसी भी पदार्थ से नही मिलते ओर न मिल ही सकते हे। सब सुखो की प्राप्ति अगर हो सकती हे

तो कल्पवृक्ष के समान तेरी भक्ति से ही हो सकती है। इसलिए सब जगह से निराश होकर, हे पभो ! मै तेरी शरण मे आया हू। जैसे घी तोलने के लिए कोई आदमी बर्त्तन का वजन पूरा न होने पर दूसरा मेढक तराजू पर रखता है और वजन पूरा न होने पर दूसरा मेढक लेने जाता है। तब तक पहला मेढक फुदक कर भाग जाता है। इसी पकार मै एक सुख लेने जाता हू तो दूसरा सुख चला जाता है और दूसरा लेने जाता हू तो तीसरा चला जाता है। परतु तेरी भक्ति का पभाव ऐसा है कि उसमे ससार के यह क्रास नही है और उससे सब सुख पाप्त हो जाते है। तेरी भक्ति समस्त सुखो के लिए कल्पवृक्ष के समान है।

ईश्वरभक्ति के प्रभाव का वर्णन श्रीउत्तराध्ययनसूत्र मे किया गया है। कहा है –

खित्तवत्थु हिरण्ण च, पसवो दास पोरुस।
चत्तारि कामखन्धाणि, तत्थ से उववज्जई।।1।।
मित्तव नायव होई, उचागोए सवण्णए।
अप्पायके महाबले, अभिजाए जसोबले।।2।।

धर्मात्मा पुरुष जहा जन्म लेता है वहा दस बातो का योग उसे प्राप्त होता है। दस बातो की प्राप्ति होने के कारण वह ससार का सुख भोग करके भी उसमे लिप्त न होगा और अपनी मुक्ति का प्रबन्ध कर लेगा।

मित्रो ! जो मनुष्य कल्पवृक्ष को छोडकर दूसरे के फल की याचना करता फिरता है उसे क्या कहना चाहिए ?

'मूर्ख !'

सुखो को प्राप्त करने की इच्छा होते हुए भी जो परमात्मा की भक्ति का त्याग करता है उसे अभागा ही कहना चाहिए। एक–एक सुख के लिए दूसरो से प्रर्थाना करने वाला और समस्त सुख देने वाले ईश्वर की भक्ति न करने वाला अभागा नही तो क्या है ?

हे प्रभो ! मैं तुमसे यही प्रार्थना करता हू कि मैं और कुछ नही चाहता, केवल तुम्हारी अनन्य भाव से भक्ति मिले, यही चाहता हू।

पूरण ब्रह्म प्रभु परमेश्वर भव–भव तूने पिछानू।

मै चाहे कही जन्म लू पर तुम्हे पहचानता रहू, तुम्हारा ध्यान न चूकू। फिर मुझे कोई कमी नही हे।

मित्रो ! ससार की अन्य वस्तुओ की कामना करने से भक्ति नही आती किन्तु भक्ति होने पर सब वस्तुए, सब सुख आप ही आप चले आते है।

इसलिए और सब वस्तुओ की कामना छोडकर ईश्वर की भक्ति करना, ईश्वर की आराधना मे लीन होना उचित हे।

आत्मा को इसी भक्ति रूपी शक्ति की आवश्यकता है। भक्ति के बिना आत्मा मे शक्ति नही आती। जिसने ईश्वरभक्ति का रस–पान किया हे उसने अमृतपान किया है। उसमे बडी शक्ति है। अगर आप आत्मिक शक्ति प्राप्त करना चाहते है तो ईश्वर की भक्ति कीजिए।

वास्तव मे अन्तिम रूप से आशा की पूर्ति परमात्मा के सिवाय ओर कोई नही कर सकता। इसीलिए भक्तजन निवेदन करते है कि मे जब तक यह नही जानता था कि आशा क्या होनी चाहिए, तब तक ससार मे भटकता रहा। जब आशा का पता लग गया, जब मैंने समझ लिया कि मेरी आशा यही होनी चाहिए,तब मैं समझ गया कि यह आशा परमात्मा के सिवाय कोई दूसरा पूरी नही कर सकता।

मनुष्य जहा अपनी आशा की पूर्ति देखता हे, वही वह जाता हे। हीरे की आशा करने वाला जौहरी के पास जायेगा ओर शाक–भाजी की आशा करने वाला माली कूजडे के पास पहुचेगा। इसी प्रकार जिनके अन्त करण मे उत्तम भावना की ज्योति जागृत हुई है ओर जो यह समझ चुके हैं कि इन सासारिक वस्तुओ से अनेक बार साक्षात्कार हुआ है पर आत्म–कल्याण नही हुआ, इसलिए जहा आत्म–कल्याण हो वही जाऊ, वह वीतराग भगवान् के चरण–शरण को ही ग्रहण करेगा। वह उन्ही से अपनी आशा करने की प्रार्थना करेगा। वह कहेगा

श्री जिनराज सुपास ! पूरो आश हमारी।

8. श्री चन्द्रप्रभनाथ स्वामी

प्रार्थना

जय जय जगत् शिरोमणि, हू सेवक ने तू धणी।
अब तोसूं गाढी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।।
मुझ म्हेर करो, चन्द्र प्रभु जग जीवन अन्तरजामी।। टेर।।
भव दु ख हरो, सुणिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी।।1।।
'चन्द्रपुरी' नगरी हती, "महासेन" नामा नरपति।
राणी "श्रीलखमा" सती, तस चन्दन तू चढती रती।। 2।।
तू सर्वज्ञ महाज्ञाता, आतम अनुभव का दाता।
तो तूठा लहिये साता, प्रभु धन–धन जग मे तू तुम द्याता।।3।।
शिव सुख प्रार्थना करसू, उज्ज्वल ध्यान हिये धरसू।
रसना तुम महिमा करसू, प्रभु इण विध भवसागर तिरसू।।4।।
चन्द्र चकोरन के मन मे, गाज आवाज होवे घन मे।
पिउ अभिलाषा ज्यो प्रियतन मे, त्यू बसियो तू मो चितवन मे।।5।।
जो सुनजर साहिब तेरी तो मानो विनती मेरी।
काटो करम भरम बेरी, प्रभु पुनरपि नाहि करू भव फेरी।।6।।
आत्म–ज्ञान दशा जागी, प्रभु तुम सेती लव लागी।
अन्य देव भ्रमना भागी, 'विनयचन्द तिहारो अनुरागी।।7।।

यह श्रीचन्द्रप्रभ की प्रार्थना है। प्रार्थना तो थोडी–बहुत मै रोज ही करता हू, परन्तु इस प्रार्थना के तात्पर्य को आप सावधान होकर समझ लीजिए। इस प्रार्थना मे परमेश्वर के साथ प्रेम बाधने का एक अलौकिक उपाय बतलाया हे।

परमात्मा अतिशय सूक्ष्म वस्तु है। ससार के अन्य पदार्थो के साथ आप मिल सकते हे परन्तु सूक्ष्म के साथ मिलना उसे प्राप्त करना कठिन है।

सूक्ष्म के साथ मिलने के लिए एक तरफ का विचार कर लेना पडता हे ओर एक तरफ का विचार करना सरल नही है। किन्तु ज्ञानीजनो का कहना हे कि यह कोई कठिन कार्य भी नही है। जो परमात्मा नजदीक से भी नजदीक है, उससे प्रेम करना कठिन कैसे हो सकता है ?

आप सोचेगे और शायद आश्चर्य करेगे कि जब परमात्मा नजदीक से नजदीक है तो उसके लिए उपदेश की क्या आवश्यकता है? मगर भूल तो यही हो रही है कि ससारी जीव पास की चीज को भूल कर दूर की चीज के लिए दौडते है।

मृग की नाभि मे कस्तूरी होती है पर जब उस कस्तूरी की सुगन्ध मृग को आती है तो वह सुगन्ध मे मस्त होकर उसे खोजने के लिए चारो ओर दौडता फिरता है और घास–पात को सूघता फिरता है। उसे यह ज्ञान नही है कि सुगन्ध मेरी ही नाभि की कस्तूरी से आ रही है।

आप कह सकते हैं कि मृग तो पशु है, इसलिए उसे अपने पास की वस्तु का ज्ञान नही है, परन्तु हम मनुष्य हैं। हम नजदीक की वस्तु को कैसे भूल सकते है ?

मित्रो ! ससार की वस्तुओ मे यह शरीर सबसे अधिक नजदीक है। इससे ज्यादा नजदीक दूसरा पदार्थ नही है। इस शरीर का अभ्यास करके भी आप इसे भूल बैठे हैं तो दूसरी वस्तु के विषय मे क्या कहा जाये ? आप कहे– शरीर को हम कैसे भूले हुए है ? यह मै आपको बतलाता हू।

इस शरीर मे जो आखे है, जिनसे आप ससार के सब पदार्थों को देखते हे, किस शक्ति से बनी है ? इनको बनाने वाला कोन हे ? क्या आपने कभी यह सोचा है ? आखो का जाल हटा देने वाले डाक्टरो की तो आप इज्जत करते हैं, सत्कार करते हे, परन्तु जिसने इनको बनाया हे, वह केसा और कौन हे, इस बात पर भी कभी विचार करते हे ?

मुखडा क्या देखे दर्पण मे ?
तेरे दयाधर्म नही मन मे।। मुखडा।।
पगडी बाधे पैच सवारे,
अकड रहे निज मन मे।
तन जोबन डूगर का पानी
खलक जाय इक छिन मे।। मुखडा।।

काच देखने का भाव क्या हे इस प्रकार विचार करने की आवश्यकता हे। मगर इतना समय नही हे। आप इतना तो जानते ही हे कि हमारा मुह

हमको नही दीखता इस कारण काच मे देखते है। अब बतलाइए, जो चीज शरीर मे है वही काच मे दीखती है या दूसरी?

'वही ।

मुह पर अगर दाग लगा है या पगडी का पेच खराब है तो यह बात काच मे है या शरीर मे ?

'शरीर मे ।'

इसमे काच का तो कोई दोष नही है ?

'नही ।'

क्योकि जैसा आपका मुह है वैसा ही वह बतलाता है। ज्ञानी कहते है–अगर तुम काच पर ही विचार को मान लो तो आपको मालूम हो जाये कि हम पास की वस्तु को किस प्रकार भूले हुए है।

तात्पर्य यह है कि शरीर जैसी अत्यन्त समीप की वस्तु को देख कर–उसके भीतर विद्यमान चेतना शक्ति पर विचार करके भी आप आत्मा को पहचान सकते है। अगर आपने आत्मा को पहचान लिया। क्योकि आत्मा और परमात्मा वास्तव मे दो भिन्न वस्तुए नही हैं। शुद्ध बुद्ध और निर्विकार आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा के स्वरूप को न पहचानने से ही परमात्मा को पहचानना कठिन हो रहा है।

यह शरीर परमात्मा की पहचान के लिए और धर्म–कार्य करने के लिए है। मगर बाहर के कामो मे फस कर लोग असली कर्त्तव्य को भूल रहे है।

एक उत्तम वस्तु जो बादशाह को भेट करने के लिए ले जाई जा रही है, मार्ग मे किसी नीच, अविचारी और मूर्ख को भेट कर देना कितनी मूर्खता है।

आत्मा सूक्ष्म है। उसे देख लो तो परमात्मा की दृष्टि मे आ जाओगे। परमात्मा के दर्शन करने का यही मार्ग है। इस मार्ग पर चलने के लिए पहले–पहल परमात्मा की स्तुति करना उपयोगी होता है। मगर परमात्मा की स्तुति शुद्ध भाव से करनी चाहिए। पुत्र धन– दौलत की कामना रखकर स्तुति करना उचित नही है। शुद्ध भाव से की हुई स्तुति ही शुद्ध फल प्रदान करती है।

परमात्मा की स्तुति ज्यो–ज्यो शुद्ध भाव से की जाती है त्यो–त्यो आत्मा का विकास होता है। आज जो परमात्मा है वे भी एक दिन आपकी ही भाति सासारिक अवस्था मे थे उन्होने शुभ कार्यो द्वारा परमात्मपद प्राप्त

किया है। परमात्मा हम लोगो को आश्वासन देता है कि 'यह पद तुम्हारा भी हो सकता है। इसलिए निर्भय रहो और हृदय मे दया रख कर सब जीवो को अभयदान देने का मार्ग ग्रहण करो। ऐसा करने से तुम्हे मेरा पद प्राप्त हो जायेगा।"

{ ख }

चन्द्रप्रभो ! जगजीवन अन्तर्यामी।

यह भगवान् चन्द्रप्रभ की प्रार्थना है। प्रार्थना करते हुए भक्त कहता है

जय–जय जगतशिरोमणि।

हे जगत् के शिरोमणि ! जगदुत्कृष्ट ! तेरी जय–जयकार हो। इस कथन से विचार उत्पन्न होता है कि भक्त के हृदय मे यह विचार क्यो आया? और जो जगत का शिरोमणि है, उसकी जय–जयकार करने से क्या लाभ है। इसके अतिरिक्त जो परमात्मा पूर्ण वीतराग हो चुके हैं, उन्हे क्या करना शेष रह गया है–किसे जीतना बाकी रहा है, जिसके लिए उनकी जय–जयकार की जानी है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे भक्तजनो का कहना है कि जिन्होने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिन्होने पूर्णता प्राप्त कर ली हे, उन्ही की जय माननी चाहिए। उन्ही की जय मे ससार का कल्याण छिपा हुआ हे। घडा जब तक कच्चा हे तब तक उससे किसी का लाभ नही होता। वह जल को धारण नही कर सकता ओर किसी की प्यास नही बुझा सकता। रसोई जब तक कच्ची है, तब तक किसी की भूख नही मिटा सकती। पक जाने पर वह भूख मिटाती है ओर इस प्रकार दूसरो का कल्याण करती हे।

मतलब यह हे कि जो वस्तु पूर्णता को प्राप्त हो जाती हे वही दूसरो का कल्याण कर सकती हे परमात्मा के सम्बन्ध मे भी यही बात हे। वह भी पूर्णता को पहुच चुका हे। पूर्णता प्राप्त करने के कारण ही उसकी जयजयकार हुई हे ओर इसी कारण उसके निमित्त से दूसरो का कल्याण होता हे। अतएव भक्तजन परमात्मा के विषय मे कहते ह–हे जगत् शिरोमणि ! तेरी जय हो।

जो पूर्णता पर पहुच जाता हे वह दूसरे का कल्याण किस प्रकार कर सकता हे यह जानने के लिए अक्षर को देखो। सामने किसी अक्षर को आदर्श रखकर उसे देख–देख कर उसी सरीखा अक्षर वनाने का प्रयत्न किया जाता ह। यद्यपि दूसरा अक्षर वनाने मे उस पहले अक्षर ने कुछ नही किया हे फिर भी उसे देखकर उसे आदर्श मानकर ही दूसरा अक्षर वनाया गया हे। इस

प्रकार यह समझना कठिन नही है कि जैसे आदर्श अक्षर को देखकर दूसरा वैसा ही अक्षर बनाया जा सकता है, इसी पकार पूर्ण अक्षर दूसरा पूर्ण अक्षर बनाने मे सहायक होकर उपकार करता है, उसी प्रकार परमात्मा भी पूर्णता पर पहुच चुका है, ओर वह हमे पूर्ण पुरुष बनाने मे समर्थ है। यद्यपि आदर्श अक्षर को दूसरे बनने वाले अक्षर से कुछ भी लेना-देना नही है, उसी प्रकार परमात्मा को भी ससार से कुछ लेना-देना नही है। ससार से उसका कोई सरोकार नही है। फिर भी वह पूर्ण पुरुष ससार के जीवो को पूर्णता दिलाने मे समर्थ है। वह पूर्णता प्राप्त करने मे सहायक है। इसलिए भक्तजन कहते हैं-

जय जय जगत् शिरोमणि !

परमात्मा कृतकृत्य हो चुके है। उन्होने चरम विजय प्राप्त कर ली है। हमारे जय-जयकार करने से परमात्मा की जय नही होती है। फिर भी परमात्मा की जय चाहना अपनी नम्रता प्रकट करना है। इस प्रकार कहकर भक्तलोग आगे कहते है-प्रभो ! यद्यपि तू पूर्ण है। तूने सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त कर ली है। लेकिन मै अभी तक तुझसे दूर पडा हू। इसका कारण मेरा भ्रम ही है। मे सोचता हू कि परमात्मा क्या करता। मै स्वय कमाता हू और स्वय खाता हू। इसमे परमात्मा का क्या उपकार हे ? इस प्रकार के भ्रमपूर्ण विचार के कारण ही मै तुझसे दूर पडा हू। लेकिन अब मुझे यह विचार आ रहा है कि जिन विषयभोगो के भ्रमजाल मे पडकर मै परमात्मा को भूल रहा हू, उन विषयो से मुझे कभी तृप्ति नही हो सकती। उदाहरणार्थ कल पेट भर भोजन किया था लेकिन आज फिर भोजन करना पडेगा। ससार के अन्य पदार्थो के विषय मे भी ऐसी ही बात हे। ससार मे कोई पदार्थ ऐसा नही जिसे आत्मा ने न भोगा हो। प्रत्येक पदार्थ को अनन्त-अनन्त बार आत्मा भोग चुकी है। अनादिकाल से भोग भोगते-भोगते भी अभी तक आत्मा तृप्त नही हुई। मगर आत्मा की भोग भोगने से तृप्ति का एक अश भी कही दृष्टिगोचर नही होता। दिन दूनी-रात चोगुनी तृष्णा बढती ही दिखाई देती है। इस तृष्णा का कही ओर-छोर नही है। वह आकाश की तरह असीम और काल की तरह अनन्त हे। तृष्णा अनन्त हे ओर पदार्थ परिमित हे। यह परिमित पदार्थ अनन्त तृष्णा को किस प्रकार शात कर सकते है ? इसके अतिरिक्त एक बडी कठिनाई यह भी है कि जो भोग भोगे जाते हे वे तृष्णा को कम करने के बदले बढाते है। जैसे आग मे ईधन डालने से वह बढती हे उसी प्रकार भोग भोगने से तृष्णा बढती ही चली जाती हे।

हा, इस अनन्त तृष्णा से एक बात अवश्य मालूम पडी। यह अनन्त तृष्णा जब आत्मा की ही है तो आत्मा भी अनन्त होनी चाहिए। तृष्णा अनन्त है तो जिसकी तृष्णा है, वह तृष्णा की आधारभूत आत्मा भी अनन्त अवश्य होगी। इस प्रकार तृष्णा की अनन्तता से आत्मा की अनन्तता का पता चला है। यह विष मे से भी अमृत का निकलना समझिए

हे प्रभो ! यह भान होने पर मैने अपनी आत्मा से कहा—हे आत्मन्! जब तू अनन्त है तो 'अनन्त' (परमात्मा) के साथ ही अपना सम्बन्ध क्यो नही जोडता ? परिमित के साथ क्यो चिपटा हुआ है ?

प्रश्न होता है कि क्या परमात्मा है, जो उसके साथ सम्बन्ध जोडा जाये ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इच्छा उसी वस्तु की होती है जिसका अस्तित्व हो। जिस वस्तु का अस्तित्व नही होता उसकी इच्छा भी नही होती। भोजन ही न होता तो उसे खाने की इच्छा कहा से आती ? इसी के अनुसार भगवान् अनन्त न होते तो उन्हे प्राप्त करने की इच्छा भी नही होती। भगवान को प्राप्त करने की इच्छा होती है, इससे स्पष्ट है कि भगवान हैं। यह बात दूसरी है कि जिस प्रकार भोजन दूर हो और इस कारण उसे प्रयत्न के द्वारा प्राप्त करना पडे, लेकिन भूख लगने के कारण यह विश्वास तो है ही कि ससार मे भोजन भी है। और भोजन दूर है इस कारण यह प्रयत्न द्वारा नही प्राप्त किया जा सकता। जैसे श्रमसाध्य होने पर भी भोजन मिलता है उसी प्रकार दूर होने पर भी भगवान् प्रयत्न करने से अवश्य मिलता है। अतएव जिसके अन्तकरण मे परमात्मा को प्राप्त करने की भावना जागेगी वह परमात्मा की ओर आकर्षित होगा, उसे पाने के लिए प्रयत्न करेगा, अन्त मे उसे परमात्मा मिले बिना नही रहेगा।

कल्पना करो, एक आदमी को भूख लगी हे। उसे आप कितने ही प्रलोभन दे, सन्तुष्ट करने का कितना ही प्रयत्न करे, फिर भी भोजन किये बिना उसे सन्तोष नही होगा। भूख मिटने पर ही उसे सतोष होगा ओर भूख भोजन से ही मिट सकेगी। आप अपने शरीर पर लाखो के आभूषण भले ही पहन ले, मगर भूख लगने पर वे आभूषण किस काम आएगे ? यह बात दूसरी हे कि परम्परा से आभूषणो द्वारा भोजन प्राप्त किया जा सकता हे। लेकिन साक्षात रूप से उनके द्वारा भूख नही मिट सकती। इस प्रकार भूख लगने पर आभूषण वेकार हे ओर इसी कारण भूखा आदमी आभूषण पाकर सन्तुष्ट नही हो सकता। आभूषण पाने पर भी उसकी भूख ज्यो की त्यो वनी रहेगी ओर वह भोजन पाने का ही प्रयत्न करेगा।

इसी पकार जिस भक्त के अन्त करण मे परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा है वह सासारिक भोग–विलास के पलोभन मे पडकर सन्तुष्ट नही हो सकता। बल्कि वह इस पलोभन मे पडेगा ही नही। उसे एकमात्र–परमात्मा को प्राप्त करने की ही इच्छा रहेगी। परमात्मा–विषयक उसकी भूख किसी भी दूसरे उपाय से नही मिटाई जा सकती।

आपके अन्त करण मे जब परमात्मा को पाने की ऐसी बलवती इच्छा जागृत हो और आपका मन भोग–विलास की तरफ न जावे और परमात्मा को ही प्राप्त करना चाहे तब समझना चाहिए कि हमारे भीतर परमात्मा की सच्ची लगन लगी है। जिसके हृदय मे ऐसी लगन होगी उसे परमात्मा प्राप्त होगा ही।

जब तक अन्त करण मे परमात्मा को प्राप्त करने की बलवती इच्छा उत्पन्न नही हुई है, तब तक निरन्तर प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता है। प्रयत्न से ऐसी इच्छा अवश्य उत्पन्न होगी और आत्मा सही मार्ग पर आ जायेगी। घडी बिगड जाती है या लडका बिगड जाता है तो उसे सुधारने का प्रयत्न किया जाता है और सुधार हो भी जाता है। इसी आधार पर यह भी मानो कि आत्मा भी सुधर सकती है केवल प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सासारिक पदार्थो का सुधार कर लेना ही काफी नही है। अपनी आत्मा का सुधार करो। आत्मा का सुधार ही सच्चा सुधार है। जब आत्मा सुधर जायेगी तो उसे परमात्मा की प्राप्ति किये बिना किसी भी प्रकार सतोष नही होगा। वह पूर्ण प्रयत्न करके परमात्मा को प्राप्त करके ही दम लेगी। आजकल के लोगो को आत्मा के सुधार के लिये किसी कठिन क्रिया करने मे घबराहट होती है। वे जरा–सी कठिनाई सामने आने पर हिम्मत हारने लगते है। मगर कठिनाई मे पडने की अनिवार्य आवश्यकता ही कहा है ? ज्ञानियो ने इसके लिए बहुत सरल उपाय बताये है। उनके बतलाये उपाय करने से कठिनाई नही झेलनी पडती और आत्मा का सुधार भी हो जाता है। ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि तुम्हे जो कठिनाई दिखलाई पडती है, वह अज्ञान के कारण ही हे। अज्ञान को दूर कर दो तो कुछ भी कठिनाई नही रहेगी। शास्त्र मे जो उपदेश दिया गया है वह अज्ञान मिटाने के लिए ही दिया गया है। उस उपदेश को सुन कर अज्ञान को हटाओ। फिर देखोगे कि तम्हारे आगे की सभी कठिनाइया समाप्त हो गई हे और तुम्हारा मार्ग एक दम साफ ओर सुगम बन गया है।

9. श्री सुविधिनाथ स्वामी

प्रार्थना

"काकंदी" नगरी भली हो, "श्री सुग्रीव" नृपाल।
"रामा" तस पटरानी हो, तस सुत परम कृपाल।।
श्री सुविधि जिणेसर वंदिये।।टेर।।1।।
प्रभुता त्यागी राजनी हो, लीधो संजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो, पाम्या पद अविकार।।2।।
अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन।
सुध समकित चारित्रनो हो, परम क्षायक गुणलीन।।3।।
ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अन्त।
ज्ञान दरशन बल ये तिहूं हो, प्रकट्या अनन्तानन्त।।4।।
अव्याबाध सुख पामिया हो, वेदनी करम खपाय।
अवगाहना अटल लही हो, आयु क्षय कर जिनराय।।5।।
नाम करम नो क्षय करी हो, अमूर्तिक कहाय।
अगुरुलघुपणो अनुभव्यो हो, गोत्र करम मुकाय।।6।।
अष्ट गुणाकार ओलख्यो हो, जोति रूप भगवन्त।
'विनयचन्द' के उर बसो हो अहोनिश प्रभु पुष्पदन्त।।7।।

{ क }

जिन सुविधिनाथ भगवान् को नमन करने से ध्यान करने से और स्मरण करने से बुद्धि मे सरलता आ जाती है उन सुविधिनाथ को वन्दन करना चाहिए। इनके गर्भ मे आते ही इनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई थी उनकी बुद्धि सुबुद्धि बन गई थी। इसलिए इनका नाम 'सुबुद्धिनाथ' भी है। आगे चलकर भगवान सुविधिनाथ ने क्या किया ?

त्यागी प्रभुता राजनी हो, लीनो सजम भार।
निज आतम–अनुभव थकी हो, पाया पद अविकार।।

इन महापुरुष ने अपनी आत्मा का अनुभव करके मोह का नाश किया और अन्त मे परम पद को प्राप्त किया।

आत्मा को परमात्मा की भक्ति मे तल्लीन करना बुद्धि–बिन्दु को सीप मे डालना है। अगर बुद्धि–बिन्दु को सीप मे न डाल सको तो कमल–पत्र पर तो डालो। जहा मोती न होगा तो मोती के समान तो होगा। कमल–पत्र पर डालने के लिए क्या करना चाहिए ? अनुकम्पा करना, किसी जीव के दु ख–दर्द को दूर करना। ऐसा करते हुए भी यदि तुम्हारी आत्मा मे मोहमत्सरता आदि बने रहे तो भी आत्मा ऊची ही चढेगी, नीचे नही गिरेगी।

आत्मा को उत्तम सगति मे लगाकर उत्तम गुणो की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। नीच वस्तु के ध्यान मात्र से हृदय मे नीचता आ जाती है, तो कुसगति से नीचता आना कौन–सी आश्चर्य की बात है।

प्रात काल उठकर अपने चित्त को नीच कार्य मे न डाल कर जगत्कल्याण के कार्य मे डालो तो दिन कितना अच्छा व्यतीत होता है। और अगर सवेरे ही हृदय मे बुरे विचार आये तो सारा दिन ऐसा ही व्यतीत होगा। हृदय मे बुरे विचार आने से स्वप्न भी बुरे आते है और वही बुरे विचार मनुष्य को चक्कर मे डालकर बुरे काम कराते है, जिससे समस्त जीवन ही नही बल्कि असीम भविष्य भी बिगड जाता है।

अक्सर लोग समझते है कि हमारी हानि दूसरे बाहर वाले ने की है, पर नही यह तुम्हारे हृदय के बुरे विचारो का ही परिणाम है। इस प्रकार गहराई मे उतर कर अगर सच्चाई का पता लगाओगे तो मालूम होगा कि कुसगति से उत्पन्न होने वाले नीच विचारो के कारण तुम्हारी कितनी हानि होती हे।

कौन ऐसा है जो अपने लिए अच्छा करने की इच्छा न करे ? सभी अपनी भलाई चाहते है।

फिर उन्हे रोकता कौन है ? किसने मना किया कि अच्छा मत करो? किस राजा के पहरे बैठे है ? किसने हथकडी–बेडी डाल रक्खी हे कि अच्छा काम या अच्छा विचार न करो ?

मोहराज ने।'

मोह बेचारा क्या चीज है ? मोह भी तो विचार से ही होता है। अपने विचार गम्भीर बनाओ, खोटे विचार मत करो, खोटे वचन मत बोलो, खोटी

दृष्टि न डाल कर पर स्त्री को माता–वहिन की दृष्टि से देखो। ऐसा करोगे तो घाटे मे नही रहोगे। कभी हानि नही उठाओगे।

यह जानते हो कि चोरी बुरे विचार के विना नही होती। व्यभिचार भी बुरे विचारो के बिना नही होता। जितने भी नुकसान है वह सब बुरे विचारो के ही फल है। इन बुरे विचारो मे सफल न हुए, पकड मे आ गये राज्य के द्वारा दण्डित हुए तो फल किसका ?

'खोटे विचारो का !'

जब खोटे विचारो का फल होता है तो क्या खरे (अच्छे) विचारो का फल न होगा ? फिर अच्छे ही विचार क्यो नही करते ?

अच्छे विचारो की ओर अन्त करण का झुकाव न होता हो तो परमात्मा का भजन करो। परमात्मा का स्मरण करो। इससे हृदय मे शाति होगी, बुरे विचार न होगे और अशुभ कर्मो का बन्ध न होगा। इसलिए महात्मा उपदेश करते है

खबर नहिं है जग मे पल की।
सुकृत कर ले राम सुमर ले,
कौन जाने कल की।
कौडी–कौडी माया जोडी,
करे बात छल की।
सिर पर तेरे पाप गठरिया
किस विधि हो हल्की।

भाइयो, कोई एक पल आगे की भी बात जानता है ? न मालूम किस समय शरीर छूट जाये। हृदय की गति बन्द हो जाने से मनुष्य बेठा–बेठा ही मर जाता हे कुछ देर ही नही लगती। जब यह हाल हे तो आत्मा को सुकृत से क्यो वचित रखना चाहिए ?

सुकृत कर ले। राम सुमर ले।

दोनो ही बाते हाथ मे हें। अच्छे काम भी कर सकते हो ओर परमात्मा का स्मरण भी कर सकते हो। तुलसीदासजी कहते हे

तुलसी या ससार मे, कर लीजे दो काम।
देने को टुकडा भला, लेने को हरि नाम।

टुकडे का अर्थ यहा रोटी का ही टुकडा मत समझो। यह समझना चाहिए कि यह तन–धन मेरा ही नही हे कि म इसे सम्भाल कर मालिक वना वठा रहू। इस धन को आत्मा की शान्ति के लिए यदि मने सत्कार्य म व्यय किया तो म इसका मालिक हू, नही तो गुलाम हू।

मालिक कौन है ? ओर ताबेदार किसे कहते है ? मालिक वह है जो काम ले और ताबेदार वह है जो काम दे। इस प्रकार काम लिया तो मालिक और काम देने लगे तो मालिक रहे ?

नही।

जिनको ताबेदार कहते हो वह काम लेने लगे और तुम काम देने लगे तो फिर ताबेदार मालिक है और मालिक ताबेदार है। क्या आप धन के मालिक है ?

हा।

क्या कानो मे तोडे पहन लेने से ही धन के मालिक हो गये ? जिन तोडो ने तुम्हारे कान फाडे हे वह तुम्हारे मालिक हैं या तुम उनके मालिक हो? कान फाडने वाले तोडो के तुम मालिक कहलाओगे तो फिर गुलाम कोन कहलाएगा ? नौकर, मालिक की चिन्ता रखता है या मालिक, नौकर की फिक्र रखता हैं ? जिस धन की तुम्हे रखवाली करनी पडती है उसके तुम मालिक कैसे हुए ?

मित्रो ! यह मालिकी नही है। अगर आप जब चाहे तभी धन को सत्कार्य मे लगा सके, जब चाहे तब उससे ममत्व हटा कर शाति प्राप्त कर सके तो आप धन के स्वामी कहला सकते है। इसके विरुद्ध जो धन मोह उत्पन्न करता है, आसक्ति उत्पन्न करके अशाति का अनुभव कराता है, उस धन के तुम स्वामी नही।

तुम लक्ष्मी की तस्वीर देखते हो। उसमे लक्ष्मी क्या करती है ? कृष्ण के पैर दबाती है। इसी कारण कृष्ण उसके नाथ कहलाते है। अगर कृष्ण लक्ष्मी के पैर दबाते होते तो ? क्या वे लक्ष्मी के नाथ रहते या लक्ष्मी उनकी नाथ बन जाती ? अब आप स्वय विचार कीजिए कि आप लक्ष्मी के स्वामी हे या सेवक है ? स्वामी था प्रदेशी, जिसने उपदेश सुनकर पौने दो हजार गाव दान मे दे दिये। मगर आज तो कोई-कोई धर्मगुरु भी दान देने मे पाप बतलाते है।

जरा विचार करो कि आपने दान देकर ममता का त्याग कर दिया तो पाप कैसे हो गया ? और अगर ममता नही त्यागी तो पाप से कैसे बच गये ?

धन जहर हे न ? उस जहर को खुद न पीकर दूसरे को पिलाना कितना बडा पाप हे। जहर को स्वय पीना अच्छा मगर दूसरे को देना अच्छा नही। इन सब बातो का अर्थ यही हे कि दूसरो को दान देना अच्छा नही है।

लोकोत्तर ज्ञान के धनी भगवान् नेमिनाथ ने जीव–दया से प्रेरित होकर राजीमती को त्याग दिया। इतने वह दयालु थे। और फिर घर लोट कर जहर बाटने लगे ! वह भी थोडा नही, वरन् एक करोड, आठ लाख सोनेया लगातार एक वर्ष तक बाटते रहे ! पशुओ और पक्षियो पर तो उन्होने इतनी दया की कि राजीमती को भी त्याग दिया ओर फिर जहर बाटने मे उन्हे दया नही आई !

मित्रो! जगत् के नाथ महापुरुषो के कार्य का इस प्रकार क्यो अनादर करते हो ? जिन्होने मूक पशुओ पर भी दया की, वह दान देने मे पाप समझते तो दान देते ही क्यो ? मगर आप को दान देने मे पाप मान लेने का उपदेश दिया जाता है और आप यह समझ कर उसे स्वीकार कर लेते हैं कि चलो धन भी बचा और धर्म भी हुआ! मगर अपने भविष्य को सोचो। धन साथ लेकर कोई गया है या आप ही पहले–पहल लेकर जाओगे ?

एक भूखा मनुष्य भूख से बिलबिला रहा है। किसी ने उसे अन्न देकर बचा लिया तो उसने पाप किया ? वह भूख का दु ख मिटाने के लिए अन्न देता है फिर जहर कैसा ? जब भूखा आदमी भूख से कराह रहा है और अन्न उसे मिल नही रहा है तो उसे क्रिया लगती है और अन्न मिलने से शाति होती है कि नही? फिर जो शाति करने के लिए दान देता है उसे पाप कैसे लगा? थोडा बहुत विचार तो करो!

इस प्रकार विचार कर उदारता धारण करो। मोह–ममता को घटाओ तो आपका कल्याण होगा।

{ ख }

श्री सुविधि जिनेश्वर बन्दिये रे, प्राणी।

परमात्मा की प्रार्थना करने का रहस्य गहरा हे उस रहस्य तक मनोभाव की पहुच भी कठिनाई से ही होती है तो शब्दो की पहुच सरलता से कैसे हो सकती है ? फिर भी शब्दो का प्रयोग किये बिना काम नही चलता। ससार मे शब्दो को छोडकर और क्या साधन है कि कोई अपने मन के भावो को प्रकट करे ? अतएव इतना कहता हू कि आत्मा मे चढे हुए आवरणो को हटाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना की जाती है। आत्मा के मोलिक स्वरूप पर विचार करने से विदित होता हे कि वास्तव मे आत्मा ओर परमात्मा के स्वरूप मे कुछ भी अन्तर नही हे। जो अन्तर आज मालूम हो रहा हे वह ओपाधिक हे। वह बाह्य कारणो से उत्पन्न हुआ हे। वह बाह्य कारण आठ कर्म हैं। आठ कर्म आत्मा के वेरी हे। उन्होने आत्मा के असली स्वरूप

को ढक दिया है। आत्मा को राजा से रक बना दिया है। साधारण लोग दूसरे व्यक्तियो को अपना बैरी समझते है मगर उन्हे वास्तविकता का पता नही है। जिसे वास्तविकता का भान हो जाता है उसके मन मे तनिक भी सन्देह नही रहता कि कर्म–आवरण के सिवाय आत्मा का शत्रु और कोई नही है। इन्ही वैरियो को हटाने के लिए ही परमात्मा की स्तुति की जाती है।

आत्मा के शत्रु परमात्मा की प्रार्थना करने से कैसे दूर भाग जाते है ? इस प्रश्न का समाधान यह है कि शत्रु जब शक्तिशाली होता है और उसे पराजित करने का अपने मे सामर्थ्य नही होता तो किसी बडे की शरण ली जाती है। महान् शक्तिशाली बडे की सहायता लेने से जबर्दस्त शत्रु भाग जाते है। इस पकार जो काम यो नही होता वह बडे की सहायता प्राप्त होने पर सरलता के साथ हो जाता है।

लोक–व्यवहार मे अकसर ऐसा होता है। फिर भी पौराणिक उदाहरण देखना हो तो कौरवो और पाडवो का उदाहरण देख सकते है। जब कौरव–पाडव मे युद्ध होना निश्चित हो गया और दोनो ही विजय प्राप्त करने की अपनी–अपनी शक्ति को टटोलने लगे तो इन्हे प्रतीत हुआ कि हमारी विजय सिर्फ हमारी शक्ति से नही होगी। अतएव दोनो ने ही श्री कृष्णजी को अपने–अपने पक्ष मे शामिल करने का विचार किया। अर्जुन ने श्री कृष्ण को पसन्द किया और दुर्योधन ने उनकी सेना पसन्द की। मगर विजय उसी पक्ष की हुई जिस पक्ष मे अकेले श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण की बलवती सेना भी कौरवो को विजयी न बना सकी और अकेले नि शस्त्र श्रीकृष्ण ने पाडवो को विजयी बना दिया।

अर्जुन ने विशाल और सुरक्षित यादव–सेना न लेकर कृष्ण को ही लेना उचित समझा था। अर्जुन जानते थे कि कृष्ण की विवेकयुक्त बुद्धि के सामने शस्त्र क्या कर सकते है ? नीति मे कहा है

बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ?

अर्थात्–जिसमे बुद्धि है उसमे बल है। बुद्धिहीन मे बल कहा ?

दुर्योधन के पक्ष मे विशाल सेना थी और शस्त्राशस्त्र की कमी नही थी मगर उसकी बुद्धि खराब थी। इस कारण उसकी हार हुई। अर्जुन बुद्धिमान थे इसलिए उन्होने सेना न लेकर श्रीकृष्ण को ही लिया। इसी तरह अगर आपकी बुद्धि अच्छी हे ओर आप विजय चाहते हे, कर्मरूपी शत्रुओ को भगाना चाहते है तो आप भगवान सुबुद्धिनाथ की शरण लीजिए। लेकिन यह ध्यान रखना कि भगवान सुबुद्धिनाथ को प्राप्त करने के लिए निर्मल बुद्धि

होनी चाहिए। अगर आपकी बुद्धि मे विकार हुआ तो भगवान् सुबुद्धिनाथ आपको प्राप्त नही होगे। अपनी बुद्धि को निर्मल बना कर जब आप सुबुद्धिनाथ प्रभु की शरण रहेगे तो आपकी आत्मा के शत्रु आप ही भाग जाएगे। आत्मा के सच्चे शत्रु आत्मा मे ही रहते है। वे भगवान् की सहायता के बिना नही भाग सकते। इसलिए जैसे अर्जुन के मन मे यह निश्चय था कि कृष्ण के बिना मेरी जीत नही हो सकती, उसी प्रकार आप भी अपने मन मे निश्चय कर लीजिए कि भगवान् सुबुद्धिनाथ की सहायता के बिना मैं अपने आतरिक शत्रुओ पर विजय प्राप्त नही कर सकता। इस प्रकार की दृढ आस्था होने पर ही आप भगवान् की शरण ले सकेगे। लेकिन भगवान् सुबुद्धिनाथ के पास हथियार नही है। फिर भी क्या आप उनकी सहायता लेना पसन्द करेगे ? आपकी समझ मे यह बात आ जानी चाहिए कि हथियारो मे जहर भरा हुआ है। हथियार दूसरो का गला काटने के सिवाय ओर कुछ भी काम नही दे सकते। उनसे शत्रुओ की हानि नही, वृद्धि ही होती है। हानि अगर होती तो शस्त्र का उपयोग करने वाले की ही होती है। शस्त्रो के द्वारा शत्रुता मिटने के बदले बढती ही है। अगर आप इस तथ्य को भली–भाति समझ लेगे तो शस्त्रहीन भगवान् सुबुद्धिनाथ को उसी प्रकार ग्रहण करेगे जैसे वीर अर्जुन ने नि शस्त्र श्रीकृष्ण को ग्रहण किया था। आप विश्वास रखिए, जब आपके हृदय मे वीतराग भगवान् विराजमान होगे तो राग–द्वेष आदि विकार उसी प्रकार विलीन हो जाएगे जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार विलीन हो जाता है।

बाह्य दृष्टि से न देखकर अन्तर्दृष्टि से देखो तो पता चलेगा कि आपके आन्तरिक शत्रु वही है जिन्हे वीतराग भगवान् ने जीता है। उन्ही शत्रुओ ने आपके ऊपर आधिपत्य जमा रक्खा है। भक्तजन कहते है

जे तुम जीत्या ते मुझ जीतिया,
पुरुष किसी मुझ ना . . ।

अतएव अगर आप वैरविहीन बनना चाहते है तो भगवान् को अपने हृदयमन्दिर मे विराजमान कीजिए। भगवान् ने उन वैरियो को जीत लिया हे, अतएव उनके भीतर प्रवेश करते ही वैरी भाग जाए, इसमे सन्देह की आवश्यकता नही है। णमोक्कार मन्त्र का पहला पद हे– नमो अरिहताण।' अर्थात् वेरियो का नाश करने वालो को नमस्कार हो। इस पर आशका हो सकती हे कि जिसने अपने वैरियो का नाश किया हे वह वीतराग केसे कहला सकता हे ? मगर उन्होने किसी वाह्य शत्रु को नष्ट नही किया हे। कर्म–शत्रु का नाश करने के कारण ही वे अरिहत कहलाते हे।

कर्म किस प्रकार शत्रु है, यह बात समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है। आमतौर पर कर्म का अर्थ कर्त्तव्य समझा जाता है। कर्त्तव्य चाहे अच्छा हो अथवा बुरा हो, वह यही रह जाता है। आत्मा के साथ वह नही जाता। ऐसी स्थिति मे कर्म परभव मे फल कैसे दे सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हिसा आदि की क्रिया भले ही यही रह जाये मगर क्रियाजनित सस्कार आत्मा मे बना रहता है और वही सस्कार शुभ–अशुभ फल देता है। इस बात को समझने के लिए वनस्पति को देखिये। शास्त्र मे वनस्पति के सम्बन्ध मे बहुत विचार किया गया है और उसे 'दीर्घलोक' नाम दिया गया है। आज के वैज्ञानिक भी स्वीकार करते है कि वनस्पति स्वतन्त्र शक्ति प्राप्त करके हमे सहायता देने वाली है। वह पृथ्वी, पवन, जल आदि से बिगडी वस्तु लेकर अपनी शक्ति से उसे सुधारती है। फिर उसका फल आप ग्रहण करते है। अब अगर सुधरी हुई वस्तु लेकर उसे बिगाड दे तो वनस्पति की अपेक्षा भी गये–बीते कहाएगे या नही ?

प्रश्न किया जा सकता है कि पृथ्वी, पानी आदि को 'दीर्घलोक' न कह कर सिर्फ वनस्पति को ही 'दीर्घलोक' क्यो कहा है ? इस प्रश्न के उत्तर मे आचार्य का कहना है कि वनस्पति के आधार पर ही ससार का टिकाव है। इसी कारण वनस्पति को 'दीर्घलोक' कहते है।

पानी बरसने पर जगल मे हरियाली ही हरियाली दिखाई पडती है। पानी बरसने पर वनस्पति हरी हो जाती है, लेकिन साधु के वचनरूपी जल की वर्षा होने पर भी अगर आपके अन्त करण मे धर्म की जागृति नही हो तो आपको क्या कहा जाये ।

अपने यहा पन्नवणासूत्र मे वनस्पति के सम्बन्ध मे बहुत विचार किया गया है। आजकल के वैज्ञानिको ने भी वनस्पति शास्त्र की रचना की है। वनस्पति के विषय मे गाधीजी ने अपने एक लेख मे लिखा है कि–'वनस्पति के शोध मे अभी तक बहुत कमी है। इतनी अधिक कमी है कि अगर यह कहा जाये कि अभी तक पृथ्वी ही नही जोती गई है तो भी कुछ अनुचित नही होगा। अगर वनस्पति की विशिष्ट खोज की जाय तो लोगो को भ्रष्ट दवा खाने की आवश्यकता न पडे। आयुर्वेद मे कहा है कि जो प्राणी जहा उत्पन्न होता हे उसके लिए उसी प्रदेश की दवा उपयोगी होती है। ऐसा होते हुए भी आजकल के लोग भ्रष्ट चीजे खाना पसन्द करते हे ओर भारतवर्ष मे उत्पन्न होकर भी इग्लेड की ओषध खाते है ? वह दवा कितनी ही अभावन क्यो न हो बिना विचार किए उसे निगल जाते है या डकार जाते है। अगर

वनस्पति के सम्वन्ध मे अधिक खोज की जाये तो इस देश के निवासियो की प्रकृति के विरुद्ध ओर अपवित्र दवाइया खाने का अवसर ही न आवे।'

मतलब यह हे कि क्रियाजनित सस्कार किस प्रकार आत्मा को शुभाशुभ फल देता है, इस बात की खोज वनस्पति के आधार पर की जा सकती हे। इसके लिए वटवृक्ष को देखिये। वटवृक्ष हवा–पानी आदि के सयोग से अपना विस्तार करता हे। उसकी डालियो ओर पत्तो का फेलाव होता हे और उनमे फल लगते हैं। वट की इस प्रकट क्रिया के साथ ही साथ उनमे एक गुप्त क्रिया भी होती रहती हे। उसी गुप्त क्रिया के आधार पर यह विचार किया जा सकता हे कि शुभ–अशुभ क्रियाओ से उत्पन्न होने वाले सस्कार किस प्रकार आत्मा को फल प्रदान करते हैं ?

बड के फल मे छोटे–छोटे वीज होते हे। उन वीजो मे बड अपने सरीखा वृक्ष भर देता है। फल या वीज मे अगर बड–वृक्ष को देखने का प्रयत्न किया जाये तो दिखाई नही देता मगर बुद्धि द्धारा समझा जा सकता हे कि बीज मे सम्पूर्ण वृक्ष छिपा हुआ है। छोटे से बीज मे अगर वृक्ष न छिपा होता तो पृथ्वी, पानी, ताप आदि का अनुकूल सहयोग मिलने पर वह केसे प्रकट हो सकता था ? आशय यह हे कि वटवृक्ष के सस्कार जैसे उसके बीज मे मौजूद रहते हैं उसी प्रकार आत्मा के द्वारा की हुई क्रियाओ के सस्कार आत्मा मे मौजूद रहते हैं और वे सस्कार क्रिया के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा को शुभ या अशुभ फल प्रदान करते हैं।

पानी वरसने से पहले, जब जगल मे हरियाली नही होती उस समय अगर हरियाली के वीजो को रखा जाये तो उनमे वेसी विचित्रता नजर नही आएगी। मगर पानी वरसने पर जव नाना प्रकार की हरियाली उगती हे तो मानना पडेगा कि वीज भी नाना प्रकार के थे। वीज न होते तो हरियाली कहा से आती? ओर अगर वीजो मे विचित्रता न होती तो हरियाली मे विचित्रता कैसे होती? बीज के अभाव मे हरियाली नही होती, पानी चाहे कितना ही वरसे । इस प्रकार कार्य को देखकर कारण का पता लगा लिया जाता हे। हरियाली को देख कर जाना जा सकता हे कि यहा वीज मोजूद थे ओर जेसे वीज थे पानी आदि का सयोग मिलने पर वेसा ही वृक्ष उगा हे।

वस यही वात कर्म के सम्वन्ध मे भी समझ लेना चाहिए। यो तो कर्म के वहुत से भेद हे मगर मध्यम रूप से आठ भेद किये गये हैं। जेनो का कर्मसाहित्य वहुत विशाल हे ओर उसमे कर्म के विषय मे वहुत विचार किया गया हे। श्वेताम्वर–दिगम्वर आदि सम्प्रदायो मे अनेक छोटी–मोटी वातो मे

मतभेद है, मगर कर्म के आठ भेदो मे तथा उनके कार्य के विषय मे किसी पकार का मतभेद नही है।

इन आठ कर्मों मे चार अशुभ और चार शुभाशुभ है। मगर शास्त्र का कथन है कि कर्म मात्र का फिर चाहे वह शुभ हो या अशुभ त्याग करना ही उचित है। ऐसा करने पर परमात्मा का साक्षात्कार होता है। यो तो आत्मा स्वय परमात्मा ही है। कर्म के कितने ही आवरण आत्मा पर चढे हो, अपने स्वरूप से वह परमात्मा ही है। शुद्ध सग्रहनय के मत से 'एगो आया' अर्थात् आत्मा एक है इस दृष्टिकोण के अनुसार आत्मा और परमात्मा मे कोई भेद नही है। अपनी आत्मा भी परमात्मा की तरह पवित्र है। आत्मा और परमात्मा मे आज जो भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, उसका कारण आवरण ही है। आवरणो के हट जाने पर आत्मा सुबुद्धिनाथ ही है। इसलिए कहा गया हैं

द्वैत–कल्पना मेटो।

वेदान्त भी 'तत्वमसि' कह कर इसी सिद्धान्त का निरूपण करता है। साराश यह है कि कर्म के कारण आत्मा और परमात्मा मे भिन्नता पड रही है। जब वह भिन्नता हट जाती है तो दोनो मे लेशमात्र भी अन्तर नही रहता। इस भिन्नता को हटाने के लिए ही भगवान् सुबुद्धिनाथ को हृदय मे बसाने की आवश्यकता है। भगवान सुबुद्धिनाथ ने कर्मो को नष्ट कर डाला है, अतएव जिसके हृदय मे वे बसेगे उसमे भी कर्मो का अस्तित्व नही रह सकेगा। काम क्रोध मोह आदि विकार कर्म के कारण है और जिस हृदय मे भगवान् बसते है उसमे इन विकारो की पैठ नही हो पाती। अतएव आत्मा निष्कर्म होकर पूर्ण परमात्मा बन जाती है।

मकान ईंट–चूने का बना होता है फिर भी आप उसे अपना मानते है। लडकी दूसरे के ही होने पर भी जब उसका सम्बन्ध आपके लडके के साथ हो जाता हे तो उस पर आपकी आत्मीयता नही हो जाती? इस प्रकार जब बाहर की चीज पर भी मोह होता है तब तो कर्म शरीर से सम्बन्ध रखते हे उनके प्रति मोह होना स्वाभाविक ही है और उसके प्रति मोह होने के कारण ही आत्मा और परमात्मा मे अन्तर पडा हुआ हे। कर्म की उपाधि न हो तो आत्मा और परमात्मा मे किसी प्रकार का अन्तर नही रहता। इसलिए कहा है–

तू जिस्म जिगर और जहा नही जानना।
फिर क्यो नही कहता खुदा जो तू है दाना।

क्या तू यह जानता है कि मे जिस्म नही हू, जिगर नही हू और जहान भी नही हू ? अगर जानता हे तो फिर क्यो नही कहता कि मै खुदा हू ? कदाचित् यह कहा जाये कि ऐसा कहना अहकार होगा तो यह कहना ठीक नही। अहकार की बात तो तब होगी जव तुम अपने को जिस्म, जिगर ओर जहान मानोगे। अपने को जिस्म या जिगर समझना अहकार हे। जब जिस्म, जिगर और जहान अलग हो जाता है तो शुद्ध आत्मा के सिवाय और वचता ही क्या है ? और उस अवस्था मे उसे परमात्मा कहना अभिमान की बात केसे हो सकती है ? अभिमान तभी तक रहता है जब तक ससार के प्रति मोह बना रहता है। ज्ञानी पुरुष मोह का नाश करने के लिए कहते है कि

बुज्झिज्ज त्ति तिउट्टिज्जा बघणं परिजाणिया।
किमाह बघण वीरो किं वा जाण तिउट्टइ?।।
चित्तमंतमचितं वा परिगिज्झ किसामवि।
अन्नं वा अणुजाणहि एव दुक्खाण मुच्वइ।।
जसिसं वुले समुप्पण्णे जेहि वा संवसे नरे।
ममाइ लुप्पइ बाले अण्णे मुच्छिए।।

इस प्रकार आत्मा मोह–ममता के चक्कर मे पडी हुई है, अन्यथा उसे पुत्र आदि से क्या सरोकार है ? केवल ममता के कारण ही वह पुत्र को अपना मान रहा है। मित्रो ! इस प्रकार के मोह को जीत लो तो तुम्ही परमात्मा हो। अगर तुम इस मोह को नही जीत पाये हो तो परमात्मा नही हो। अगर परमात्मा को वन्दन करना है तो बन्धन के स्वरूप को समझो ओर विचार करो– 'अरे आत्मन ! तू कर्म के साथ कब तक बधा रहेगा? मेरा ओर परमात्मा का स्वरूप एक ही है। लेकिन मोह के चक्कर मे पड कर तू अपने असली स्वरूप को भूला हुआ हे। मगर कब तक भूला रहेगा ? अनादिकाल से भूल मे पडा हे ! अब तो चेत !'

अगर आप से आज ही गृह का त्याग नही हो सकता तो भी माया, ममता और तृष्णा का त्याग कर दो। इतना करने से ही आपको वहुत लाभ होगा उस अवस्था मे आपको सतोष, शान्ति ओर ममता की अपूर्व सुधा का सुख मिलेगा। परलोक की बात थोडी देर के लिए जाने भी दो तो इसी लोक मे आप अपने जीवन को सुखमय ओर सन्तोषमय बना सकेगे।

एक आदमी अज्ञानपूर्वक साप को पकडता हे ओर दूसरा ज्ञानपूर्वक। दोनो के पकडने मे क्या अन्तर हे ? अज्ञान से साप को पकडने वाला जव जानता हे कि यह साप हे तो डर कर भागता हे। मगर जान–बूझकर साप

को पकडने वाले के लिए साप खिलौना रहता है। अतएव आप ससार का स्वरूप समझो और अज्ञान को त्यागो। भगवान् सुबुद्धिनाथ को हृदय मे धारण करो। ऐसा करने पर ससार आपके लिए खिलौने के समान हो जायेगा।

इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण लेना ही सुगम और उत्तम साधन है। आप अपना कल्याण चाहते है तो सुबुद्धिनाथ की शरण गहो।

{ ग }

श्री सुबुधि जिनेश्वर वन्दिये रे।

यह श्री सुबुद्धिनाथ भगवान् की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह बतलाया गया है कि भगवान् सुबुद्धिनाथ, सुबुद्धिनाथ किस प्रकार हुए? भगवान् सुबुद्धिनाथ को भगवान् पद प्राप्त करने मे जो विघ्न था या जो अन्तराय बाधक हो रहा था, भगवान् ने उसे दूर किया था। उसे दूर करने पर भगवान् सुबुद्धिनाथ का आत्मधर्म प्रकट हुआ था। प्रार्थना मे कही गई बात को सुनकर यह विचार स्वत उत्पन्न होता है कि–'हे प्रभो! तेरे और मेरे बीच मे केवल इतनी ही दूरी है कि तूने तो विघ्नो को दूर कर दिया है और मैं उन्हे अभी तक दूर नही कर सका हू। तेरे और मेरे बीच मे सिर्फ इतना ही अन्तर है। सिर्फ इतना ही पर्दा है। इतनी–सी दूरी के कारण मै आपसे दूर पडा हू।

हम और आप यह तो समझ गये है कि आत्मा और परमात्मा मे इतना ही अन्तर है और सिर्फ विघ्नो के दूर होने और न होने का ही पर्दा बीच मे है। मगर प्रश्न यह है कि अब हमे करना क्या चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि अगर हम भगवान् से भेट करना चाहते है तो हमे बीच का पर्दा हटा देना चाहिए अर्थात् पर्दे को नही हटाया जायेगा तब तक परमात्मा से भेट कैसे हो सकती है ? अगर कोई इस पर्दे को हटाने का प्रयत्न नही करता तो यही कहा जायेगा कि वह परमात्मा से भेट नही करना चाहता।

ससार मे सबसे बडी जो भूल हो रही है, वह यही है कि जो वस्तुए परमात्मा से भेट करने मे विघ्न रूप है उन्ही वस्तुओ को लोग हितकारी समझते है। इस भूल के कारण आत्मा और परमात्मा के बीच की दूरी बढती चली जाती है। अगर आप इस दूरी को खत्म करना चाहते है तो इस रीति को पलट दीजिए ओर सच्ची वस्तु प्राप्त कीजिये।

भगवान् सुबुद्धिनाथ का सुबुद्धिनाथ नाम केवल पद प्राप्त करने से पहले का हे– बाद का यह नाम नही है। केवली पद प्राप्त करनेके वाद तो

उनके अनन्त नाम हो गये है। हम लोग अपनी क्षुद्रबुद्धि का सदुपयोग नही करते वरन् दुरुपयोग करते है। अपनी बुद्धि के सहारे ऐसा तर्क–वितर्क करते है जिसका करना उचित नही है। इस प्रकार हम भगवान् को प्राप्त करने के मार्ग मे काटे बिखेर लेते है। भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने पर बुद्धि का दुरुपयोग मिट जायेगा और सुबुद्धि प्रकट होगी। अतएव अपनी बुद्धि को सुबुद्धि बनाने के लिए भगवान् की शरण मे जाना उचित हे।

कहा जा सकता है कि यह तो सभी चाहते हें कि हमारी दुर्बुद्धि मिट जाये और सुबुद्धि का प्रकाश हो, लेकिन ऐसा होता क्यो नही है? इसका उत्तर यह है कि आकाश से जो पानी गिरता है, वह तो सर्वत्र समान ही होता हे परन्तु पात्र उससे अपने अनुसार ही ग्रहण करता है। इसी प्रकार भगवान् की दृष्टि मे तो शुद्ध स्वरूप से सभी जीव समान हैं लेकिन विकारो के कारण अपनी बुद्धि मे विचित्रता को मिटाने के लिए ही भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने की आवश्यकता है। बुद्धि मे विचित्रता किस तरह आ रही हे, इस सम्बन्ध मे विचार करने की आवश्यकता हे।

'परस्पर विवदमानां शास्त्रण,
'अहिंसा परमो धर्म ' इत्यत्रैकवाक्यता।'

इसका अर्थ यह है कि और मतभेद तो बहुत हे मगर अहिसा परम धर्म है, इस विषय मे किसी का भी मतभेद नही हे। अहिसाधर्म सभी को मान्य है, ऐसा होने पर भी धर्म के नाम पर कितनी खूनखराबी हुई हे । जहा धर्म के नाम पर इस प्रकार खूनखराबी हो यानी हिसा हो, समझना चाहिए कि वहा वास्तविक धर्म नही है। वहा धर्म के नाम पर ढोग किया जाता हे। सच्चा धर्म अहिसा है और अहिसा के कारण न कही लडाई हुई हे न हो ही सकती हे। अहिसा, सत्य आदि के कारण न कभी लडाई होती हे ओर न इनके पालन करने मे किसी का मतभेद है फिर भी इनके या धर्म के नाम पर जो लडाई की जाती हे वह केवल अपने हृदय के विकारो के ही कारण की जाती हे। अपने हृदय के विकारो को ही धर्म का नाम दिया जाता हे ओर फिर लडाई की जाती हे। इस स्थिति को देखकर घबडाने की आवश्यकता नही हे। ऐसे समय पर व्यक्ति को स्वातन्त्र्य का विचार करना चाहिए। व्यक्ति–स्वातन्त्र्य के विना धर्म नही टिक सकता। कोई भी धर्म यह नही कहता हे कि परस्पर लडो ओर एक दूसरे को दु ख पहुचाओ। फिर भी धर्म के नाम पर जो दूसरो को दु ख देता हे वह धर्म को नही जानता हे। इस प्रकार बुद्धि मे विचित्रता आ रही हे। इसे मिटाने के लिए सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाना चाहिए। भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने से बुद्धि की विचित्रता मिट जायेगी।

10. श्री शीतलनाथ स्वामी

प्रार्थना

'श्री दृढरथ' नृप तो पिता, 'नन्दा' थारी माय।
रोम–रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय।।टेर।।1।।
जय–जय जिन त्रिभुवन धणी, करुणानिधि, करतार।
सेव्या सुरतरु जेहवो वाछित सुख दातार।।2।।
प्राण पियारा तुम प्रभु, पतिवरता पति जेम।
लगन निरन्तर लग रही, दिन–दिन अधिको प्रेम।।3।।
शीतल चन्दन नी परे, जपता निश–दिन जाप।
विषय कषाय थी ऊपनी, मेटो भव–दु ख ताप।।4।।
आर्त्त रौद्र परिणाम थी, उपजे चिन्ता अनेक।
ते दु ख कापो मानसिक, आपो अचल विवेक।।5।।
रोगादिक क्षुधा तृष्णा, शस्त्र अशस्त्र प्रहार।
सकल शरीर दु ख हरो, दिल सू विरुद विचार।।6।।
सुप्रसन्न होय शीतल प्रभु तू आशा विसराम।
'विनयचन्द कहे मो भणी, दीजे मुक्ति मुकाम।।7।।

परमात्मा की स्तुति मे वास्तविक रहस्य क्या है, इस बात को तो कोई योगीश्वर जो आत्मज्ञान मे परिपूर्ण हो वही बता सकता है। पर जब हम पूर्ण योगी होगे तभी बोलेगे इसी विचार मे बैठे रहे तो पूर्ण कब होगे? अपूर्ण से ही पूर्ण होते है। अगर आरम्भ न करेगे तो पूर्णता पर किस प्रकार पहुच सकेगे?

गरुड जेसा पक्षी ही आकाश मे स्वच्छन्द विहार कर सकता हे परन्तु क्या मक्खी अपने पखो की शक्ति के अनुसार आकाश मे नही उडती? वह उडती है और उसको उडने का अधिकार भी हे। इसी प्रकार परमात्मा और

उसके गुण को पूरी तरह प्रकट करने की शक्ति तो योगियो मे ही हे, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार परमात्मा ओर आत्मा के गुणो पर विचार करना अपना भी कर्त्तव्य है। इस प्रार्थना मे कहा है –

जय जय जिन त्रिभुवन धनी।

अर्थात्–हे तीन लोक के नाथ ! तू जयवन्त हो।

यहा प्रश्न किया जा सकता है कि परमात्मा क्या अपने कहने से जयवन्त होगा? क्या उसे जय प्राप्त करना अभी बाकी है? उसने समस्त कर्म–बन्धनो का क्षय कर डाला है, अपने आपको पूर्णरूप से शुद्ध निर्लेप ओर निर्विकार बना लिया है, फिर परमात्मा को कौन–सी विजय प्राप्त करना शेष रह गया? यदि परमात्मा कृतकृत्य हो गया है तो भक्त के इस कथन मे क्या रहस्य है?

मित्रो ! इस बात को समझना जरा कठिन है, फिर भी अगर विचार करोगे तो अवश्य समझ सकोगे।

एक पुरुष सूर्य की स्तुति करता है कि–'हे सूर्य, तू जगत मे प्रकाशमान हो।' सूर्य तो स्वत प्रकाशमान है फिर इस स्तुति का क्या प्रयोजन है? यही कि प्रकाश पाने वाले ने अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की है कि तेरा प्रकाश लेकर मैं यह गुण सीखा हू। सम्भव हैं, इतने से आप पूरी तरह न समझे हो, अत जरा और स्पष्ट करके कह देना उचित है।

मान लीजिए, राजा ने आपको बडा समझकर बिना कर लिए आपके घर बिजली भेज दी। उस बिजली के प्रकाश से आपका घर जगमगा उठा। यह देखकर आपके मन मे कितना अहकार होगा? आप सोचेगे हम पर महाराजा की बडी कृपा है और आप दूसरो से कहेगे– तुम क्या हमारी बराबरी कर सकते हो! देखो न, महाराज ने हमारे घर मुफ्त मे बिजली भेजी हे। इतने मे राजा ने अगर सभी के घर मुफ्त बिजली भेजने का ऐलान कर दिया तो आपका मुह कुम्हला जायेगा। फिर आप सोचेगे कि राजा ने हमारे साथ क्या विशेषता की है। उन्होने जैसी सभी के घर बिजली भेजी, वैसे ही मेरे यहा भी भेज दी। साराश यह है कि आपके हृदय का वह आनन्द, जो सबके घर बिजली भेजने से पहले था, जाता रहेगा।

यही विचार करने की आवश्यकता है। आपका आनन्द चला क्यो गया? दूसरो को मुफ्त मे बिजली मिली तो आपकी क्या हानि हो गई? आपकी हानि कुछ भी नही हुई हे। सिर्फ आपकी इस सकीर्ण भावना को ठेस पहुची कि दूसरो के यहा न हो तो सुख ओर अगर दूसरो के यहा भी हो तो सुख

काहे का? इसी सकुचित मनोवृत्ति के कारण आपका सुख चला गया। इसीलिए ज्ञानी–जन कहते है कि ससार का सुख ईर्ष्याजनित है। वह छोटा और मै बडा बस यही ससार का सुख है। इस छुटाई और बडाई की स्पर्द्धा ने आत्मा को ऐसा सकुचित बना दिया है कि सच्चा सुख विस्मृत ही हो गया।

सबको मुफ्त मे बिजली मिली तो आपको अधिक हर्ष होना चाहिए था और समझना चाहिए था कि हमारा राजा इतना निष्पक्ष और उदार है कि वह समस्त प्रजा को समान दृष्टि से देखता है। आपको यह शिक्षा भी लेनी चाहिए थी कि जैसे राजा किसी के प्रति भेदभाव नही करता उसी प्रकार मै भी किसी के साथ भेदभाव न रक्खू।

राजनीति यह है कि जो परोपकारी हो, प्रजा को शाति देता हो, प्रजा की भलाई का काम करता हो, राजा उसे मान और अधिकार दे। इसी विचार से आपके राजा ने अगर सम्मान किया तो समझना चाहिए कि मेरे ऊपर बोझ रक्खा गया है। मुझे प्रजा की सेवा का बोझ उठाना चाहिए।

बिजली का तो दृष्टात मात्र है। किसी राज्य मे आज ऐसा सामर्थ्य नही दीखता कि वह अपनी समस्त प्रजा को समान रूप से, कर लिए बिना ही बिजली दे सके। यह सम्भव नही कि बडी–बडी हवेलियो की तरह गरीब की साधारण कुटिया बिजली के प्रकाश से जगमगा उठे। मगर सूर्य का जरा विचार कीजिए। क्या बिजली के प्रकाश की भाति सूर्य का प्रकाश प्रत्येक कुटिया तक नही पहुचता? सूर्य क्या गरीब–अमीर मे भेद करता है? वह आपसे कोई कर वसूल करता है?

'नही।'

तो फिर आप बिजली का आभार माने किन्तु सूर्य के प्रकाश का, जो जगत् का पोषण करने वाला और जीवन देने वाला है, आभार क्यो न माने? सूर्य केवल आपको प्रकाश देता तो आप फूले न समाते और समझते कि बस अकेला मे ही सूर्य का प्यारा हू! सूर्य ने सबको प्रकाश दिया तो आपका आनन्द छिन गया! लेकिन जिन्होने प्रकृति का मनन किया है उन्होने सूर्य का महान् उपकार स्वीकार किया है।

सूर्य की प्रार्थना करने वाला कहता है– हे सूर्य! तू ससार मे प्रकाशमान रहा।' इस प्रार्थना का आशय यह है कि जिस प्रकार सूर्य मुझे प्रकाश देता हे उसी तरह सबको प्रकाश दे और ऐसी प्रार्थना करने वाला इस भावना को ग्रहण करता हे कि तब यह सूर्य किसी को भी प्रकाश से वचित नही करता सबको समान रूप से प्रकाश देता हे तो मे ही क्यो भेद रक्खू?

जिस प्रकार सूर्य जगत् का 'मित्र' हे, उसी प्रकार मै भी समस्त जगत् का मित्र क्यो न बनू?

अब मूल बात पर आइए। प्रार्थना मे कहा हे–

जय–जय जिन त्रिभुवन धनी। करुणानिधि करतार,
सेव्या सुरतरु जेहवो। वांछित फल दातार।

अब उस दिव्य सूर्य के बदले भाव सूर्य रूप त्रिभुवननाथ का विचार करो। हे प्रभो! तू त्रिभुवन का नाथ है, इसलिए जयवन्त हो। जेसे राजा की जय मे प्रजा की जय गर्भित है, इसी प्रकार तीन लोक के नाथ भगवान् की जय मे ससार के समस्त प्राणियो की जय या शान्ति गर्भित हे। क्योकि जब भगवान् को तीन लोक का नाथ कह दिया तो सभी प्राणी उसकी प्रजा हुए। इस प्रकार भगवान् की जय मे यह उदारतम भावना भरी हुई हे। जिसके हृदय मे यह भावना उत्पन्न हो जायेगी, वह क्या किसी से राग और किसी से द्वेष करेगा?

'नही!'

ऐसी भावना वाला सबको समान दृष्टि से देखेगा। सबको एक ही प्रकार से चाहेगा।

इस प्रार्थना मे भगवान् को 'करतार' भी कहा हे। इससे आप यह न समझ बैठे कि कर्त्ता भगवान् है–सब कुछ करने वाला वही है और हम उसकी कठपुतली है। अगर आप यह समझ बेठे तो भ्रम मे पड जाएगे ओर नि सकोच होकर पाप मे प्रवृत्ति करने लगेगे। तो फिर यहा करतार' कहने का क्या प्रयोजन है ?

जैन सिद्धान्त स्याद्वादी हे। भिन्न–भिन्न अपेक्षाओ से एक वस्तु मे अनेक गुणो को स्वीकार करना स्याद्वाद–सिद्धात का सक्षिप्त स्वरूप हे। भगवान् आत्मविशुद्धि मे निमित्त होते हे ओर इस निमित्त की मुख्यता को लेकर ही भगवान् मे कर्त्तापन का आरोप किया जाता हे।

आप लोग विवाह के समय कलश आदि की पूजा क्यो करते हे? कलश आदि का कर्त्ता कुम्हार है। फिर कुम्हार की पूजा न करके चाक की पूजा करने का क्या कारण है ? कारण यही हे कि कलश चाक के निमित्त से वनता है। जेसे चाक के बिना कलश बनाने का काम नही हो सकता, अत चाक निमित्त हे उसी प्रकार परमात्मा भी आत्मशुद्धि मे निमित्त हे। परमात्मा को निमित्त बनाये बिना–उसका भजन चिन्तन मनन आदि किये विना आत्मा की विशुद्धि नही हो सकती। इस प्रकार परमात्मा मे निमित्त होने के कारण कर्तृत्व का आरोप हे।

[illegible] परमात्मा को कर्ता होने का यह अर्थ लगाता है जिस प्रकार कुम्हार घड़ा बनाता है, वही प्रकार ईश्वर संसार को गढ़ता है तो कहना चाहिए कि उसने ईश्वर-स्वरूप को समझा ही नहीं है। अगर ईश्वर ही सब काम करता है, हम कुछ नहीं करते तो हमारे पुण्य और पाप का कर्ता भी ईश्वर ही ठहरा। फिर हमीं को उनका फल भुगतान चाहिए। परन्तु ईश्वर किसी भी वस्तु का कर्ता नहीं है। गीता में कहा है—

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु।
न कर्मफलसंयोग स्वभावस्तु प्रवर्त्तते।। (अध्याय 5)

परमात्मा कर्तापन, कर्मों के फल के संयोग की रचना नहीं करता।

कहा जा सकता है कि अगर भगवान कर्म-फल का संयोग नहीं कराता अर्थात कर्मफल का भोग नहीं कराता तो किस प्रकार जीव कर्म-फल भोगता है? इस प्रश्न का समाधान भी यहीं कर दिया गया है कि आत्मा अपने स्वभाव से ही कर्मों का फल भोग लेती है।

अगर आप यह मान लें कि ईश्वर कर्ता है तो फिर हमें भोजन करने की क्या आवश्यकता है? भूख मिटाना ईश्वर का काम है। फिर हमारे खाने से क्या लाभ होगा? तो आपने ईश्वर का स्वरूप ही नहीं समझा। आपको यह समझना चाहिए कि ईश्वर सर्वदर्शी होने से निमित्तरूप कर्ता है। किसी भी समय उसकी अनुपस्थिति न समझें—यह समझें कि वह सर्वत्र और सर्वदा देखता है। कभी कोई उसकी दृष्टि से नहीं बच सकता। ऐसा समझ लेने पर आपकी पाप में प्रवृत्ति नहीं होगी।

इतने विवेचन का सार यह है कि जैसे आप पृथ्वी पर रहना चाहते हैं उसी प्रकार पृथ्वी पर रहने का सब का हक है। सब को समान अधिकार है। इस बात की शिक्षा आपको प्रकृति के पदार्थ देते है। फिर भी विषम भाव धारण करना मनुष्य की भूल है।

भाइयो! चाहे आप अंधेरे मे रहो या उजाले मे, भीतर रहो या बाहर, परमात्मा अपने ज्ञान से सर्वत्र अपने साथ है। कल्पवृक्ष साथ मे रहने से कोई भूखा नही रह सकता। परमात्मा को पग-पग पर समझ कर ध्यान करने वाले के लिए परमात्मा कल्पवृक्ष है।

अगर आप परमात्मा को सर्वदर्शी और इसी कारण सर्वव्यापक मान कर सर्वत्र पाप से बचते रहेगे तो आपके हृदय मे शीघ्र ही एक अलौकिक ज्योति उत्पन्न हो जायेगी जिससे आपका परम कल्याण होगा।

11. श्री श्रेयांसनाथ

प्रार्थना

चेतन जाण कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभु गुण, मन चंचल थिर कर रे।
श्रेयांश जिनन्द सुमर रे।। टेर।।1।।
सास उसास विलास भजन को, दृढ विश्वास पकर रे।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच, सो सुमरन जिनवर रे।।2।।
कन्दर्प क्रोध लोभ मद माया, ये सब ही परहर रे।
सम्यक्दृष्टि सहज सुख प्रगटे, ज्ञान दशा अनुसर रे।।3।।
झूठ प्रपच जीवन तन धन अरु, सजन सनेही घर रे।
छिन मे छोड चले पर भव को, बांध शुभाशुभ थर रे।।4।।
मानस जनम पदारथ जाकी, आशा करत अमर रे।
ते पूरव सुकृत कर पायो, धरम मरम दिल धर रे।।5।।
'विश्वसेन 'विस्ना' राणी को, नन्दन तू न विसर रे।
सहज मिटे अज्ञान अविद्या, मुक्ति पंथ पग भर रे।।6।।
तू अविकार विचार आतम गुन, भव–जजाल न पर रे।
पुद्गल चाह मिटाय 'विनयचन्द' ते जिन तू न अवर रे।।7।।

मानव जीवन का क्षण–क्षण परमात्मा की प्रार्थना मे ही व्यतीत होना उचित है। प्रार्थना करने का यह विचार कोई नवीन नही हे। अतीतकाल के जितने भी ग्रन्थ हे, उन सव मे परमात्मा की प्रार्थना करने का उपदेश दिया गया हे। वेद कुरान, वाइविल, पुराण आदि सव मे परमात्मा की प्रार्थना की गई हे। जितने भी धर्म ओर समाज हे उन सव मे यही उपदेश दिया जाता हे कि परमात्मा की प्रार्थना ही ससार मे सारभूत वस्तु हे। यह दूसरी बात हे कि प्रार्थना करने का सव सम्प्रदायो का अपना अलग–अलग ढग हे पर प्रार्थना की महिमा सव ने स्वीकार की हे।

प्रार्थना के साधारणतया तीन भेद किये जा सकते हैं– (1) उत्तम (2) मध्यम और (3) कनिष्ठ। उत्तम कोटि की प्रार्थना वह है जिसमें आत्मभाव की जागृति होती है, किसी प्रकार की आशा–कामना नहीं की जाती और जो जगत से भिन्नता का भाव हटाने के लिए की जाती है। जिस प्रार्थना में इहलोक और परलोक सम्बन्धी कल्याण एवं अपना तथा पराया सुख चाहा जाता है वह मध्यम कोटि की प्रार्थना है। जिस प्रार्थना द्वारा यह चाहा जाता है कि भले ही किसी का नाश हो जाए सारा सुख मुझे ही मिले और दूसरे को न मिले इस प्रकार की प्रार्थना कनिष्ठ प्रार्थना है।

बहुत से लोग भगवान के नाम पर यही नीच कोटि की प्रार्थना करते हैं। इस सम्बन्ध में अधिक विवेचन करने का समय नहीं है।

अभी–अभी जो प्रार्थना की गई है वह किस कोटि की प्रार्थना है इसकी परीक्षा के लिए परीक्षक होना चाहिए।

सुमर रे सुमर रे सुमर रे, श्रेयास जिनन्द सुमर रे।

क्यो? श्रेयासनाथ जिनेन्द्र को सुमरने की इतनी प्रबल प्रेरणा क्यो की जा रही है? इसके उत्तर मे कहा है–

चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे।

कल्याण करने का यह महा मगलमय अवसर प्राप्त हुआ है। इस सुअवसर को पाकर निरन्तर–सतत जिस प्रकार महानदी की धारा एक पल के लिये भी नही टूटती है, भगवान् के स्मरण की पावन गगा बहने दो।

लोग कहते है–गगा–किनारे भजन करने से फतह हो जाती है। अर्थात गगा के किनारे का भजन विशेष लाभदायक होता है। मगर गगा के किनारे के भजन मे क्या विशेषता है, इस बात को जो जानता है वही जानता है सब नही जानते। गगा किनारे भजन करने का अभिप्राय यह है कि गगा का अनुकरण करो। जेसे गगा किसी के द्वारा की हुई बडाई या निन्दा से बढती–घटती नही हे। वह अपनी मर्यादा को नही छोडती–जिस ओर वह रही हे उसी ओर बहती रहती हे। उसके पास राजा आवे, चाहे रक आवे, ब्राह्मण आवे या चाण्डाल आवे वह एक सी बहेगी। राजा के आने पर ज्यादा और रक के आने पर कम बहना उसका स्वभाव नही है। वह अपनी एक ही गति से बहती रहती हे। इसी तरह भजन भी एक ही गति से चलने दो। मुह देख–देखकर प्रार्थना मत करो। यह मत सोचो कि इस समय लोग देखते है तो मे भजन करू ओर जब लोग न हो तो भजन भले ही कम हो या न हो। अपनी प्रशसा सुनकर चढ मत जाओ ओर निन्दा सुनकर सूख मत जाओ। इस

प्रकार निरन्तर गति से, समान रूप से, गगा के प्रवाह की तरह प्रार्थना–भजन का प्रवाह चलने दो। जो ऐसी प्रार्थना करता हे वह कल्याण का भागी होता है।

शास्त्र से भगवान् के गुणो को और सिद्धान्तो को पहचान लेने के पश्चात प्रार्थना करने से विशेष रस मिलता है।

आरुग्गा–बोहिलाभं समाहिवरमुत्तम दितु।
चन्देसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहिय पयासयरा।
सागरवरगभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु।।

यह प्रार्थना आप प्राय प्रतिदिन करते हें, पर आप इस पर गहराई से शायद ही सोचते हो। वास्तव मे दत्तचित्त हुए बिना प्रार्थना का यथेष्ट फल नही मिलता।

यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या।

अर्थात्–भाव से शून्य–मनोयोग के बिना की हुई क्रिया फल देने वाली नही होती।

अभी जो प्रार्थना अर्द्धमागधी भाषा मे बतलाई है उसमे और कुछ नही, केवल यह कहा है कि हे प्रभु! मुझे निर्दोष सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र दो। तुम्हारे सिवाय और कहा जाऊ?

कल्याण–रूपी सहज समाधि तू दे, मुझे उपाधि नही चाहिए।

तू चन्द्र से अधिक निर्मल और सूर्य से अधिक प्रकाशमान है।

मित्रो! भगवान् जब सूर्य से अधिक प्रकाशमान है, जिसका प्रकाश सूर्य से नही–सूर्यो से भी अधिक है, वह दिन–रात, छिपे–चौडे, भीतर–बाहर, जो भी कुछ हम करते है उसका साक्षी हे या नही ?

'है।'

यदि आप इस सत्य को स्वीकार कर ले, गाठ बाध ले कि ईश्वर सब जगह देखता है तो आपका कल्याण हो जाये। आप मन मे यह निश्चय कर ले कि दूसरे से दगा करना ईश्वर से दगा करना हे तो आपका मन स्थिर हो जाये। जब आप यह निश्चित कर लेगे कि अच्छे ओर बुरे सब विचारो का साक्षी परमात्मा है तो कल्याण की प्राप्ति मे देर नही लगेगी। इन भावो को धारण कर लेने पर नि सदेह आत्मा, परमात्मा का दर्शन कर लेगी।

श्वास उसास विलास भजन को
दृढ विश्वास पकड रे।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच
सो सुमिरन जिनवर रे।।

कोई श्वास और उच्छ्वास खाली न जाय जिसमें भगवान का भजन न हो।

आप कह सकते हैं—फिर हम बात कब करें? इधर—उधर की गपशप और धंधे—व्यापार की चर्चा करने के लिए भी तो कोई समय चाहिए।

आपने देखा होगा कि पनिहारिन सिर पर खेप रख कर और बगल में पानी से भरा हुआ घड़ा दबाकर चलती है। रास्ते में कहीं कांटा लग जाये तो वे खेप और घड़े को जमीन पर रखे बिना ही खड़ी रहकर एक हाथ से कांटा निकाल लेती हैं। उनके घड़े क्यों नहीं गिरते?

घड़ों पर उनका ध्यान रहता है।

इसी प्रकार परमात्मा पर ध्यान जमाए रखो। काम में लगे रह कर भी परमात्मा के भजन में बाधा न पहुंचे ऐसे प्रसन्नता के काम करो।

कहा जा सकता है कि ऐसे प्रभु की प्रसन्नता के काम गृहस्थ में किस प्रकार निभ सकते हैं? मगर याद रखो तुम्हारे हृदय से यदि झूठ कपट, दगा आदि बुराइयां निकल जाए तो गृहस्थी के काम करने का पाप भस्म होते देर नही लगेगी। ऐसा नही होना चाहिए कि मुह मे राम और बगल मे छुरी। भीतर कुछ और बाहर कुछ। भीतर रसगुल्ले उड़ाओ और बाहर टुकडे बताओ। इस प्रकार का कपटाचार नही निभ सकता। चाहे कोई साधु हो या गृहस्थ ऐसे व्यवहार से किसी का निर्वाह नही हो सकता। हां, परमात्मा से कपट न करो तो सब पाप छूट जाएगे। कपट से परमात्मा नही मिलेगा। लोग यह तो समझते है कि बाहर बुरा व्यवहार करेगे तो लोग मुझे शैतान समझ लेगे पर उन्हे यह भी समझना चाहिए कि परमात्मा से अपने बुरे व्यवहार को वे नही छिपा सकते। परमात्मा सभी कुछ जानता है। जब परमात्मा से नही डरते तो शैतानी प्रकट हो जाने से डरना व्यर्थ है।

मित्रो! विश्वास के बिना कार्य की सिद्धि नही होती। विश्वास आया कि कुछ और ही हाल हो जायेगा। विश्वास के साथ प्रार्थना करो और प्रार्थना के प्रयोजन को समझो। बृहदारण्यक उपनिषद् मे एक प्रार्थना है —

असतो मा सत्‌गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृत गमय।

अर्थात—

(1) भगवान्! तू मुझे असत्य से सत्य पर ला अर्थात् मुझे असत्य मार्ग से हटाकर सत्य के मार्ग पर ला।

(2) अज्ञान के अन्धकार से निकाल कर ज्ञान–ज्योति मे ला।

(3) मृत्यु–ससार से निकाल कर अमर–पद (मोक्ष) पर ला।

पहले कही हुई 'आरुग्गवोहिलाभ इत्यादि प्रार्थना मे जो वात कही गई है वही बात यहाँ कही गई हे। चाहे कोई उपनिषद् के शब्दो द्वारा प्रार्थना करे। चाहे जैन शास्त्रो के शब्दो द्वारा, करना चाहिए उत्तम भाव से। उत्तम भाव से उत्तम कोटि की प्रार्थना करने पर अवश्य कल्याण होगा।

(ख)

श्रेयांस जिनन्द सुमर रे।

शरीर के निमित्त से होने वाले सम्वन्ध को तो सब लोग समझते है, जैसे यह माता है, यह पिता है, इत्यादि। परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि जेसे इन सम्बन्ध से भी परिचय हो इसी प्रकार परमात्मा के सम्बन्ध से भी परिचय प्राप्त करो। इसी के लिए ज्ञानीजन उपदेश देते हैं।

सासारिक सम्बन्धो को तो मनुष्य स्वय पहचान लेता हे ओर नये सम्बन्ध जोड भी लेता है परन्तु आत्मा का परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोडने के लिए ज्ञानियो का रहस्यमय उपदेश होने पर भी किसी को प्रेरणा होती हे और किसी को नही होती। कोई उस सम्बन्ध को पहचानते है और कोई नही पहचानते।

आत्मा के स्वरूप को सुनकर कई तो आश्चर्य करते हे कि यह आत्मा क्या है ? कैसे शरीर मे आती है और कैसे चली जाती हे ? आती ओर जाती दिखाई नही देती, फिर भी बीच मे ऐसे खेल कर जाती हे ऐसी क्राति कर जाती है कि जिसका अनुभव करके दग रह जाना पडता हे। एक–एक आत्मा ऐसी क्राति मचा देती है तो आत्मा मे यह शक्ति कहा से आती हे ? और फिर कहा चली जाती है ? तात्पर्य यह हे कि कई लोग इसी आश्चर्य मे पड जाते है। कई लोग आश्चर्य के रूप मे आत्मा को जान कर आश्चर्य रूप ही कथन करते है। कई लोग आत्मा के खेलो को चकित भाव से सुनते है और सुनकर आश्चर्य मे निमग्न हो जाते हे। इस प्रकार कहने–सुनने पर भी उनकी आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानना कठिन हो जाता हे।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह विषय कितना गहन हे। इसी पर आज में थोडे शब्द कहना चाहता हू। आप ध्यान से सुने।

आत्मा का परमात्मा के साथ जो सम्यन्ध हे उसे समझकर साधारण लोग भी असाधारण–दिव्यरूप हो गये। फिर मे क्यो निराश होऊ? म आशावादी हू, निराशावादी नही।

अभी बोले हुए भजन मे कहा है—

श्रेयास जिनन्द सुमर रे।
सुमर रे सुमर रे सुमर रे,
श्रेयास जिनन्द सुमर रे।

जब किसी बात पर बहुत बल देना होता है, किसी काम के लिए तीव्र प्रेरणा करनी होती है तो उसके लिए शब्दो की पुनरावृत्ति की जाती है।

चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे।

हे चेतन! तुझे कल्याण करने का अवसर मिला है। इसलिए कहते है, परमात्मा को सुमर, सुमर, सुमर।

मित्रो! लोगो की आदत है कि वे भूतकाल की बात भूल जाते है। कभी–कभी तो यह भी ठीक नही कहा जा सकता कि कल क्या–क्या खाया था? मगर आप यदि एक दिन की चर्या भी याद रक्खे तो बहुत अनुभव बढ जाये। प्रतिक्रमण का आशय यही है कि अच्छी और बुरी बातो की सूची बनाई जाये। इसी को गणधरो ने ऐसी प्रभावशाली भाषा मे रचा है कि सुनने और कहने मे प्रिय लगती है। यह बात सबको समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

आप लोग यदि एक दिन की चर्या भी याद रक्खे कि कल मैने क्या–क्या बुरा और भला काम किया है तो आपका अनुभव बढता जायेगा। सम्भव है अभी आपका बाल्यकाल बढता जायेगा। अभी आपको अपने बाल्यकाल की कोई बात याद न हो, किन्तु आप धीरे– धीरे अनुभव बढाए तो आपके बाल्यकाल के सब काम आपकी आखो के सामने आ जाएगे और अगर यह अनुभव बढाते चले गये तो गर्भ और पूर्वजन्म की बाते भी आपको मालूम हो जायेगी। अर्थात् जाति–स्मरण हो सकेगा। लेकिन आप लोग भविष्य की चिन्ता और वर्तमान के जजाल मे पडकर भूतकाल को भूल गये हे।

आप यह क्यो नही सोचते कि बचपन की बाते, जो आपके ऊपर ही बीती है आपको क्यो याद नही है? कारण यही है कि उन पर दूसरी–दूसरी बाते आती गई और बीती बाते छूटती गई। बचपन मे खेल के आगे आभूषण भी तुच्छ जान पडते थे, मगर ज्यो–ज्यो बडे हुए, उसे भूलते गये। इसी प्रकार अपने पूर्वजन्म को भी अपन भूल गये है। भूल तो गये, परन्तु जैसे मुह नही दिखता तो उसे देखने के लिए काच की सहायता ली जाती हे इसी प्रकार ज्ञानीजन शास्त्ररूपी दर्पण हमे दे गये हे। उसकी सहायता से हम अपने भूतकाल को जान सकते हे। उस भूतकाल से हम अपने भूतकाल को जान

सकते हैं। उस भूतकाल को जानो ओर फिर सोचो कि वर्त्तमान मे केसा अपूर्व अवसर मिला हे। इस अपूर्व अवसर को ससार की वातो मे खो रहे हो यही देखकर ज्ञानी पुरुष कहते है–

चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे।

कहा जा सकता हे कि जव आत्मा अमर हो तो यह अवसर अपूर्व क्यो हे ?

वास्तव मे आत्मा अविनाशी हे ओर जेसे–जेसे आत्मा का अविनाशीपन समझ मे आता जायेगा, अधिक जोश वढता जायेगा। मगर यह वात अपने अनुभव से जानना और वात है तथा दूसरे के सुझाने से जानना ओर वात हे।

आत्मा के अस्तित्व की खोज, जितनी भी हो, करनी चाहिए। जितनी भी खोज करेगे उतनी ही शाति वढेगी ओर फिर किसी चीज की चाह नही रहेगी। फिर ससार के पदार्थ ही नही, त्रिलोक के सुख भी आपको तुच्छ प्रतीत होने लगेगे।

आत्मा सच्चिदानन्द हे। 'सच्चिदानन्द' शव्द सत् चित् और आनन्द के योग से बना है।

जो भूत मे था, वर्तमान मे हे ओर भविष्य मे होगा, तीनो कालो मे जिसका नाश नही हो सकता वह 'सत्' कहलाता है।

सौ वर्ष बीते यह निश्चित हे ?

'हा।'

अठारह सो वर्ष वीते, यह भी निश्चित हे ?

'हा।'

तुमने अठारह सो वर्ष देखे नही हे, फिर किस आधार पर कहते हो कि अठारह सो वर्ष वीते? अनुभव से ही सब वात जानी जाती हे कि जेसे कल, परसो, वर्ष , दो वर्ष, पचास वर्ष बीते ऐसे ही अठारह सो वर्ष भी वीते होगे। इसी तरह अनुभव से यह भी मानो कि लाख वर्ष ओर अनन्तकाल भी वीता हे ?

'हा।'

इस वात को आप भलीभाति समझ ले इस उद्देश्य से जरा ओर स्पष्ट करता हू। आप नदी के मध्य भाग को देखकर उसके आदि और अन्तिम भाग का अनुभव करते ह। समुद्र के एक किनारे को देखकर दूसरे किनारे का अन्दाज लगा लेते हें। इसी प्रकार जव वर्तमान हे तो भूत ओर भविष्य के होने का अनुमान कर लेना भी स्वाभाविक हे ओर फिर आत्मा का वर्तमानकाल मे

अस्तित्व है तो समझ लेना चाहिए कि भूतकाल मे भी उसका अस्तित्व रहा होगा और भविष्यकाल मे भी उसका अस्तित्व बना रहेगा। जैसे काल का आदि नही है अन्त नही है, उसी प्रकार आत्मा का भी आदि नही है, अन्त नही है।

जवाहरात कितने भी बडे हो परन्तु जौहरी से बढकर नही हैं। मकान कितना भी बडा हो पर कारीगर से तो बडा नही है। एजिन कितना भी बडा हो फिर भी एजिन निर्माता से बडा नही हो सकता। इसी प्रकार जिस आत्मा ने ऐसे–ऐसे कई शरीर त्यागे है वह तुच्छ कैसे हो सकती है ?

इस विवेचन से आप समझ गये होगे कि आत्मा अमर है। मगर सिर्फ आत्मा ही अमर नही है वरन् पुद्गल भी अमर है। पुद्गल अर्थात् जड रूपी पदार्थ भी तीनो कालो मे विद्यमान रहता है। इस विषय पर आधुनिक विज्ञान ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। मोमबती जलाने के बाद आप समझेगे कि उसका नाश हो गया, परन्तु वैज्ञानिक कहते है कि वास्तविक रूप से उसका नाश नही हुआ। इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होने दो यन्त्र बनाये है। वे यन्त्र जब लगा दिये जाते है तो उस जलती हुई मोमबत्ती के परमाणुओ को अपने भीतर खीच लेते है। इन दोनो यन्त्रो मे इकट्ठे हुए परमाणुओ को अगर जोड दिया जाये तो फिर मोमबत्ती बन जाती है। कहने का आशय यह है कि मोमबत्ती का नाश नही हुआ, सिर्फ रूपान्तर हो गया। इसी प्रकार एक रजकण का भी नाश नही होता, केवल रूपान्तर होता है।

मित्रो ! जब रजकण का भी नाश नही होता तब आत्मा के शरीर छोड देने पर उसका नाश हो जाना क्या सम्भव है ?

नही।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आत्मा के समान अगर जड भी सत् अर्थात् त्रिकालस्थायी है तो आत्मा और जड मे भेद क्या रहा? इस बात को समझने के लिए 'चित्त' गुण पर विचार करना होगा। आत्मा 'चित्त' अर्थात् ज्ञान से युक्त है ओर जड अचित्त। उसमे ज्ञानगुण नही पाया जाता।

जो दूसरे साधनो के बिना ही जानता है जो स्वय प्रकाशमान है और जिससे दूसरे पदार्थ भी प्रकाशित होते है उसे चित्त' गुण कहते हैं। यह गुण आत्मा मे ही पाया जाता है अथवा यो कह ले कि जिसमे चित्त' गुण पाया जाता हे वही आत्मा हे।

जैसे सूर्य स्वय प्रकाशित हे और दूसरे को भी प्रकाश देता हे इसी प्रकार आत्मा स्वय प्रकाशित होती हुई दूसरो को भी प्रकाशित करती हे। क्षेत्र

और काल को नापने वाली आत्मा ही है। खम्भे को खम्भा नाम देनेवाली आत्मा ही है। आत्मा ही जानती हे कि खम्भे को कैसा बनाना चाहिए ओर उसका खम्भा नाम रखना चाहिए। मतलब यह हे कि आत्मा स्वय प्रकाशित है और सारे ससार को प्रकाश देती है। ससार मे जितने भी नाम वाले पदार्थ है, उन सबके नाम आत्मा ने ही रखे है। किसी और पदार्थ मे यह शक्ति हो तो बताओ? है किसी मे ऐसी शक्ति ?

'नही।'

बस, जड और आत्मा मे यही अन्तर हे कि जड की पहचान कराने वाला दूसरा है और आत्मा स्वय प्रकाशित है।

यहा तक सत् और चित् का अर्थ समझाया। अब 'आनन्द' के विषय मे कहता हू।

आत्मा स्वय आनन्दमय है। देश, काल और वस्तु से प्रतीत होने वाला आनन्द यहा नही लिया गया है। बल्कि आत्मा स्वय आनन्दरूप है। आनन्द आत्मा का ही एक स्वाभाविक गुण है, जैसे 'चित्' गुण है।

आदमी गहरी नीद मे सोकर उठता है तो यही कहता है– 'आज बडे आनन्द मे सोया। आज बडे मजे की नीद आई। पर उससे पूछो कि क्या आनन्द था तुमको ? खाते थे या पीते थे ? क्या आनन्द था उस सोने मे ?

मित्रो ! यह कथन आत्मा के आनन्द का एक छोटा सा नमूना है। यह अनुभव सभी को होता है–सभी पर यह घटना घटती है, परन्तु जानने और जानकर विकास करने का समय मिलने पर भी आप न मालूम किस गहरी नीद मे पडे है। आप बाह्य वस्तुओ के आनन्द मे मग्न होकर आत्मा मे जो स्वत आनन्द है, उसे भूले बैठे हैं। जरा सोचो तो सही कि नीद मे न आप खाते थे, न पीते थे, फिर क्या आनन्द आया? यह प्रकृति आपको जरा–जरा सी बात सिखाती है, फिर भी आपकी समझ मे नही आता कि आप इन्द्रिय विकारो को जीत करके आत्मा देखे तो कितने आनन्द की प्राप्ति होगी। भाइयो ! अपने ज्ञान को उस ओर लगाओ। यह उपदेश इसीलिए हे।

निद्रा मे आनन्द यह था कि मन मे एकाग्रता थी। जब मन मे एकाग्रता होने से निद्रा मे भी आनन्द आया तो जागृत अवस्था मे मन को एक जगह करके आत्मा पर विचार करो तो कितना आनन्द होगा?

आप यह न सोचे कि उस आनन्द को हम ससारी जीव केसे प्राप्त कर सकते हे ? केसे हमारा कल्याण हो सकता हे ? ज्ञानी पुरुषो ने कल्याण की एक सीमा कर दी हे। आपको श्वास ओर उच्छ्वास तो आता हे न ?

'हा।'

श्वास महापाण है और इसी से आप जीवित हैं। इस विषय मे एक दृष्टात लीजिए। एक बार श्वास और इद्रियो मे लडाई हो गई। इन्द्रिया कहने लगी–हम तो कुछ न कुछ काम करती है पर यह श्वास क्या काम करता है? इद्रिया स्त्री और श्वास पुरुष है। श्वास ने विचार किया–इद्रियो से लडना–झगडना ठीक नही है। उसने इन्द्रियो से कहा तुम लडो मत। मै चला जाता हू। इतना कह कर श्वास जाने लगा कि सब इन्द्रिया तन गई। आखे फटने लगी कान बहरे होने लगे, जीभ अकडने लगी, हाथ–पाव ऐठने लगे। सबकी हालत बिगडने लगी। तब इन्द्रियो ने श्वास को रोक कर कहा–हम मे से कोई न हो तो काम चल सकता है, परन्तु तुम्हारे बिना काम नही चल सकता।

तात्पर्य यह है कि जीवन के सब खेल श्वास पर ही निर्भर है। जब तक श्वास है तभी तक आशा है। श्वास की साधना करके योगी लोग अपूर्व और अद्‌भुत सिद्धिया प्राप्त कर लेते है। वे हमे सूचित करते है कि श्वास की महिमा ऐसी है। इसलिए इसे नीच काम मे मत लगाओ । इस श्वास के आते या जाते समय अर्थ के साथ अर्हम् या किसी भी परमात्मा के नाम का स्मरण करो। इस श्वास को विकार से अलग, दूर रख कर परमात्मा का ध्यान आने दो।

मित्रो! अधिक न कर सको कम से कम इतना तो करो कि जब तुम निकम्मे होओ अर्थात् जब कोई काम न हो तब परमात्मा का स्मरण करो। मतलब यह है कि श्वास मे भगवान् के भजन का विलास होना चाहिए। भगवान् के स्मरण मे विश्वास के साथ गहरा प्रेम होना चाहिए। ऐसा न हो कि बोलते हो भगवान् का नाम और आ रहे हो नीद के झोके। जिसके हृदय मे प्रेम जागृत होगा उसे नीद नही आ सकती। नीद प्रेमी से तब तक दूर रहती है जब तक प्रेमपात्र मिल न जाये। प्रेम के साथ परमात्मा का जाप करो तो आप जैसी चाहेगे वैसी ही जागृति हृदय मे उत्पन्न हो जायेगी। शास्त्रकारो ने स्वय अनुभव करके यह बात कही है। आप अभ्यास करके इस कथन की परीक्षा करो। जो स्वय अभ्यास करके परीक्षा नही करता और पहले ही अश्रद्धा या बुराई करता है उसका रोग असाध्य है। उसे किस प्रकार विश्वास दिलाया जा सकता है ?

नाम के स्मरण का क्या प्रताप है यह बात शास्त्रो मे बताई हे–

कैसी भी गूढ बात क्यो न हो, ईश्वर के स्मरण मे तल्लीन हो जाओ तो न जाने किस प्रकार वह सरल हो जायेगी। मैने इसका अनुभव किया है और कई बार अपने अनुभव का जिक्र अपने शिष्यो से भी किया हे कि समाधि मे किसी भी गूढ विषय को न मालूम कोन समझ जाता हे। यह अनुभव सभी के लिए मार्ग–दर्शक बन सकता है और ऐसा अनुभव प्राप्त करना कठिन भी नही है। मगर प्रथम तो आपकी इस ओर रुचि भी नही हे, दूसरे जजालो के कारण आपको फुर्सत नही मिलती। लेकिन इस सत्य को सदेव स्मरण रक्खो कि अगर एकाग्र ध्यान लगाओ तो आपकी गति निराली हो जायेगी। इसमे जितना परिश्रम करोगे उतना ही कल्याण होगा।

ससार के जजालो को काटने के लिए महापुरुषो के चरित्रा का आश्रय लेना चाहिए। जो जिस सत्य पर मुग्ध हो जाता हे, वह उसके लिए कष्ट आने पर भी विरत नही होता–कष्ट आने पर उसका प्रेम बढता ही जाता है, घटता नही है। वह उसके लिए दिन–दिन प्रिय होता जाता हे, अप्रिय नही हो सकता। सत्य से प्रेम रखने वाले को सकट फूल से लगते हैं। वह समझता है कि यह सकट सकट नही है। यह प्रेम की धार को तेज बनाने के लिए बाण है। इनसे मेरा प्रेम तीखा बनता है।

तात्पर्य यह है आनन्द नामक गुण आत्मा मे स्वभाव से ही विद्यमान है, किन्तु उसका अनुभव करने और उसे प्रकट करने के लिए परमात्मा से प्रीति जोडनी चाहिए–आत्मा का परिचय प्राप्त करना चाहिए। अभी आप जिस आनन्द का अनुभव करते है, वह उसी आत्मिक आनन्द का विकार है। विकार हे, इसलिए यह तुच्छ है। आप इस विकृत आनन्द से ऊपर उठने का प्रयत्न कीजिए। तभी आपको शुद्ध आनन्द की उपलब्धि होगी।

इस प्रकार सत् आप हे, चित् आप हे आनन्द आपका ही धर्म हे। आप स्वय 'सच्चिदानन्द' हें। इस 'सच्चिदानन्द' स्वरूप को पूर्णरूप से प्रकाश मे लाना और इसमे रहे हुए समस्त विकारो को दूर करना ही मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ साधना होनी चाहिए। इस साधना के लिए मनुष्य–जन्म से अधिक अनुकूल ओर कोई जन्म नही हे। मनुष्य–जन्म प्राप्त करके जो महाभाग इस साधना मे लग जाते हे उन्हे सिद्धि प्राप्त होती हे ओर वे अनन्त, अव्याध असीम तथा अक्षय आनन्द को प्राप्त करते हे।

12. श्री वासुपूज्य जी

प्रार्थना

प्रणमू 'वासुपूज्य जिन नायक, सदा सहायक तू मेरो।
विषम वाट घाट भयथानक, परमेसर शरणो तेरो।।1।।
खल दल प्रबल दुष्ट अति दारुण, जो चौतरफ दिये घेरो।
तो पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी, अरियन होय प्रगटे चेरो।।2।।
विकट पहार उजाड बीज कोई, चोर कुपात्र करे होरो।
तिण बिरिया करिया तो सुमरण, कोई न छीन सके डेरो।।3।।
राजा बादशाह जो कोई कोपे, अति तकरार करे छेरो।
तदपि तू अनुकूल होय तो, छिन मे छूट जाय फेरो।।4।।
राक्षस भूत पिशाच डाकिनी, साकिनी भय न आवे नेरो।
दृष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे, प्रभु तुम नाम भज्या गहरो।।5।।
विस्फोटक कुष्ठादिक सकट, रोग असाध्य मिटे सगरो।
विष प्यालो अमृत होय जगमे, जो विश्वास जिनन्द केरो।।6।।
मात 'जया' 'वसु' देव के नन्दन, तत्त जथारथ बुध प्रेरो।
बेकर जोरि विनयचन्द' विनवे, सेग मिटे मुझ भव फेरो।।7।।

ईश्वर की प्रार्थना करना मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है। ऐसे तो हर समय रुचि के अनुसार प्रार्थना किया करते है, किन्तु भावपूर्वक ईश्वर की प्रार्थना करना दूसरी बात है। प्रार्थना का अर्थ हे–याचना करना। सासारिक कार्यो मे लगा हुआ मनुष्य दूसरे से प्रार्थना याचना करता है, परन्तु उस प्रार्थना ओर ईश्वर की प्रार्थना मे क्या अन्तर हे, यह बात आप लोगो को समझनी चाहिए।

सासारिक पदार्थो की प्रार्थना विषय–वासना के लिए आप वडे बनकर दूसरो को छोटा बनाने के लिए तथा धन पुत्र परिवार राज्य

मानसम्मान आदि पाने के लिए की जाती हे। अदालत सम्वन्धी काम अटकने पर वकील की, व्यापार के काम मे सेठ–साहूकार की, ओर वीमारी होने पर वैद्य की प्रार्थना करने की परम्परा चल रही हे। पर इन कार्यो का रूप वदल कर परमात्मा की प्रार्थना करना, उसकी प्रार्थना मे अपनी वृत्तियो को लगा देना यह बात महात्मा बतलाते हैं।

अभी मैने जो प्रार्थना वोली हे, उसके तात्पर्य पर ध्यान दीजिए–

प्रणमू वासुपूज्य जिननायक, सदा सहायक तू मेरो।
विषमी बाट घाट भयथानक, परमेसर सरणो तेरो।।

हे परमात्मा! यह ससार बडा विषम मार्ग हे। इस मार्ग मे चल कर यह आत्मा नाना प्रकार की आधियो ओर व्याधियो से पीडित हो रही हे। आत्मा ससार के काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के सतापो मे तपी हुई हे। आत्मा को शात रखना कठिन हो रहा है। परन्तु यह दु ख तभी तक है जव तक तुझसे भेट नही हुई है। तेरी भेट होने पर तेरी प्रार्थना करने पर यह सब दु ख मेरे अनुकूल हो जाऐगे मेरे सहायक बन जाएगे।

खल दल प्रबल दुष्ट अति दारूण, जो चौतरफ दिये घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी, अरि–यन फिर प्रकटे चेरो।।

प्रभु! मेरे जो वैरी है वह तभी तक वैरी हे, जब तक तेरी सहायता न मिले। तेरी सहायता मिलते ही वैरी भी वेर भाव छोडकर मेरे मित्र बन जाएगे।

परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि मेरे भीतर जो विपमता हे तथा मेरे लिए जो दूसरे विषम हे, वह ओर हम एक हो जाए। भक्त लोग परमात्मा से यही प्रार्थना करते हे कि जगत् को सम–रूप कर दे। वे रोटी के लिए प्रार्थना नही करते रहे। वे कहते हे मुझे कितने ही कष्ट क्यो न हो मे उन कष्टो को हटाने के लिए प्रार्थना नही करता। मे जगत की भलाई के लिए प्रार्थना करता हू।

चोर ओर राजा वदल कर जब कष्ट देते हे तो ज्ञानी पुरुप विचार करता हे–यह कष्ट नही दे रहे हे बल्कि परमात्मा से प्रार्थना करने की प्रेरणा कर रहे हे। यह हमे समझा रहे है कि अपनी कमी को दूर करो। जिस प्रकार शिक्षक लडको को विद्या सिखाने के लिए छडी मारता हे इसी प्रकार ज्ञानीपुरुप ससार के विरुद्ध व्यवहार को शिक्षा के लिए छडी समझते हे। वे सोचते हें–यह विरुद्ध लोग हमको सिखलाते हे कि परमात्मा की प्रार्थना करो जिससे यह दु ख दु ख न रहकर शातिदाता वन जाए।

मै पहले कह चुका हू कि प्रार्थना उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ के भेद से तीन पकार की होती है। आजकल लोग प्राय कनिष्ठ प्रार्थना करते है। कनिष्ठ प्रार्थना करने का आमन्त्रण दिया जाये तो अभी सब प्रार्थना करने को तैयार हो जाए।

अगर मै किसी को कहू कि आओ, मै तुमको ऐसा मन्त्र सिखाता हू कि जिससे तुम्हारा वैरी तत्काल मर जायेगा। तो सब लोग प्रसन्न होकर भागे आएगे और कहेगे--यह तो बडी अच्छी बात हैं। बहिने कहेगी–घर मे सासू से झगडा चलता ही रहता है। उसे मिटाने मे ईश्वरीय सहायता मिल गई तो और चाहिए ही क्या? इस प्रकार का मन्त्र सीख कर प्रार्थना करने को सब तैयार हो जाएगे, यह प्रार्थना नही, अज्ञान है।

इसी प्रकार अगर यह कहा जाये कि अमुक के नाम की माला फेरने से 10) रुपये प्रतिदिन मिलेगे तो बहुत लोग माला फेरने के लिए तैयार हो जाएगे। सोचेगे–चलो, नौकरी आदि व्यापार की झझट मिटी। क्या ऐसे व्यक्तियो को प्रार्थना का रहस्य मालूम हो सकता है ?

शास्त्रो मे ऐसी प्रार्थना नही है। प्राचीन काल से जो शुद्ध प्रार्थना चली आ रही है और जैनशास्त्र मे जिसका उल्लेख है, उसका तात्पर्य समझो। उसका कतिपय अश इस प्रकार है –

'धम्मसारहीण, धम्मवरचाउरतचक्कवट्टीणं, जिणाण, जावयाण,
तिन्नाण, तारयाणं, बुद्धाण, बोहयाण मुत्ताण, मोयगाणं।'

अर्थात्–हे प्रभो! आप धर्म के सारथी हो, धर्म के चक्रवर्ती हो। आप जिन होकर दूसरो को भी जिन बनाने वाले है। स्वय ससार–सागर से तिरे है और दूसरो को तिराने वाले है। आप स्वय बुद्ध होकर नही बैठ गये है, बल्कि आपने ससार को बुद्ध होने का उपदेश भी दिया है। आप सब पापो से मुक्त होकर ससार को पापमुक्त करने मे समर्थ हुए है।

मित्रो ! परमात्मा को यहा धर्म–सारथी कहा है। समझना चाहिए कि सारथी किसे कहते है और सारथी कैसा होता है? कृष्ण अर्जुन के सारथी थे। अगर अर्जुन को कृष्ण सारथी न मिले होते तो उसकी विजय त्रिकाल मे भी सम्भव नही थी। कृष्ण के सारथी होने पर भी अर्जुन डर गये–घबरा गये। तब कृष्ण ने कहा–

क्लैव्य मा स्म गम पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्र हृदयदौर्बल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप!।।

गीता अ 2 श्लो 3।

पार्थ, क्यो हीजडापन धारण करता है ? तुझे ऐसा करना शोभा नही देता। तू हृदय की इस तुच्छ दुर्वलता को छोड और युद्ध के लिए तैयार हो जा।

भाइयो ! आपको परमेश्वर सरीखा सारथी मिला हे। वह आपसे कुछ लेता तो नही है! फिर क्यो कायरता दिखलाते हो ? विश्वास रक्खो कि हमारा धर्म–सारथी इतना सामर्थ्यशाली है कि कर्मशत्रुओ के साथ किये जाने वाले युद्ध मे हम कदापि पराजित नही हो सकते। हम अपने इन शत्रुओ पर विजय प्राप्त करेगे और सव भाइयो से प्राणीमात्र से वेर–भाव हटाकर अवश्य मैत्री कायम करेगे।

वैदिक मार्ग मे भी ऐसी ही प्रार्थना की जाती हे। यद्यपि वेदो मे बहुत–सी बाते क्लिष्ट है, तथापि हम उन बातो को छोडकर केवल प्रार्थना के विषय मे कहे गये मत्रो पर ही ध्यान देते है। वेद मे कहा है–

ॐ विश्वानि देवत् सवितुर्।

यह मन्त्र ऋग्वेद मे प्रार्थना के लिए आया हे। यहा जो 'सवितृ' शब्द आया है उसकी व्याख्या इस प्रकार है–

'सवितृ' सूर्य को भी कहते है और परमात्मा को भी, जेनशास्त्रो मे कहा है–

आइच्चेसु अहिय पयासयरा।

तू सब लोगो को तत्त्व–कार्य मे प्रवृत्त करता है। मेरा सुभीता तू ही है। इस सूर्य के प्रकाश मे मै अनन्तकाल से हू परन्तु मेरे हृदय का अन्धकार मिटा नही। इसलिए मेरे भाव से तू ही सूर्य हे।

यह प्रार्थना अपने लिए करनी चाहिए या सारे ससार के लिए करनी चाहिए ? जिसे ईश्वर प्रिय हे वह तो सारे ससार के लिए ही प्रार्थना करेगा और जो केवल अपने लिए ही ऐसी प्रार्थना करता है समझ लीजिए उसने ईश्वर को अपने घर का बना लिया है।

मेने वेद का जो मन्त्र सुनाया हे उसमे यह प्रार्थना की गई हे –

(1) हे ईश्वर! ससार के सारे पाप कर्म को मुझसे हटाकर मुझे उससे अलग कर।

(2) जो कल्याणकारी काम हे वे मेरे सन्मुख हो ऐसी कृपा तू कर।

(3) हमे यह सद्बुद्धि दे कि हम यह प्रार्थना करे कि सारे ससार का कल्याण हो।

मित्रो! आप लोग गन्दे कामो के लिए प्रार्थना करते है, विश्वव्यापक भाव से नही करते। प्रार्थना सम्पूर्ण जगत के कल्याण के वास्ते करनी चाहिए। यह समझना गलत है कि यह मेरा वैरी है इसके लिए मै प्रार्थना क्यो करू? बल्कि वैरी के लिए सबसे पहले प्रार्थना करनी चाहिए कि वह पाप–भावना त्याग दे। जब वैरी अपनी पाप–भावना त्याग देगा तब वह भी आपका मित्र हो जायेगा। प्रार्थना मे ऐसी शक्ति है कि पापी से पापी भी अपना पाप छोड सकता है।

प्रार्थना करने के लिए अन्त करण स्वच्छ और विचार विशाल होने चाहिए। यह आवश्यक नही कि वेद के शब्दो से ही या जैनशास्त्र के शब्दो से ही प्रार्थना की जाये। मूल्य शब्दो का नही अर्थ का होता है। जो विशाल भाव से और निर्मल अन्त करण से ईश्वर की प्रार्थना करते है, उनका कल्याण अवश्य होता है।

13. श्री विमलनाथ जी

प्रार्थना

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुध निर्मल हो जाय रे।
जीवा! विषय–विकार विसार ने, तू मोहनी कर्म खपाय रे।।
जीवा विमल जिनेश्वर सेविये।।1।।
सूक्ष्म साधारण पणे, प्रत्येक वनस्पति माय रे।
जीवा! छेदन–भेदन ते सही, मर–मर उपज्यो तिण काय रे।।2।।
काल अन्त तिहा भम्यो, तेहना दु ख आगमथी समाल रे।
पृथ्वी अप तेउ वायु मे, रह्यो असंख्यासंख्य काल रे।।3।।
एकेन्द्री सू बेइन्द्री थयो, पुन्याई अनन्ती वृद्धि रे।
जीवा! सन्नी पचेन्द्री लगे पुन्य बध्या, अनंतानंत प्रसिद्ध रे।।4।।
देव नरक तिरमच मे, अथवा मानव भव बीच रे।
जीवा! दीनपणे दु ख भोगव्या, इण चारो ही गति बीच रे।।5।।
अब के उत्तम कुल मिल्यो, भेट्या उत्तम गुरू साध रे।
सुण जिन वचन सनेह से, समकित व्रत शुद्ध आराध रे।।6।।
पृथ्वीपति 'कृतभानु' को, 'सीमा' राणी को कुमार रे।
जीवा! 'विनयचद कहे ते प्रभु, सिर सेहरो हिवडायो हार रे।।7।।

विमल जिनेश्वर वन्दिये

जिसकी दृष्टि भूतकाल पर नही हे उसके लिए अपना भविष्य सुधारना कठिन हे। जो भूत को भूला हुआ हे, वह भविष्य को भी भूल जाता हे। जो भूत पर ध्यान नही देता ओर केवल वर्तमान मे ही मस्त रहता हे उसमे ओर पशु मे क्या अन्तर हे ?

पशु को यह ज्ञान नही हे कि इस घास के लिए मेने कितना कष्ट उठाया हे। फिर मेरे आगे जो पचास गट्टर घास पडे हे इसे एकदम क्यो

कुचलकर खराब कर डालू ? उन्हे यह भी भान नही रहता कि वे कितना अधिक खा जाते है कि उनका पेट फूल जाता है और वे मर जाते है। उनमे यह शक्ति नही कि वे अपनी भूतदशा को देखकर अपने कल्याण–मार्ग का विचार करे। मगर पशु तो आखिर पशु है, बहुत से मनुष्य भी भूतकाल पर विचार नही करते और न भविष्य की चिन्ता करते है। यह बडे दु ख की बात है।

ज्ञानीजनो का कथन है कि अपने भूतकाल पर दृष्टि डालो। भूतकाल मे हम कहा–कहा रहे है इस बात पर विचार करो तो हृदय मे जागृति हुए बिना न रहेगी।

सूक्ष्म साधारण पणे, प्रत्येक वनस्पति माहि, रे जीवा,
छेदन–भेदन मे सह्या।।

यह चिदानन्द सूक्ष्म, साधारण वनस्पति मे उत्पन्न हुआ है। शास्त्र मे इस विषय पर बहुत गम्भीर व्याख्या की है, परन्तु इतना समय नही है कि वह सब सुना सकू फिर भी दिग्दर्शन के लिए कुछ कहता हू।

निगोद वनस्पति की आयु 256 आवलिका की होती है। एक मुहूर्त्त मे इन जीवो को 65, 536 जन्म–मरण करने पडते है। इनकी आयु इतनी कम होती है कि जितने समय मे हम एक श्वास लेते है, उतने समय मे इनकी 17।। बार मृत्यु हो जाती है। यह जीव अनन्तकाल तक इसी प्रकार मरते–जीते रहते है।

अनन्तकाल वनस्पतिकाय मे व्यतीत करने के बाद, अन्य एकेन्द्रिय जीवो की योनि पाई तो वहा भी लम्बा काल बिताना पडता है। एकेन्द्रिय अवस्था मे इन जन्म–मरण के दु खो को अनन्तकाल तक भोगते रहे, फिर भी वर्तमान के थोडे से विषयभोगो मे फसकर भविष्य का विचार नही करते। भविष्य की मानो कोई चिन्ता ही नही है।

मित्रो ! विमल भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभु! तू ही इसका ज्ञान दे कि मै अपने लम्बे अतीत की कहानी को याद कर सकू और फिर उससे शिक्षा लेकर भविष्य को उज्ज्वल बनाने का उपाय कर सकू। भगवन! मै अब तेरी ही सेवा मे हू। तू ही मेरे हृदय मे यह विचार उत्पन्न कर।

विमल जिनेश्वर सेविये थारी बुध निर्मल हो जाय रे जीवा।
विषय विकार निवारने तू तो मोहनी कर्म खपाय रे जीवा।।1।।

विमल भगवान का स्मरण करो विषय–कषाय मे मत पडो। इनमे पडने के बाद पता ही नही चलता कि कहा से कहा जा पहुचे। असख्य–असख्य

जन्म-मरण करके एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय हुआ और फिर क्रमश पुण्य की वृद्धि होने पर अब पचेन्द्रिय पर्याय प्राप्त हुई है। अपनी इस हालत पर विचार कर विषय कषाय की ओर ध्यान न दे।

किसी की आख बडी होती है और किसी की छोटी, किसी का ललाट बडा होता है और किसी का छोटा। यह अवयव बडे होते हे सो हाथ दो हाथ तो बडे होते नही हैं। बडे और छोटो मे थोडा-सा अन्तर होता हे फिर भी इनमे बडे होने मे पुण्यवसनी का डौल माना जाता हे। कहा भी हे-

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।

अर्थात्- आकृति मे गुणो का निवास हे। जिसकी आकृति सुन्दर है उसमे अच्छे गुण होते हैं।

जब एक-एक अवयव के छोटे-बडे होने पर पुण्य का इतना विचार है तो फिर एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय हुए, पचेन्द्रियो को भी मनुष्य-जन्म मिला और मनुष्य होकर भी भारत की उत्तम भूमि मे उत्पन्न हुए, यह कितने महान् पुण्य की बात है ? इस पुण्य का बदला किससे करना चाहिए, यह विचारो।

इस पुण्य के बदले मे मनुष्य को विषय-कषाय पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। विषय क्या है और कषाय क्या है और इनके जीतने का अर्थ क्या है? इन सब बातो पर प्रकाश डालने के लिए बहुत समय चाहिए। तथापि अभी थोडे मे ही समझाने का प्रयत्न करता हू।

विषय और कषाय का आपस मे सबध है। एक के बिना दूसरा नही रह सकता। इद्रियो के भोग विषय कहलाते है और क्रोध, लोभ आदि कषाय कहलाते है। इद्रियो के भोग का अर्थ आख से किसी को देख लेना अथवा कान से कोई शब्द सुन लेना नही है। आख देखने ओर कान सुनने के लिए ही है। पर देखना ओर सुनना विषय उसी दशा मे बनता है। जब देखने और सुनने के साथ कषाय का मेल होता है। आखो से देखकर जब कषाय करता है अर्थात् किसी को चाहता हे और किसी से घृणा करता हे तभी देखना-सुनना विषयभोग कहलाता है। कषाय को ही राग-द्वेष कहते हे। इस राग-द्वेष को उत्पन्न न होने देना, विषय मे न पडने देना ही इद्रियो को जीतना है।

इद्रियो को न जीतने का फल क्या होता हे इस बात को भलीभाति समझ लीजिए। दीपक पर पतगा गिरता हे क्योकि उसकी लो से पतगे को मोह होता हे। यद्यपि पतगे की वह आखे जिनसे वह देखता हे पुण्य से मिली

है फिर भी वह उन आखो से दीपक की चमक देखकर उस पर गिरता और मर जाता है। पुण्य से मिली हुई उसकी आखे ही उसकी मृत्यु का कारण हुई। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जब एक चक्षु–इद्रिय के अधीन होने के कारण ही पतगा मर गया तो जो लोग पाचो इद्रियो के गुलाम होगे–पाचो इद्रियो से राग–द्वेष करेगे, उनकी कैसी दुर्दशा न होगी!

आखे पुण्य भी कमा सकती है और पाप भी कमा सकती है।

मृगापुत्र अपने महल मे बैठे थे। सब स्त्रियॉ भी वही रागरग से मस्त हो रही थी। किन्तु मृगापुत्र महाराज की दृष्टि इन स्त्रियो के हावभाव पर न जाकर एक महात्मा की ओर जाती है।

अह तत्थ आइच्छत, पासई समणं सजय।
तवनियमसंजमधर, सीलड्ढे गूणआगर।
त देहई मियापुत्ते, दिट्ठिए अणिमिसाए उ।
कहिमन्नेरिस, रूव दिट्ठपुव्व मए पुरा।

श्री उ 19 अ 5–6 गा ।

मुनि को आते देखकर मृगापुत्र महाराज के रोम–रोम मे हर्ष छा गया। वे विचार करने लगे कि ऐसे महात्मा को कही न कही देखा अवश्य है।

मित्रो! वह महात्मा सुन्दर वस्त्रो और आभूषणो से सजे हुए तो थे नही, स्त्री जैसा रूप–शृगार भी उनमे नही था, फिर मृगापुत्र उन्हे देखकर इतने प्रसन्न क्यो हुए? वास्तव मे यह ज्ञानी के लक्षण है। इन आखो से उन वस्तुओ को देखने की आदत डालनी चाहिए, जिन्हे देखकर वैराग्य हो। आखो से साधु सती वेश्या आदि सभी देखे जाते है, पर देख लेने मे ही कोई विशेषता नही है। देखने से जैसे मृगापुत्र महाराज को जाति स्मरण ज्ञान हुआ और वे मुक्ति प्राप्त कर सके ऐसे ही आपको भी महान् लाभ होगा।

कहा जा सकता है कि वैसे महात्मा आजकल हैं कहा इसका उत्तर यह हे कि आज चिन्तामणि और पारसमणि नही मिलती, पर साधारण हीरे–मोती को भी जौहरी ही पहचानता है दूसरा नही पहचानता। दूसरा तो इनके भरोसे इमीटेशन (नकली) हीरा–मोती ले लेता है और जौहरी नकली हीरा–मोती से भी लाखो रुपया कमा लेता है। इसी तरह यदि आज चिन्तामणि ओर पारसमणि जैसे महात्मा–जिनके दर्शन से तत्काल लाभ हो नही है पर साधारण हीरा और मोती के समान सन्त और भक्त तो आज भी मौजूद है।

आप अपनी दृष्टि सदेव अच्छी जगह लगाइये। दृष्टि से मनुष्य की पहचान होती है। एक कामी पुरुष की ओर भक्त की दृष्टि को देखो तो मालूम होगा कि दोनो की दृष्टि मे क्या अन्तर है। जो भक्त हे उनके चेहरे से कैसा शातिरस टपकता हे और जो कामी हें वह धर्मस्थान मे वेठकर भी स्त्रियो पर ही नजर जमाये रहता हे।

मित्रो ! मेरी बात पर ध्यान दो। उस पर विचार करो ओर फिर देखो कि आपको कैसे शाति नही मिलती हे। आखो की साधना करो। महात्माओ के पास उठने–बैठने की ऐसी आदत डालो कि शुभ लेश्या जगे ओर क्रोध आदि का निग्रह होकर कल्याण की प्राप्ति हो। नयन और मन सदा इसी बात के इच्छुक रहे कि ऐसी सगति बार–बार करू। ऐसी भावना होने पर भगवान् विमलनाथ की कृपा से अवश्य शाति मिलेगी।

आज आपको पचेन्द्रिय होकर, मनुष्य– जन्म प्राप्त करके भक्ति को पहचानने का सुयोग मिला है। इस समय हिम्मत हारना उचित नही है। बहुत से लोग यह सोचकर कि गृहस्थ–अवस्था मे आत्मकल्याण नहीं हो सकता, उत्साहहीन हो जाते है और गृहस्थी को पापो का भडार समझ कर पापो मे डूबे रहते है। उनका ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है। गृहस्थ–अवस्था मे अगर कल्याण होना सम्भव न होता तो उपदेश देने की आवश्यकता ही क्यो होती ? अतएव ससार बाधक है, ऐसा विचार मत करो।

दो मल्ल अखाडे मे लडते है। उनमे से एक जीतता हे ओर दूसरा हारता है। परन्तु हारने वाला मल्ल भागता नही हे। वह सोचता है–आज मेंने पछाड खाई है तो आगे मै इसे पछाडूगा। इसी प्रकार का विचार आप करो। ससार से डर कर मत भागो। बहुतो ने ससार मे रहकर कल्याण किया हे। भावना को शुद्ध बनाने का निरन्तर प्रयत्न करते रहो तो आपका भी कल्याण हो सकता है।

आप यह न समझे कि साधु इस ससार मे अखाडे से पृथक् हे। साधु–अवस्था मे भी अगर काम आदि का हमला न होता तो कई–एक साधु साधुता से पतित क्यो हो जाते ? राजीमती को देख रथनेमि कामवश होकर पतित हो ही गये थे। मगर राजीमती ने उन्हे सम्भाल लिया। राजीमती के उपदेश को सुनकर वह रास्ते पर आये थे अन्यथा उनके पतित होने मे कमी क्या रह गई थी ? भाइयो ! हमले तो होते ही रहेगे। इन हमलो से हिम्मत न हारो वल्कि अधिक हिम्मत करके डटकर उनका सामना करो ओर सोचो कि हम भी हमला करने वालो पर हमला करेगे ओर आज नही तो कल उन्हे पछाड देगे।

शास्त्र मे कहा है कि आत्मा मे औदयिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है। क्षायोपशमिक भाव को बढाने से अवश्य ही विषय–कषाय पर विजय पाप्त हो सकती है।

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुद्धि निर्मल होइ जाय रे जीवा।

अरे जीव! विमलनाथ भगवान् की सेवा कर। विमलनाथ भगवान् की सेवा करने से तेरी बुद्धि निर्मल हो जायेगी।

विमलनाथ भगवान् का नाम जपने और उनके शरण मे जाने से जब बुद्धि निर्मल हो जाती है तब विषय–कषाय को जीतना सरल हो जाता है। विमलनाथ भगवान् के नाम मे ऐसी महिमा है।

तेरहवे तीर्थंकर का नाम विमलनाथ क्यो है, यह देखना चाहिए। आप जानते है कि कोई–कोई नाम गुण के अनुसार होते है कि कोई–कोई रूढि के पोषक होते है। कोई नाम सिर्फ व्यवहार के लिए होता है और किसी नाम मे उनके अनुसार गुण भी रहता है। लेकिन बिना नाम के ससार मे कोई किसी को ठीक तरह पहचान नही सकता। आपको किसी से एक लाख रुपया लेना है। अगर आप उसका नाम नही जानते तो किससे रुपया मागेगे बिना नाम जाने हथेली की चीज भी यथावत् नही पहचानी जाती।

नाम बिन जाने, करतल गत नहि परत पिछाने।

मान लीजिए किसी सेठ की लडकी की सगाई दूसरे सेठ के लडके के साथ हुई। वर और कन्या दोनो अलग–अलग देश मे है। एक ने दूसरे को नही देखा है। कार्यवश वर, कन्या के ग्राम मे गया और किसी बगीचे मे ठहरा। सयोगवश वह कन्या भी उस बगीचे मे आई। अब दोनो एक दूसरे को देखते हे फिर भी किसी ने किसी को नही पहचाना। यहा न पहचानने का कारण क्या है!

नाम मालूम नही!

नाम मालूम न होने से एक दूसरे को न पहचान सका। इतने मे किसी तीसरे ने आकर दोनो को एक दूसरे का नाम बतला दिया। दोनो के भावो मे कैसा परिवर्तन हो जायेगा । दोनो के भाव बदल जाएगे। दोनो लज्जित हो जाएगे।

यह दृष्टात इसलिए दिया गया है कि आप नाम के महत्त्व को समझ सके। जो नाम केवल रूढि पर अवलबित है उनमे भी जब इतना प्रभाव ह तो जिस नाम मे यथार्थ गुण है उस नाम का प्रभाव कितना होना चाहिए ?

भगवान् विमलनाथ का नाम रूढ नही हे उन्होने गर्भ मे आते ही माता की बुद्धि और जन्म लेते ही जगत् की बुद्धि निर्मल कर दी थी। इससे उनका नाम विमलनाथ हुआ। आप अपनी बुद्धि को निर्मल बनाना चाहते हो तो भगवान् विमलनाथ का स्मरण करे। विमलनाथ का स्मरण करने से आपकी बुद्धि निर्मल हो जायेगी आपके अन्त करण मे भी निर्मलता आ जायेगी और फिर सम्पूर्ण आत्मा की विशुद्धि हो जायेगी।

(ख)

रे जीवा! विमल जिनेश्वर सेविये।

भगवान् विमलनाथ की यह प्रार्थना हे। परमात्मा की सच्ची प्रार्थना करने वालो के हृदय मे जब भावोद्रेक होता है ओर अन्य जीवो के कल्याण की कामना उद्भूत होती है तब वह अपनी प्रार्थना को शब्दो के साचे मे ढाल देते हैं अथवा यो कहना चाहिए कि भावना जब बहुत प्रबल हो उठती है तो वह शब्दो के रूप मे बाहर फूट पडती है और उससे असख्य प्राणियो का हित हो जाता है।

यह कहना कठिन है कि सब प्रार्थना करने वालो के मन मे क्या है लेकिन बाहर प्रकट किए हुए भावो से जो अनुमान होता है, वह यही कि उनके मन मे अभी अच्छे ही भाव होगे और हृदय मे ज्योति होगी। चाहे उनके शब्द चमत्कार–जनक न हो, उनकी भाषा मे शाब्दिक सौन्दर्य न हो और छन्दशास्त्र का भी उन्होने अनुसरण न किया हो फिर भी उनके भाव अनूठे होते हैं। वे कहते है–

प्रभो! मेरे हृदय मे जो प्रेम है वह या तो मै जानता हू या तू जानता है। इस प्रकार निरपेक्ष भाव से अनन्य प्रेम से जो प्रार्थना की जाती हे, उसमे गजब की शक्ति होती हे।

परमात्मा की प्रार्थना की व्याख्या करना सुवर्ण का सिगार करने के समान है फिर भी कुछ न कुछ करना ही होता हे। सुवर्ण मे सोन्दर्य तो स्वाभाविक हे, लेकिन उसे उपयोगी बनाने के लिए सुनार को उसके गहने बनाने ही पडते हें। फूल मे सुगन्ध सोन्दर्य ओर सुकुमारता स्वाभाविक हे फिर भी मालाकार उसे हार मे गूथता हे। इसी प्रकार प्रार्थना स्वय सुन्दर हे–गुणसम्पन्न हे लेकिन उसे सबके लिए उपयोगी बनाने की दृष्टि से कुछ कहना पडता हे।

प्रार्थना की जो कडिया बोली गई हे उनमे अपने पूर्व चरित्र का वर्णन आया हे। उनमे यह बतलाया गया हे कि हे आत्मा! तुझे देखना चाहिए

कि पहले तू कौन थी, और अब कहा आयी है, अब तेरा कैसा विकास हुआ है तू किस दर्जे पर चढी है ? धीरे–धीरे तू ऊची चढ गयी है। अब जरा विशेष सावधान हो। ऐसा न हो कि शिखर के समीप पहुच कर फिर गिर पडे। ऊपर चढना तो अच्छा है, मगर उसी दशा मे जब नीचे न गिरो। ऊपर चढकर नीचे गिरने की दशा मे अधिक दु ख होता है।

हम लोग किस स्थिति से चलकर किस स्थिति पर पहुचे हैं यह बात अर्हन्त भगवान् ने बतलाई है और शास्त्र मे इसका उल्लेख है। शास्त्र गम्भीर है। सब लोग उसे नही समझ सकते। अतएव शास्त्र मे कही हुई वह बाते सरल भाषा मे, पार्थना की कडियो द्वारा प्रकट की गई है। लोक मे बलवान् की खुराक कुछ और होती है तथा निर्बल की खुराक और ही। निर्बल को उसी के अनुरूप खुराक दी जाती है। प्रार्थना मे वही बात सरल करके बतलाई गई है, जो भगवान् ने गौतम स्वामी से कही थी, जिससे सब सरलतापूर्वक समझ ले।

अपनी पुरातन स्थिति पर विचार करो कि अपनी स्थिति पहले कैसी थी? प्रभो! मै पागलो से भी पागल था। अब मेरी आत्मा मे जो ज्ञान हुआ है, उससे मै समझ पाया हू कि मैने कितनी स्थितिया पार की है और अब इस स्थिति मे आया हू। एक समय मे मै निगोद मे निवास करता था, निगोद मे ऐसे–ऐसे जीव है जो आज तक कभी एकेन्द्रिय पर्याय छोडकर द्वीन्द्रिय पर्याय भी नही पा सके है।

मित्रो! अपनी पूर्वावस्था पर विचार करो। इससे अनेक लाभ होगे। प्रथम यह है कि आपको अपनी विकासशील शक्ति पर भरोसा होगा और दूसरे आप अपनी मौजूदा स्थिति का महत्त्व भलीभाति समझ सकेगे। तीसरे पूर्वावस्था पर विचार किये बिना परमात्मा की प्रार्थना भी यथावत नही हो सकती। आप यह न समझ लो कि हम पहले कही नही थे और मा के पेट से नये ही उत्पन्न हो गये है। आप अपनी अनादि और अनन्त सत्ता पर ध्यान दीजिये।

हे आत्मन! तेरा ननिहाल निगोद मे है। तेरे साथ जन्मने और मरने वाले तेरे अनेक साथी अब तक भी वहा है। लेकिन न जाने किस पुण्य के प्रताप से तू इस अवस्था से बढते–बढते यहा तक आ पहुचा है। एक वह दिन भी था जब एक समय मे अठारह बार जन्मना–मरना पडता था मगर कोन–सी स्थिति जागी ओर कैसे क्या हुआ कि तेरा उत्थान हो गया ज्ञानी ही जानते हे। तथापि तेरा महान उत्थान हुआ हे ओर तू इस स्थिति पर आ पहुचा

हे कि तुझे विवेक की प्राप्ति हुई हे—ज्ञान मिला हे। फिर क्या यहा से नीचे जायेगा ? अगर ऐसा हो तो ज्ञान की प्रशसा की जाये या अज्ञान की, अतएव तुझे देखना चाहिए कि ज्ञान पाकर तू क्या करता हे। तू अपनी असलियत को—स्वरूप को भूल रहा है और वाहियात वस्तुओ का लालची बन रहा हे। किसी समय निगोद का निवासी तू विकास पाते—पाते यहा तक आया हे। तुझे मानव शरीर मिला है, जो ससार का समस्त वेभव देने पर भी नही मिल सकता। सम्पूर्ण ससार की विभूति एकत्र की जाये और उसके बदले यह स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाये तो क्या ऐसा होना सम्भव हे ? नही। त्रैलोक्य के राज्य के बदले भी कोई एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रिय नही बन सकता। इतनी अनमोल स्थिति तुझे मिली है। इस स्थिति की महिमा समझ और ऐसा प्रयत्न कर कि अब पीछे लौटने का समय न आवे। साथ ही अपनी उस पहली स्थिति को भी स्मरण रख, जिसके विषय मे कहा जाता है

काल अनन्ता तिहां रह्यो, ते दुखआगमथी सम्हाल रे जीवा!

काल की गिनती करना भी असम्भव है, जो अनन्त कहलाता है, उतने काल तक तू वहा रहा। फिर उसे आज केसे भूल रहा है ? उस पर विचार क्यो नही करता ? ओर आगे ही आगे बढने का दृढ सकल्प और कार्य करने मे किसलिए हिचक रहा है ?

प्रश्न हो सकता है—अगर वह काल अनन्त था तो उसका अन्त केसे आ गया? उत्तर यह है कि एक अनन्त तो ऐसा होता है कि जिसका अन्त कभी आ ही नही सकता, दूसरे अनन्त का अन्त तो आ जाता हे,लेकिन अन्त कब आएगा, यह बात ज्ञानी ही जानते हे। एक अनन्त वह भी हे, जिसका अन्त आता है फिर भी उनकी प्रचुरता के कारण गिनती नही हो सकती है। दात की चूडी को सभी देखते हे, लेकिन यह नही बतलाया जा सकता कि उसका मुह कहा हे ? उसके आरम्भ ओर अन्त का पता नही लगता। इसी प्रकार उस काल को ज्ञानियो ने तो देखा था, लेकिन उसकी गणना नही होने के कारण उसे अनन्त कहा हे।

हे जीव! उस निगोद के निविडतर अन्धकार से परिपूर्ण कारागार मे न मालूम किस भवस्थिति का उदय हुआ, जिससे तू साधारण निगोद से निकल कर प्रत्येक मे आया। उसके बाद फिर पुण्य मे वृद्धि हुई और तू एकेन्द्रिय दशा त्याग कर द्वीन्द्रिय दशा प्राप्त कर सका। तत्पश्चात क्रमश अनन्त पुण्य की वृद्धि होने पर तू मनुष्य हुआ। अनन्त पुण्य के प्रभाव से मनुष्य होने पर तुझे जो जीभ मिली उसे तू किस काम मे लगा रहा हे ? उसके द्वारा

तू क्या फल ले रहा है ? क्या यह भाग्यशालिनी जिह्वा तुझे परनिन्दा, मिथ्याभाषण कटुवचन अथवा उत्पात करने–कराने के लिए मिली है ? अगर नही, तो क्या तुझसे यह आशा करू कि तू झूठ नही बोलेगा।

लोगो मे आज दया का जितना विचार है, उतना सत्य का विचार नही है, सत्य की ओर ध्यान देने की बडी आवश्यकता है।

आपको एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि अनन्त पर्याये पार करने के पश्चात् मनुष्य भव मिला है। अपना अहोभाग्य समझिए कि आप श्रेष्ठ धर्म और उसके उपदेशक त्यागी गुरु भी प्राप्त कर सके है। मगर इसकी प्राप्ति का लाभ क्या है? यही कि जो कुछ मिला है उसे अच्छे काम मे लगाया जाये। बुरे काम मे न लगाया जाये। असत्य न बोले, किसी को बुरी नजर से न देखे, किसी की निदा–बुराई न सुने। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय को बुरे काम से बचा कर परमात्मा की प्रार्थना मे लगा दिया जाये तो मनुष्य–जन्म सफल हो सकता है। इसीलिए कहा है– विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुद्धि निर्मल हो जाये रे जीवा। विषय–विकार निवारने, तू तो मोहनी कर्म खपाय रे जीव।।।1।।

रे चिदानन्द! अब देखता क्या है ? जिस प्रभु ने तुझे तेरी भवस्थिति बतलाई है, उसकी सेवा मे तन्मय हो जा। उसकी सेवा से तुझे क्या मिलेगा? ससार के लोगो की यह हालत है कि किसी भी काम मे लोभ या भय के बिना प्रवृत्त नही होते। विचार करो कि जो भवस्थिति तूने सुनी है, उससे बडा भय या लाभ और क्या हो सकता है ? भय यह है कि कही ऊची स्थिति से गिरकर नीची स्थिति मे न पड जाऊ। इस प्रकार का भय रखने से तुझमे परमात्मा की सेवा करने की रुचि उत्पन्न होगी। यही बडा लाभ है।

14. श्री अनन्तनाथ जी

प्रार्थना

अनन्त जिनेश्वर नित नमूं, अद्भुत जोत अलेख।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख।।1।।
सूक्षम थी सूक्षम प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप।
पवन शब्द आकाशथी, सूक्षम ज्ञान सरूप।।2।।
सकल पदार्थ चिन्तवूं, जे–जे सूक्षम होय।
तिणथी तू सूखम महा, तो सम अवर न कोय।।3।।
कवि पण्डित कही–कही थके, आगम अरथ विचार।
तो पण तुम अनुभव तिको, न सके रसना उचार।।4।।
आप भणे मुख सरस्वती, देवी आपो आप।
कही न सके प्रभु तुम सत्ता, अलख अजल्पा जाप।।5।।
मन बुधि वाणी तो विषे, पहुंचे नही लगार।
साक्षी लोकालोकनी, निर्विकल्प निर्विकार।।6।।
मा 'सुजसा' सिंहरथ' पिता, तस सुत 'अनन्त' जिनन्द।
'विनयचन्द' अब ओलख्यो, साहिब सहजानन्द।।7।।

आज सर्वव्यापी परमात्मा के विषय मे कुछ कहना चाहता हू। जिन शव्दो मे इस विषय को कहना ओर निश्चय करना चाहिए उन शव्दो मे कहना ओर निश्चय करना कठिन हे। उन शव्दो मे आपका समझना भी मुश्किल हे। फिर भी यथाशक्ति कहने ओर समझने का प्रयत्न करना ही योग्य हे।

परमात्मा की सत्ता ओर महत्ता को पहिचान लेने पर सारे ससार के सुख ओर वेभव तुच्छ हें। जो ऐसा समझेगा अर्थात परमात्मा की सत्ता के आगे सासारिक सुखो को तुच्छ जानेगा उसी की गति परमात्मा की ओर होगी।

प्रार्थना मे कहा हे– अनन्त जिनेश्वर नित नमू।

यहा आप कह सकते है कि जब तक परमात्मा के स्वरूप को पहचान न ले तब तक उन्हे नमस्कार कैसे करे? साधु को तो वेष से पहचान कर नमस्कार करते है, पर परमात्मा को कैसे पहचाने ? और पहचाने बिना नमस्कार कैसे करे ? अगर बिना पहचाने नमस्कार कर भी लिया तो उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? ऐसा करने पर वास्तविक प्रीति तो नही हो सकती।

मै आपसे कह चुका हू–

यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या।।

जब तक हृदय मे चाह न हो और सिर्फ ऊपर से किसी शुभ काम को किया जाये तो उसका यथेष्ट फल नही होता। अतएव जब तक परमात्मा को पहचान न लिया जाये, परमात्मा के प्रति भावना उत्पन्न न हो जाये तब तक उसे नमन करना भी विशेष लाभदायक नही। अतएव परमात्मा को पहचान लिया तो फिर वह नही भूलेगा। एक बार हृदय मे वह घुस गया तो फिर नही निकलेगा। मगर परमात्मा कैसे जाये।

रत्न की परीक्षा एकदम कोई नही सीख सकता। जो जौहरी की दुकान पर बैठा करता है कभी न कभी रत्न परीक्षक हो ही जाता है। लोग पहले–पहले जब व्यापारिक क्षेत्र मे प्रवेश करते है तभी व्यापार को नही समझ लेते। धीरे–धीरे अनुभव प्राप्त करके ही निष्णात बनते है। तात्पर्य यह हे कि जैसे व्यावहारिक बाते साधना से सीखी जाती है, वैसे ही परमात्मा की पहचान भी साधना से ही हो सकती है। साधना बडी चीज है। आप बचपन मे ऐसी पगडी और धोती बाधना नही जानते थे, लेकिन अभ्यास करते–करते साधना द्वारा अच्छी पगडी बाधना और धोती पहनना सीख गये है। इसी प्रकार परमात्मा से प्रेम करने की साधना करो, उसके लिए उद्योग करो तो उसका स्वरूप पहचान लेना असम्भव नही रहेगा।

अनन्त जिनेश्वर नित नमू, अद्‌भुत ज्योति अलेख।
ना कहिए ना देखिये, जाके रूप न रेख।। अनन्त।।

उस परमात्मा की ज्योति ऐसी अद्‌भुत है जो मुख से कही न जा सकती और आख से देखी नही जा सकती। उसका न कोई रूप हे न रेखा हे उसको नमस्कार कर।

अव आप सोचेगे कि हम तो और भी चक्कर मे पड गये ! जिसकी कोई रूप– रेखा नही हे उसे किस प्रकार पहचाना जाये।

मित्रो ! शका करने की कोई बात नही हे। हृदय प्रसन्न करने वाली चीज रूप–रग वाली नही होती। रूप–रग वाली चीज नाशवान हे आर जिसमे

रूप–रग नही हे वह अविनाशी हे। नाशवान चीज हृदय को प्रसन्नता नही पहुचा सकती इसलिए अविनाशी से प्रीति करो। अविनाशी से प्रेम करोगे तो कल्याण होगा।

सकल पदारथ चितवू, जे जे सूक्षम होय।
ते थी तू सूक्षम महा, तो सम अवर न कोय।।

ससार के समस्त सूक्ष्म पदार्थों पर अगर में विचार करू तो सव से सूक्ष्म तू ही मिलेगा। तेरे समान सूक्ष्म ओर कोई नही हे।

शरीर मे आख, कान, नाक आदि दिखाई देते हे, पर क्या श्वास दिखता है ?

'नही !'

अर्थात् श्वास इन स्थूल इन्द्रियो से सूक्ष्म हे। अव इनमे अधिक प्रिय कोन है ?

'श्वास !'

क्योकि श्वास के विना आख, कान आदि कुछ भी नही कर सकते। तो जिस तरह श्वास दिखता नहीं हे फिर भी उसे प्यार करते हो उसी प्रकार अदृश्य परमात्मा को भी प्यार करो। उससे प्रार्थना करो–हे प्रभु ! जेसे श्वास के चले जाने पर शरीर वेकाम रह जाता हे उसी तरह तुझे भूलने से यह ससार मुर्दा हे। इसमे अगर तू न रहे तो यह किसी काम का नही।

आप श्वास की करामात समझते हैं। यद्यपि श्वास सूक्ष्म हे तथापि सव उसी का खेल हे। उसी सूक्ष्म पर स्थूल टिका हे। श्वास अगर स्थूल शरीर से पृथक् हो जाये तो सव स्थूल सूक्ष्म इन्द्रिया मुर्दा हो जाए। इससे निश्चय हुआ कि स्थूल सूक्ष्म के विना नही टिक सकता।

अव जरा आगे चलिए। सोचिए कि श्वास को श्वास के रूप मे पहचानने वाला कोन हे? श्वास के इस महत्त्व को कोन समझता हे?

'ज्ञान !

में सुखी हू या दु खी हू, श्वास चलता हे या नही चलता यह सव वाते पहचानने वाला ज्ञान हे। ज्ञान न हो तो जीने ओर मरने मे क्या अन्तर रह जाये ?

जो ज्ञान श्वास से भी सूक्ष्म हे। श्वास तो क्रिया से भी जाना जा सकता हे पर ज्ञान आत्मा से ही जानने योग्य हे। ज्ञान को देखने या जानने के लिए दूसरी चीज की आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान के लिए ज्ञान ही प्रमाण ह। जिस प्रकार सूर्य का दखने के लिए दीपक आदि की आवश्यकता नही

होती, उसी प्रकार ज्ञान को देखने के लिए किसी और चीज की आवश्यकता नही है। ज्ञान के लिए किसी और से पूछना मूर्खता है।

जैसे श्वास से सूक्ष्म ज्ञान है वैसे ही सूक्ष्म परमात्मा है। कहा—

सूक्षम से सूक्षम प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप।
पवन शब्द आकाशथी, सूक्षम ज्ञान—स्वरूप।

अतएव जिस पकार तुम ज्ञान को जानते और मानते हो, उसी प्रकार ईश्वर को मानो। ईश्वर अनन्तज्ञानी है। जैसे ज्ञान अपने हृदय की सब बाते जानता है, उसी तरह परमात्मा ससार की सब बाते जानता है, कोई बात उससे छिपी नही। वह अनन्त ज्ञान का प्रकाशमय पुञ्ज है।

मित्रो ! यदि मनुष्य ईश्वर के इस रूप को जान ले तो कदापि कपट न करे। जो यह बात समझ जायेगा कि ईश्वर सब जगह देखता है और सब कुछ जानता है, उसे कपट करने की इच्छा ही नही होगी। जो ईश्वर की सत्ता को जानता है वह साफ कह देगा कि मुझसे कपट न होगा। आपको ऐसा ज्ञान हो जाये तो अज्ञान का पर्दा हट जायेगा और परम शाति प्राप्त होगी। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर आप स्वय कहने लगेगे कि 'भगवान्! तुझे रिझाकर तेरी भक्ति करके मै यही चाहता हू कि मुझे शाति प्राप्त हो। तुझे पहचान लेने पर, तेरी भक्ति करने पर मुझे किसी वस्तु की कमी नही रह जायेगी।'

(ख)

अनन्त जिनेश्वर नित नमू।

कवि ने भगवान् अनन्तनाथ की प्रार्थना की है। यह केवल कल्पना नही है किन्तु इस प्रार्थना मे भगवान् का यथार्थ स्वरूप बतलाया गया है। परमात्मा का स्वरूप और उस स्वरूप का विचार अगाध है। अनायास वह समझ मे नही आ सकता। बहुत से लोग कहते है कि आज भगवान् का विरह है। वह सीमधर स्वामी तेरह करोड कोस दूर महाविदेह क्षेत्र मे विराजमान है। इतनी दूर होने से इस शरीर और इस जिन्दगी से उनसे भेट कैसे हो ? ऐसा सोचकर वे ईश्वर का बोध नही लेते और ईश्वर का बोध न लेने से पाप से बचने की उन्हे छाया नही मिलती।

परमात्मा का बोध कराने से पहले मे यह पूछना चाहता हू कि आप परमात्मा को क्यो चाहते हे ?

आत्मा की शुद्धि के लिए ?

तो यह मालूम हुआ कि आत्मा अशुद्ध है और उसकी शुद्धि के लिए परमात्मा की जरूरत है। पर आपने आत्म शुद्धि के संबंध मे कुछ विचार भी किया है या यो ही परमात्मा को चाहते हैं ?

अक्सर लोग कहते हैं कि आत्मा की शुद्धि के लिए ही हम परमात्मा को चाहते हैं परंतु वे अपने अंतःकरण को टटोले तो उनमे से बहुतो की कामना निराली–निराली होगी। कई लोग साधु होने पर भी दिखावे के लिए परमात्मा का भजन करते हैं। कोई निस्सन्तान होने से पुत्र की प्राप्ति के लिए, कई निर्धन होने से धन पाने के लिए, दूसरो के सामने अपनी प्रमाणिकता प्रकट करने के लिए और कई इस डर से कि चार आदमियो मे बैठकर भगवान् का भजन न करेगे तो नास्तिक समझे जाएगे, परमात्मा का भजन करते हैं। ऐसे लोगो मे क्या आत्मशुद्धि के लिए परमात्मा को भजने का भाव रहा।

'नहीं।'

जो आत्मा की शुद्धि के लिए परमात्मा को भजेगा, उसे पहले परमात्मा और आत्मा का स्वरूप तथा दोनो का संबंध समझ लेना होगा। उसके बाद यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि परमात्मा से भेट किस प्रकार हो सकती है? वास्तव मे परमात्मा बहुत समीप है परंतु स्वरूप को न समझने से वह दूर मालूम होते हैं। परमात्मा का स्वरूप समझने के लिए पहले जो वस्तुए प्रतिदिन आपके समय मे आती हैं, उनसे पूछताछ कर लेनी चाहिए। प्रतिदिन काम मे आने वाली प्रथम तो इंद्रिया है फिर मन है फिर बुद्धि और फिर आत्मा या ज्ञान है। इस प्रकार पहले इंद्रियो से पूछना चाहिए।

स्पर्शेन्द्रिय सिर्फ स्पर्श को जानती है। यह वस्तु ठण्डी है या गर्म हल्की है या भारी, कोमल है या कठोर चिकनी है या रूखी यहाँ तक इसकी सीमा है। तो क्या परमात्मा हल्का–भारी आदि है ?

'नही।

अर्थात परमात्मा इन आठो स्वभावो से रहित है। अन्य शास्त्र भी कहते हैं–

अणोरणीयान महतो महीयान इत्यादि।

अर्थात यह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से भी स्थूल है पर उसमे हल्कापन या भारीपन नही है। तब स्पर्श इन्द्रिय उसे कैसे पहचानेगी?

आगे चलकर जीभ से पूछा–तेरे से भगवान का मिलाऊ तो तू पहचान लेगी? जीभ ने उत्तर दिया–परमात्मा खट्टा–मीठा होगा तो पहचान लूगी। नहीं तो कैसे पहचानूगी ? पर क्या परमात्मा खट्टा–मीठा है ?

नही ।

इस पकार दो इद्रियो से जबाब मिल जाने पर तीसरी इद्रिय नाक के पास पहुचे। उसने उत्तर दिया–मेरा काम सुगध और दुर्गध की पहचान है। क्या भगवान सुगन्धित अथवा दुर्गन्धित है?

'नही ।

चलो, नाक से भी साफ उत्तर मिल गया। अब आख के पास आकर पूछा–दूर–दूर तक देखती है तो क्या परमात्मा को भी देख सकती है? आख ने कहा– अगर परमात्मा काला, पीला, नीला, हरा या लाल हो तो मै बतला दू। मगर क्या परमात्मा उपर्युक्त रगो वाला है?

'नही ।

चलो, आखो से भी छुट्टी मिली। अब रह गया कान। कान से कहा–भाई, तू ही जरा अनन्तनाथ भगवान् का पता बता। तब कान कहता है–मै केवल शब्द सुन सकता हू। पर परमात्मा क्या शब्द है ?

नही ।'

तब इन इन्द्रियो से परमात्मा का पता लगना सम्भव नही है। ऐसा सोचना कि परमात्मा का पता इन्द्रिया लगाएगी, वृथा है। जब वहा तक इनकी पहुच ही नही है तो यह उसे कैसे पहचान सकेगी ? ऐसी स्थिति मे जो लोग यह कहते है कि परमात्मा दीखता नही है, इसलिए उसकी सत्ता भी नही है, उनका कथन मिथ्या है, दम्भ है। उन्होने ऐसा कहकर लोगो को भ्रम मे डाल रक्खा है।

इन्द्रियो से निराश होकर मन के पास पहुचे। मन से कहा–तेरी गति सर्वत्र मानी जाती है। तू बहुत तेज दौडता है। क्षण मे स्वर्ग मे तो दूसरे क्षण पाताल मे जा सकता है। तू सूक्ष्म है। तेरी गति मे कोई रुकावट नही डाल सकता। तू तो अनन्तनाथ भगवान् का पता दे । मन बेचारा गया दूर तक गया और उसने लौटकर उत्तर दिया–मै वहा तक तो नही पहुच सकता। मेरी गति वहा तक नही है।

मन बुद्धि वाणी तो विषे, पहुचे नाहि लिगार।
साक्षी लोकालोक नो, निर्विकल्प निरविकार।। अनन्त।।

अर्थात्–हे प्रभो! मन, बुद्धि और वाणी तेरे पास तक नही पहुच सकते।

मन इन्द्रियो द्वारा जाने हुए पदार्थो को ही ग्रहण करता ह आर परमात्मा इन्द्रियो का अगोचर है। ऐसी स्थिति मे वह परमात्मा को जान ही नही सकता।

मन से निराश होकर बुद्धि के घर आते हे ओर उससे परमात्मा के विषय मे जानना चाहते है तो वह भी टका–सा जवाब दे देती हे। वह इतनी मन्द है कि ससार के तर्क–वितर्को मे ही पडी रहती है। उसे परमात्मा का क्या पता ? सूत्र मे कहा है –

तक्का तत्थ न विज्जइ। मई तत्थ न गाहिया।

–श्री आचाराग सूत्र–

उस परम तत्त्व तक तर्क नही पहुचता ओर मति भी वहा प्रवेश नही करती। वह परम तत्त्व तर्क और बुद्धि से परे है।

आप कहेगे–तब तो परमात्मा को समझना और भी कठिन हो गया। मगर मै कहता हू– कठिन नही, सरल हो गया। मै पूछता हू– इन्द्रियो से, मन से और बुद्धि से काम लेने वाला कौन है ?

'आत्मा।'

इन सबको चलाने वाली आत्मा–जो इस शरीर मे विराजमान है–इसका और भगवान् अनन्तनाथ का स्वरूप एक है। तुम भ्रम मे क्यो पडते हो ?

फिर उससे मिलन कैसे हो ? आप अपनी बुद्धि को, मन को और इन्द्रियो को अलग करके आत्मा और परमात्मा के एकत्व का सुदृढ सकल्प कीजिये। परमात्मा अवश्य मिल जायेगा।

इतने विवेचन से यह तो सिद्ध हुआ कि परमात्मा, आत्मा के द्वारा ही मिल सकता है, इन्द्रियो या मन से नही।

इन्द्रियो को अलग कर देने का अभिप्राय यह नही हे कि आखे फोड ली जाए या कान वद कर दिये जाए। इन इन्द्रियो के बहकावे मे न आना ही इन्द्रियो को अलग कर देना हे। इन्द्रिया किस प्रकार बहकाती हैं यह समझ लीजिए।

आप इन्द्रियो के स्वामी हैं या दास हैं ? आप भले चुप हो, मगर उत्तर देगे तो यही देगे हम स्वामी है। अगर आप इन्द्रियो के सचमुच स्वामी हैं तो जीभ से कहिए कि तू परमात्मा का भजन किया कर। कान से कहिए तू परमात्मा का भजन सुन। मन से कह दीजिए कि तू इद्रियो को वहका मत।

वेचारी इन्द्रिया भी क्या करे ? उनको बहकाने वाला भी तो मन हे। अगर आप कहते हे कि–हा बात बुरी हे। हम जानते है, किन्तु छूटती नही। तो आप मन के गुलाम ही हुए न ? तुम मन के स्वामी हो या मन तुम्हारा स्वामी हे अव यह विचार कर देखो। इस सम्बन्ध मे एक दृष्टात लीजिए –

किसी बादशाह के पास एक दिलखुश गुलाम था। बादशाह को हमेशा खुश रखना उसका काम था। गुलाम ने बादशाह को ऐसा मोहित किया कि बादशाह उसी के अधीन हो गया। गुलाम समझ गया कि बादशाह मेरे अधीन हो गया है। मै इसे जैसा नचाऊगा यह नाचेगा। यह विचार कर गुलाम एक दिन रूठ गया। भक्त तुकाराम ने कहा

रूसला गुलाम, घणी करितो, सलाम।
त्याला पै तारचा चे काम, अधमा सी अधम।

अधम से अधम गुलाम के रूसने पर बादशाह उसे सलाम करे तो हम लोग उसकी आलोचना करे या नही?

हा।'

बादशाह उस दिलखुश गुलाम को मनाने गया। गुलाम बादशाह को आया देख और अधिक रूठ गया। बादशाह कहने लगा—बेटा, प्यारे, तू नाराज क्यो है ? मै तुझे रूठा नही देख सकता। तू जो कहे, देने को तैयार हू।

गुलाम ने सोचा—रूठने से मान बढता है। वह और ज्यादा रूठ गया। बादशाह ने उसे अपनी गोद मे बिठलाया और अपने गले का कठा उसके गले मे पहना दिया। फिर कहा—जा, अमुक—अमुक गाव जागीरी मे देकर तुझे नवाब बनाया। गुलाम ने विचार किया—इतना रूठने से नवाब बन गया तो थोडा और रूठने पर शायद बादशाह बन जाऊगा।

इस प्रकार बादशाह गुलाम को समझा रहा है और गुलाम अकडता ही जा रहा है। उधर वजीर जब दरबार मे आया तो उसने तख्त खाली देखकर किसी सरदार से बादशाह के विषय मे पूछा। उसे मालूम हुआ कि बादशाह सलामत गुलाम को मनाने गये है। वजीर को बादशाह की बुद्धि पर तरस आयी और वह बादशाह के पास पहुचा। बादशाह ने वजीर से कहा—देखो यह रूठ गया है। मैने जागीर देने तक के लिए कह दिया फिर भी यह राजी नही होता।

वजीर बोला—बादशाह सलामत यह जिस बात से समझने वाला हे वह बात मुझे मालूम हे। आप चलकर तख्त पर बेठिये। मे इसे अभी समझाये देता हू। यह अभी खुश हो जाएगा और आपके पेरो मे पडेगा।

गुलाम मन ही मन कहने लगा—चला हे मुझे समझाने ! मे समझूगा ही नही। देखे यह क्या करता हे।

बादशाह चला गया। इधर वजीर ने हाथ मे कोडा लेकर कहा—बोल समझता हे कि नही ? मगर गुलाम तो गुलाम ही ठहरा। जब बादशाह स ही

न समझा तो सीधी तरह वजीर से कव समझने वाला था ? जब वजीर ने देखा कि यह यो न मानेगा तो उसने कोडे फटकारने शुरू किये। वजीर कोडा मारता जाता था और कहता जाता था कि खुश हो खुश हो। खबरदार जो रोया ! तू खुश होकर बादशाह के पास चल ओर उनसे कह दे कि मैं खुश हू।

कोडे खाकर गुलाम की अक्ल ठिकाने आ गई। वह बादशाह के पास दौडकर गया और कहने लगा–मैं खुश हू।

बादशाह ने वजीर की प्रशसा करके पूछा–तुमने इसे क्या दिया?

वजीर– इसे जिस चीज की आवश्यकता थी वही।

बादशाह–उसका कुछ नाम भी तो होगा ?

वजीर– यह गुलाम हैं खुशामद करने से सिर चढते और विगडते हैं। उन्हे कोडो की जरूरत रहती है। कोडे देने से यह खुश हो गया।

बादशाह–दरअसल मैने गल्ती की थी।

आप यह तो समझ गये होगे कि गुलाम के रूठने पर बादशाह को उसे मनाने की आवश्यकता नही थी। मगर इस दृष्टात के असली आशय पर आप ध्यान दीजिए। आपका मन आपका गुलाम है और आप बादशाह है। यह मन आपको सलाम करे या आप मन को सलाम करे? कोन किसके आगे घुटना टेके ?

मराठी भाषा मे जो कविता कही थी, उसका अर्थ समझने को बहुत समय की आवश्यकता है। सिर्फ इतना कहना चाहता हू कि आप मन के गुलाम बनकर सुख–चैन चाहते हे। आपसे रग–रगीले वस्त्रो की ओर बीडी–सिगरेट आदि की भी गुलामी नही छूटती है। आखिर इस गुलामी को कहा तक भुगतोगे, कुछ पता हे ? बीडी पीने से ताकत आती हे? देश या समाज का कुछ भला होता हे ? आप कहेगे–नही न? अगर आज बीडी पीने का त्याग करने की हिम्मत करो तो मे समझूगा कि मन की थोडी–सी गुलामी तो छोडी !

बहुत–से श्रोताओ ने हाथ ऊचे करके बीडी पीने का त्याग करने की सूचना दी।

मित्रो ! ऐसी बाते छोटी मालूम होती हे पर गहराई से विचार करो तो मालूम होगा कि यह आपकी कसोटी हे। जो पूरी तरह मन का गुलाम हे उसकी आत्मा किस प्रकार शुद्ध हो सकती हे? मन की गुलामी के कारण आज बोलने–चालने ओर खाने–पीने तक का भान नही रह गया हे। यह

खट्टे–मीठे और चरपरे बाजारू पदार्थ आप इसी गुलामी के वशीभूत होकर ही खाते है। उन्हे खाकर ब्रह्मचर्य का पालन कैसे किया जा सकता है? अगर आप स्वादो की गुलामी छोडे, तो मन की गुलामी छूटे और मन की गुलामी छूटे तो मन वशीभूत हो। मन वशीभूत हो तो आत्मा की पहिचान हो। अगर आप इतना कर लेगे तो परमात्मा को पहचानना तनिक भी कठिन न होगा। अपने आपको सही रूप मे पहचान लेना ही परमात्मा को पहचान लेना है। आपमे यह शक्ति आवे, यही मेरी शुभ कामना है।

15. श्री धर्मनाथ जी

प्रार्थना

धरम जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारो प्राण समान।
धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान।

वास्तव मे प्रेम के बिना कोई काम नही हो सकता। प्रेम के प्रभाव से कठिन से कठिन काम सरल हो जाते हैं और प्रेम के अभाव मे छोटा–सा काम भी पहाड सरीखा जान पडता है। प्रेम के बिना भक्ति मार्ग मे भी प्रवेश करना कठिन है। अतएव आज प्रेम के सम्बन्ध मे ही कुछ विचार प्रकट किये जाते हैं।

प्रेम ने ससार मे क्या–क्या क्रातिया की है इसने केसे–केसे विकट मार्गो को सरल बना दिया है, इसके उदाहरण कम नही हे। आधुनिक समय के भी ऐसे उदाहरण मिलेगे जिनसे प्रतीत होगा कि प्रेम के कारण कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाते हे।

एक अत्यन्त सुकुमार स्त्री का वन मे जाना क्या सरल कार्य हे?
'नही !'

परन्तु प्रेम के प्रभाव से वन को जाना भी उसे आनन्ददायक मालूम हुआ ओर घर मे रहना अग्नि मे रहने के समान जान पडा। राम को वन मे जाना आवश्यक था, बल्कि कोशल्या के कहने पर राम ने सीता को समझाया भी था कि तुम घर पर ही रहो। मगर सीता को राजप्रासाद अग्नि के समान असतोषजनक ओर वन स्वर्ग के समान सुखदायी प्रतीत हुआ।

प्रेम की लीला निराली हे। पर भोग की गन्दी प्रथा का नाम प्रेम नही हे। प्रेम एक अलोकिक वस्तु हे। जिसके हृदय मे प्रेम होता हे वह सुख को तिलाजलि दे देता हे ओर दु ख को प्रिय मानता हे। इसी कारण कवि ने कहा हे–

अद्‌भुत अनूप ऐसी यह प्रेम की कली है,
दुर्गम विपिन के कष्टो को इसने सुख बनाया।
दमयन्ती द्रौपदी ने सीता ने है लखाया,
सीने पै शैल सहकर सौमित्र ने बताया।
भाई के हेतु जिसने निज प्राण तन लगाया,
मिलती उसे सजीवनी क्या मौत की चली है।
अद्‌भुत अनूप ऐसी यह प्रेम की कली है।।

इस कविता पर पूरी तरह विचार किया जाये तो वह बहुत लम्बा होगा। इस समय सिर्फ इतना कहना ही पर्याप्त है कि इस प्रेम की कली ने वन के घोर दुखो को आनन्द की लहर के रूप मे परिणत कर दिया है। द्रौपदी, सीता, मदनरेखा और कमलावती को इसी कली ने मुग्ध बनाया था। उन पर पेम का रग छा गया था। इस कारण इन्हे सब दुख, सुख हो गये।

तात्पर्य यह है कि परमात्मा का नाम प्रेम से लेना चाहिए, बाजारू तौर से नही अर्थात् लौकिक स्वार्थ से नही। यह प्रेम अलौकिक वस्तु है। यह बाजारू भाव से नही मिल सकता। इसे वही पा सकता है जो शीश उतार कर रख सकता है।

प्रेम ने बाडी नीपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
शीश उतार्या जो मिले, दिल चाहे ले जाय।।

प्रेम न किसी बगीचे मे पैदा होता है और न बाजार मे बिकता है । नही प्रेम मे यह बात नही है। प्रेम केवल परीक्षा लेता है कि अगर तुझे अपने शरीर से मोह नही है तो मेरे पास आ। प्रेम सिर को काट कर पृथक् करने के लिए नही कहता है वह सिर्फ यही आदेश देता है कि तुम्हारे सिर पर पाप रूपी जो सुख है उसे उतार कर फेक दो। मैने अभी जो प्रार्थना की है वह समझने योग्य है।

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान।
कबहु न विसरू चितारू नही, सदा अखण्डित ध्यान।

अर्थात् मुझको और किसी चीज की जरूरत नही है केवल तू अखण्ड रूप से मेरे हृदय मे बस। हे धर्म जिनेश्वर! तेरा ध्यान कभी भग न हो। तेरी याद न भूल जाये इस तरह से मेरे हृदय मे तू बस। म यह नही चाहता कि तू केवल माला फेरने के समय मुझे याद आए। मे चाहता हू कि तेरा कभी स्मरण ही न करना पडे। जब तू कभी विस्मृत ही न होगा तो स्मरण करने की आवश्यकता ही नही रहेगी।

माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माय।
मनडा तो चहु दिशि फिरै, यह तो सुमिरन नांय।

माला कही फिर रही हे और मन कही फिर रहा है। पर ईश्वर इस प्रकार नहीं मिलता और न ईश्वर स्मरण ही कहला सकता हे।

भक्त कहते हे—जेसे, सासारिक जीवो की प्रीति ससार के पदार्थो पर होती है ऐसी ही प्रीति मैं तुझ पर रक्खू। जब तक तेरे से मुझे यह नहीं मिलेगा, मैं तुझे छोडूगा नही।

ज्यो पनिहारी कुम्भ न बिसरै, नटवो नृत्य निधान।

मैं पहले भी कह चुका हू कि पनिहारी सिर पर घडे रखे होती है, फिर भी पैर मे चुभा हुआ काटा निकाल लेती है। क्या मजाल कि घडा गिर जाये। इसे कहते है अखण्ड ध्यान। भक्तजनो की भावना यही रहती है कि हमारे पीछे भले दुनियादारी के झगडे बने रहे पर मेरा अनन्य ध्यान पनिहारी की तरह तुझ पर ही केन्द्रित रहे।

दत्तात्रेय ने चोबीस गुरु किये थे। अर्थात्—चौबीस जगह से शिक्षा प्राप्त की थी। एक जगह वे भिक्षा लेने गये। वहा एक लडकी ऊखल मे चावल कूट रही थी। एक हाथ मे मूसल लेकर वह चावल कूटती जाती थी और दूसरे हाथ से ऊखल मे पडे हुए चावलो को चलाती जाती थी। इतने मे उसका छोटा भाई रोता हुआ वहा आया। लडकी ने चावल कूटना जारी रक्खा ओर उसे मुह से मीठी—मीठी बाते कह कर चुप करा दिया। वह एक हाथ से चावल कूटती है, दूसरे हाथ से चावल चलाती हे ओर मुह से भाई को प्यार की बाते कह कर बहलाती हे। पर क्या मजाल कि उसके दूसरे हाथ को मूसल से कोई चोट पहुच सके। दत्तात्रेय ने लडकी का यह हाल देखकर सोचा--ध्यान मे यह लगती है या में लगता हू ? यह काम करती हुई भी मूसल पर कैसा ध्यान जमाये हे। अगर मेरा ध्यान परमात्मा से इसी तरह लग जाये तो मेरा कल्याण हो जाये।

अपने यहा भी कहा हे

ज्यो पनिहारी कुम्भ न बिसरे, नटवो नृत्य निधान।

नट को देखो। दोनो पाव थाली पर रख कर मुह ओर हाथ मे तलवार पकडे हुए रस्सी पर चढकर वास पर थाली बजाते—बढते जाता हे ओर वास पर नाभि को टिकाकर कुम्हार के चाक की तरह घुमाता हे। वह न अपने हाथ—पाव आदि किसी अग को कटने देता हे ओर न वास से गिरता ह। भक्तजनो का कथन हे कि जेसे नट का ध्यान वास पर लगा रहता हे इसी तरह मेरा ध्यान तुझमे लग जाये।

मित्रो। परमात्मा के ऐसे ध्यान के भूखे हम भी है। आप भी इसकी आकाक्षा रक्खो। इस पर किसी का ठेका नही है। कौन जाने किसे इसकी पाप्ति हो जाए ? जिसमे पबल भावना होगी वही इसे पा लेगा।

पलक न बिसरे ही पद्मणी पिऊ भणी, चकवी न बिसरे भाण।

भक्त कहते है हमारा पेम परमात्मा से ऐसा ही हो जैसा पतिव्रता स्त्री का पेम अपने पति से होता है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री खाना–पीना, पहनना आदि गृहकार्य करती हुई भी अपने पति को विस्मृत नही करती, बल्कि उसके अन्त करण से निरन्तर पतिप्रेम की विमल–धारा प्रवाहित होती रहती है, उसी प्रकार मेरे हृदय से भी परमात्मप्रेम का पावन प्रवाह बहता रहे। एक क्षण के लिए भी वह प्रवाह बन्द न हो–क्षण भर भी मै परमात्मा को विस्मृत न होने दू।

पतिव्रता अपने पति को किस प्रकार चाहती है, इसकी साक्षी जड पदार्थ भी देने लगते हैं। सीता ने अपनी अग्नि परीक्षा के समय अग्नि से कहा था–'हे अग्नि । तेरा स्वभाव भस्म करने का है। अगर मेरे हृदय मे राम का ध्यान दूर हुआ हो और दूसरे पुरुष को मैने पुरुष रूप मे देखा हो तो तू मुझे जलाकर भस्म कर दे।' पर क्या अग्नि ने सीता को जलाया ?

'नही।'

बल्कि उसने साक्षी दी कि तेरा पतिव्रत धर्म अखडित है। सीता की आज्ञा को पतिव्रत धर्म के प्रभाव से अग्नि ने स्वीकार किया। जब पतिप्रेम की यह सीमा है तो परमात्मा के प्रेम की क्या सीमा होनी चाहिए ?

पतिव्रता स्त्रिया यह नही सोचती कि पति की याद मे ही बैठी रहे तो ससार कैसे चलेगा ? ऐसा सोचकर वे पतिप्रेम से वचित नही रहती। इसी प्रकार आप भी परमात्मा के प्रेम मे डूब जाओ। ससार के कार्यो का जो होना होगा हो जायेगा।

पर लोगो मे इतनी आस्था नही है। वे सोचते है– ईश्वर के प्रेम मे लगे रहे तो फिर ससार का कार्य कब और कैसे करे ? मगर जो लोग ऐसा सोचते है वे ईश्वरप्रेम की महिमा समझ ही नही सके है। क्या अपने पति मे निरन्तर निष्ठा रखने वाली पतिव्रता के घर का कोई काम बिगड जाता हे ? उसका घर उजड जाता है ?

नही।

क्योकि उसे विश्वास हे कि मेरा ध्यान पति मे रहने से मेरा घर सुधरेगा। सुना हैं अमेरिका मे एक महिला प्रेम का ही रूप ह। वह यद्यपि 80

हो चुकी है तथापि उसके बाल काले ही है ओर वह 30–35 वर्ष की डती है। ऐसा होने का कारण हो सकता है–एक निष्ठा। आपका शरीर मे ही नष्ट क्यो हो रहा है? इसलिए कि आप एक निष्ठा नहीं रखते। ठ प्रेम से ससार विगड नही सकता। पतिव्रता स्त्री अपने पति मे ठ प्रेम रखती हे ओर वह अपने गृह का कार्य भी व्यवस्थित रखती हे। ग्रह बिखरे मन से काम करे अर्थात् एकनिष्ठ न रह सके तो शायद ही कर सके।

एकनिष्ठा के कारण तेज भव्य हो जाता है। एकनिष्ठा रखने वाले ष्टि मात्र से रोग झड जाते हैं। लक्ष्मण को जब शक्ति लगी थी तो सबने लाह दी थी कि विशल्या के स्नान का जल इस पर छिडक दिया जाये र्ग दूर हो जायेगी। विशल्या से जब यह कहा गया तो वह स्वय आई सने लक्ष्मण की सेवा की। उसका हाथ लगते ही शक्ति भाग गई। अब शक्ति बडी रही या प्रेम बडा रहा ?

'प्रेम।'

अब इस प्रार्थना के अगले भाग पर ध्यान दीजिए–

चकवी न विसरे भाण।

चकवी को सूर्य के प्रकाश के अतिरिक्त दूसरा कोई प्रकाश नही । इसका कारण है सूर्य के प्रति उसका एकनिष्ठ प्रेम। आपका सूर्य के कनिष्ठ प्रेम नही है, इसलिए आपको बिजली की आवश्यकता पडती प यह नही सोचते कि बिजली से आपके स्वास्थ्य को कितनी हानि ो है। आपको भबका चाहिए, इस कारण सूर्य के प्रकाश से आपको नही हे। भक्त लोग कहते हें कि जेसे चकवी सूर्य के प्रकाश के सिवाय प्रकाश नही चाहती, उसी प्रकार मै तेरे सिवाय और किसी को न चाहू। के मन धन की लालसा।

जिस प्रकार लोभी को 'भज कल्दार' का ही ध्यान रहता हे, इसी हमारी आत्मा का ध्यान तुझमे ही रहे। जेसे लोभी का चक्रवृद्धि ब्याज हे, ऐसे ही मेरा ध्यान तुझ पर चलता रहे। अर्थात् जेसे चक्रवृद्धि ब्याज ही होता ऐसे ही मेरा ध्यान तेरी ओर से बन्द न हो।

भोगी के मन भोग।

जेसे भोगी को भोग की तृष्णा लगी रहती हे टुकडे–टुकडे हो जाने वह भोगो को नही छोडना चाहता।

इसी प्रकार भले मेरे टुकडे–टुकडे हो जाए, परन्तु तुझसे प्रेम न हटे।

रोगी के मन मानै औषधि।

बीमार को दवा दो तो बुरी लगेगी?

'नही।'

बल्कि उसे प्यारी लगेगी। औषध लेकर वह शाति पाता है। औषध शातिदायक प्रतीत होती है। इसी प्रकार भक्तजन कहते है–हे प्रभो! तू मेरे लिए शाति–रूप बन जा। जैसे रोगी को दवा प्यारी लगती है, ऐसे ही तू मुझे प्रिय लग।

जोगी के मन जोग।

जिस प्रकार योगी समाधि मे लीन होकर किसी और को याद नही करता इसी प्रकार तू मुझे याद रहे।

भक्तो ने भगवान् से यह प्रार्थना की है। प्रार्थना सबकी एक है। आप मेरे साथ बोलिए

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो, प्यारा प्राण समान।

(ख)

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो।

भगवान् के अनेक नामो मे से कौन–सा भी नाम लेकर प्रार्थना की जाये उसका प्रयोजन तो परमात्मपद की प्राप्ति करना ही होता है। परमात्मपद कहा से आता है और कैसे प्राप्त होता है, यह समझ लेने की आवश्यकता है। मै कह चुका हू कि परमात्मा कही दूर नही है। उसे खोजने के लिए कही बाहर भटकने की आवश्यकता भी नही है। परमात्मा का मन्दिर कहा है, यह और कही न खोज कर इन्द्र अर्थात् आत्मा मे है। महान् शक्ति को पहचानने के लिए अल्पशक्ति पर ध्यान देना पडता है। परन्तु आत्मा महाशक्ति है, इसका पता कैसे लगे?

मैने रसायन जानने वालो से सुना है कि शक्कर का एक तोला सत तीन सौ या पाच सौ तोला शक्कर की मिठास के बराबर होता है। लोग समझते होगे कि शक्कर का वह सत शक्कर से नही निकाला जाता बल्कि एजिन आदि मे जले हुए कोयले की जो राख फेक दी जाती है उससे निकलता है। एक जर्मन डॉक्टर रसायन खोज रहा था। उसने इस कूडे–करकट की छानबीन की कि इसमे भी कोई वस्तु है या नही ? सयोग से उसी कूडे–करकट मे शक्कर का सत निकला। डाक्टर को पता नही था कि इसमे

से शक्कर का सत निकला हे। वह यो ही भरे हाथो भोजन करने वैठा। रोटी उसे मीठी लगी। उसने पूछा—क्या रोटी मे मीठा मिलाया हे ? रसोइये ने कहा—नही तो, जेसी रोटिया रोज वनाता हू वेसी ही आज भी वनाई हें। डाक्टर ने अपना हाथ चाटा तो उसे अपना हाथ मीठा लगा। उसने हाथ धोकर फिर चाटा तो हाथ फिर भी मीठा लगा। तव डाक्टर समझ गया कि इस कचरे मे रसायन हे। उसने जाकर अनुसधान किया तो वह शक्कर का सत निकला। क्या आप अनुमान कर सकते हे कि कूडा—करकट मे मिठास मोजूद हे ?

'नही !'

परन्तु रासायनिक विश्लेषण से विदित हुआ कि उसमे भी मिठास हे। इसी प्रकार आत्मा की खोज करने की आवश्यकता हे। उसमे परमात्मा अवश्य मिलेगा।

आख, कान आदि को इद्रिय—प्राण कहा जाता हे। पर ये विखरे हुए हैं। जव इस विखरी हुई अल्पशक्ति के द्वारा इतना आनन्द मिलता हे, तो इनके स्वामी इद्र मे कितनी शक्ति होगी ओर उसके द्वारा कितना आनन्द प्राप्त होगा, इसका विचार तो करो ! आप लोग राख अर्थात् इन इद्रियो पर ही प्रसन्न हो गये हे, परन्तु इस राख के भीतर विद्यमान रसायन अर्थात् आत्मा को नही पहचान सके हें। परमात्मा को आप पुकारते हें, उसे पहचानना चाहते हें परन्तु खोजते नही हें। यदि इद्रियो को वश मे करके, इद्रियो के स्वामी आत्मा को पहचानने का काम करो तो परमात्मा की भी पहचान हो जाए।

में कह चुका हू कि आत्मा स्वामी हे ओर इद्रिया, मन तथा वुद्धि उसके सेवक हें। आत्मा की आज्ञा से इद्रिया काम करती हें। आख देखने का काम करती हे, परन्तु देखने—देखने मे वडा अन्तर हे। कोई नाटक ओर सिनेमा मे रात विताते हें ओर दूसरे जो आत्मा के खोजी हे, इन्द्रियो के स्वरूप को भूल कर अद्भुत आत्मा का रूप देखते हें। रात मे जगते दोनो हें ओर देखते भी दोनो हें, पर एक नाटक देखता हे ओर दूसरा ईश्वर को देखता हे। आप इन दोनो मे से किसे देखना पसन्द करते हे ?

'ईश्वर को !'

लोग चाहते यही हें, परन्तु मक्खी को मिश्री की डली मिल जाने पर भी वह न मालूम क्यो अशुचि पर चली जाती हे ?

आप यह न समझ ले कि इद्रियो से ईश्वर देखा जा सकता हे। ईश्वर इन्द्रिया से नही मिलेगा वल्कि इद्रियो को वश मे करने स मिलेगा।

सर्वप्रथम यह निश्चय कर लेना चाहिए कि परमात्मा हमारे हृदय मन्दिर मे ही बसता है और सच्चे तत्त्वो को पहचानने से ही वह दिखाई दे सकता है । गीता मे कहा–

इद्रियाणि पराण्याहु ।

इद्रिय और इद्रिय के विषय अलग–अलग वस्तुए है। ठडी या गर्म वस्तु अलग है और उसका स्पर्श करने वाली इन्द्रिय अलग है । अब दोनो मे बडा कौन है ?

'इन्द्रिय ।'

शास्त्र कहता है कि स्पर्श से, इन्द्रिय बडी है और इन्द्रिय से मन बडा है। मन बहुत चालाक है और यही इन्द्रियो को इधर–उधर लगाता है। परन्तु इस मन से भी बडी बुद्धि है और बुद्धि से भी जो परे है वह आत्मा और ईश्वर एक है।

आप मुह से कहते है कि पदार्थ छोटे और इन्द्रिय बडी है, परन्तु वास्तव मे आप लोग पदार्थो को बडा समझकर उन्ही को प्रधानता देते है। आप पदार्थो को इन्द्रियो से तुच्छ समझते हो, यह जानते हो कि यह पदार्थ इन्द्रियो से कम कीमती हैं इनके खाने, सूघने और देखने आदि से इन्द्रियो का नाश होगा, फिर भी पदार्थो के पीछे लगे रहते हो! तुच्छ के बदले महान् का नाश करते समय आपका विवेक कहा चल जाता है ? कालीदास कवि ने कहा–

अल्पस्य हेतोर्बहु दातुमिच्छन्, विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम् ।

अर्थात् जो अल्प के लिए बहुत का नाश करता है वह मूढ हे।

व्यवहार मे आप मान लेते है कि आत्मा की चाहे जो गति हो हमे तो गहने और कपडे बढिया मिलने चाहिए। इन चीजो के लिए नरक जाना पडे तो भी कोई परवाह नही।

आप हीरे की अपेक्षा कान को बडा समझते है फिर भी अगर हीरो के लिए कानो को नष्ट करो तो आपको क्या समझा जाये ? आप नही जानते कि हम अपने ही अहम् मे क्या कर रहे हे इसी से भ्रम मे पडे हुए हे । आपने आत्मा को विस्मृत करके इन्द्रिय मन ओर बुद्धि को खान–पान आदि मे लगा रक्खा हे। इसी कारण परमात्मा की पहचान मे भूल हो रही हे।

मेरा आशय यह नही हे कि भोजन किया ही न जाये। धर्म आर भक्ति की साधना के लिए शरीर की रक्षा आवश्यक हे आर वह भाजन के बिना नही हो सकती। मगर खाने का उद्देश्य सही होना चाहिए। कई लोग खाने के जिए जीते हे ओर कई जीने के लिए खाते हे।

भव–भव अन्तरजामी तुम प्रभु,
हमने छे अधार हो सुभागी।
वेकर जोड 'विनयचन्द' विनवे,
आपो सुख श्रीकार हो सुभागी ।। 7 ।।

विश्व के असख्य प्राणी निरन्तर प्रवृत्ति मे रत रहते हैं। अगर सामान्य रूप से उनकी प्रवृत्तियो के मूल उद्देश्य को खोजा जाये तो इसी परिणाम पर पहुचना होगा कि सभी प्राणी शाति प्राप्त करने के एक–मात्र ध्येय की पूर्ति करने के लिए उद्योग मे लगे हैं। जिसके पास धन नही हे या कम हे वह धन प्राप्ति के लिए आकाश–पाताल एक करता हे । जिसे मकान की आवश्यकता हे वह मकान खडा करने के लिए नाना प्रयत्न करता हे। जिसके हृदय मे सत्ता की भूख जागी हे, वह सत्ता हथियाने की चेष्टा कर रहा हे । इस प्रकार प्राणियो के उद्योग चाहे भिन्न–भिन्न हो पर उन सबका एकमात्र उद्देश्य शाति प्राप्त करना ही हे। यह वात दूसरी हे कि अधिकाश प्राणी वास्तविक ज्ञान न होने के कारण ऐसे प्रयत्न करते हैं कि उन्हे अपने प्रयत्नो के फलस्वरूप शाति के वदले उलटी अशाति ही प्राप्त होती हे लेकिन अशाति कोई चाहता नही। चाहते हैं सभी शाति।

शाति के लिए प्रयत्न करने पर भी अधिकाश प्राणियो को अशाति क्यो प्राप्त होती हे, इसका कारण यही हे कि उन्होने शाति के यथार्थ स्वरूप को नही समझा हे। वास्तविक शाति क्या हे ? कहा हे? उसे प्राप्त करने का साधन क्या हे ? इन बातो को ठीक–ठीक न जानने के कारण ही प्राय शाति के वदले अशाति पल्ले पडती हे। अतएव यह आवश्यक हे कि भगवान शातिनाथ की शरण लेकर शाति का सच्चा स्वरूप समझ लिया जाये ओर फिर शाति प्राप्त करने के लिए उद्योग किया जाये।

भगवान् शातिनाथ का स्वरूप समझ लेना ही शाति के स्वरूप को समझ लेना हे । गणधरो ने भगवान शातिनाथ के स्वरूप को ऊचा वतलाया है । उस स्वरूप मे चित्त को एकाग्र करके लगा दिया जाये तो कभी अशाति न हो। मित्रो ! आओ आज हम लोग मिलकर भगवान के स्वरूप का विचार करे ओर सच्ची शाति प्राप्त करने का मार्ग खोजे।

भगवान शातिनाथ के सम्बन्ध मे शास्त्र का कथन हे

चइत्ता भारह वासं चकवट्टी महढ्डिओ।
सन्ती सन्ति करे लोए पत्तो गइमणुत्तर।।

यहा भगवान् के विषय मे कहा गया है– सती सति–करे लोए। अर्थात् शातिनाथ भगवान् लोक मे शाति करने वाले है। वाक्य बडा महत्त्वपूर्ण है। वह छोटा–सा वाक्य इतना पूर्ण है कि मानो सब ज्ञान इसी मे समाप्त हो जाता है। शाति क्या है और वह किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, इस विषय पर मै कई बार कह चुका हू और आज फिर इसी विषय मे कह रहा हू, क्योकि शाति प्राप्त करना ही जगत् के प्राणियो का एकमात्र ध्येय है।

कई लोग विषमभाव मे, पक्षपात मे शाति देखते है। लेकिन जहा विषमभाव है वहा वास्तविक शाति नही रह सकती। वास्तविक शाति तो समभाव के साथ ही रहती है।

बहुत से लोग अपनी कुशल के आगे दूसरे के कुशल की कोई कीमत ही नही समझते। वे दूसरो की कुशल की उपेक्षा ही नही करते वरन् अपनी कुशल के लिए दूसरो की अकुशल भी कर डालते है। उन्हे समझना चाहिए कि शाति प्राप्त करने का मार्ग यह नही है। यह तो शाति के घात करने का ही तरीका है। सच्ची शाति तो भगवान् शातिनाथ को पहिचानने से ही प्राप्त की जा सकती है। जिस शाति मे से अशाति का अकुर न फूटे, जो सदा के लिए अशाति का अन्त कर दे, वही सच्ची शाति है। सच्ची शाति प्राप्त करने के लिए सर्वभूतहिते रत" अर्थात् प्राणी मात्र के कल्याण मे रत होना पडता है।

कुछ लोग दुर्गापाठ आदि करके, होम करके, यहा तक कि जीवो का बलिदान तक करके शाति प्राप्त करना चाहते है। दु ख विपाक सूत्र देखने से पता चलता है कि कुछ लोग तो अपने लडके का होम करके भी शाति प्राप्ति करना चाहते थे। कुछ लोग आज भी पशुबलि, यहा तक नरबलि मे शाति बतलाते है। इस प्रकार शाति के नाम पर न जाने कितनी उपाधिया खडी कर दी गई है। लेकिन गणधरो ने एक ही वाक्य मे वास्तविक शाति का सच्चा चित्र अकित कर दिया है–

सती संति करे लोए।

नरमेध करने वालो ने नरमेध मे ही शाति मान रक्खी है लेकिन नरमेध से क्या कभी ससार मे शाति हो सकती है ? मारने वाला और मरने वाला–दोनो ही मनुष्य है। मारने वाला शाति चाहता है तो क्या मरने वाले को शाति की अभिलाषा नही है ? फिर उसे अशाति पहुचा कर शाति की आशा करना कितनी मूर्खतापूर्ण बात है ।

नरमेध करने वाले से पूछा जाये कि तू ईश्वर के नाम पर दूसरे मनुष्य का वध करता हे तो क्या ईश्वर तेरा ही है ? ईश्वर मरने वाले का नही हे? अगर मरने वाले से पूछा जाये कि हम ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए तेरा बलिदान करना चाहते हैं तो वह क्या उत्तर देगा ? क्या वह बलि चढना पसन्द करेगा ? क्या वह स्वीकार करेगा कि जो इस प्रकार की बलि लेकर प्रसन्न होता है वह ईश्वर हे ? और इस वलि का विधान जिसमे किया गया हे वह क्या शास्त्र है ? वह तो यही कहेगा कि ऐसी बलि की आज्ञा देने वाला ईश्वर नही हो सकता, कोई हिसालोलुप अनार्य ही हो सकता है और ऐसा शास्त्र भी किसी अनार्य का ही कहा हुआ है।

किसी भी जीव का हनन करने से शाति प्राप्त नही हो सकती। किसी भी प्राणी को दु ख न पहुचाने से ही वास्तविक शाति प्राप्त हो सकती है । आज तो जैन परम्परा के अनुयायी भी नाना प्रकार से आरम्भ–समारम्भ करते है और होम आदि करते है मगर उसमे वास्तविक शाति नही है। लोगो ने शाति प्राप्त करने के उपायो को गलत समझ लिया है और इसी कारण शाति प्राप्त करने के लिए यज्ञ, होम आदि करने पर भी सच्ची शाति प्राप्त नही होती। सच्ची शाति प्राणीमात्र की कल्याण–साधना मे है। किसी का अकल्याण करने मे शाति नही है। भगवान् शातिनाथ के नाम पर जो शाति–दीपक जलाया जाता है, क्या उसमे अग्नि नही होती । इस प्रकार से अग्नि लगाया हुआ दीपक शातिदीपक नही है। शातिदीपक वह हे जिसमे ज्ञान से उजाला किया जाता हे।

ऐसी आरती करो मन मेरा,
जन्म मरण मिट जाय देख तेरा।
ज्ञानदीपक का कर उजियाला,
शाति स्वरूप निहारि तुम्हारा ।। ऐसी।।

मित्रो ! शातिनाथ भगवान् की आराधना करने का अवसर बार–बार नही मिलता। इसलिए शातिनाथ भगवान् की आराधना करो। अग्नि से दीपक जलाकर 'शाति–शाति' भले करते रहो पर इस उपाय से शातिनाथ को नही पा सकते। ज्ञान का दीपक जलाकर उजाला करोगे तो शातिनाथ भगवान का स्वरूप स्पष्ट रूप से देख सकोगे। इस वात पर मनन करो ओर इसे हृदय मे उतार लो तो शातिनाथ हृदय मे ही प्रकट हो जाएगे । प्राचीन ऋृपियो ने कहा हे

देहो देवालय प्रोक्तो जीवो देव सनातन ।
त्यजेदज्ञ ननिर्माल्य, सोऽह भवेन पूजयेत्।।

यह देह देवालय है। इसमे आज का नही सनातन का कृत्रिम नही अकृत्रिम, जीव परमेश्वर है।

तुम्हारी देह अगर मन्दिर है तो दूसरे जीवो की देह भी मन्दिर है या नही ?

है।'

यदि केवल अपनी ही देह को मन्दिर माना, दूसरे की देह को मन्दिर नही माना तो तुम पक्षपात मे पडे होने के कारण ईश्वर को नही जान सकते। ईश्वर ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापी और सबकी शाति चाहने वाला है। मगर आप भी सबकी शाति चाहते है, सबकी देह को देवालय मानते है तो आपकी देह भी देवालय है, अन्यथा नही।

जिस मकान को देवालय मान लिया, उस मकान के ईट–पत्थर कोई विवेकी खोदना चाहेगा ?

'नही।'

अगर कोई खोदता है तो कहा जायेगा कि इसने देवालय की आसातना की। लेकिन जब सभी जीवो के शरीर को देवालय मान लिया तो फिर किसी के शरीर को तोडना–फोडना क्या देवालय को तोडना–फोडना नही कहलाएगा ?

मित्रो ! परमात्मा से शाति चाहने के लिए दूसरे जीवो को कष्ट पहुचाना उनका घात करना कहा तक उचित है ? देवालय के पत्थर निकालकर कोई आसपास दीवाल बनावे और कहे कि हम देवालय की रक्षा करते है तो क्या यह रक्षा करना कहलाएगा ? इसी प्रकार शाति के लिए जीवो की घात करना क्या शाति प्राप्त करना है ? शाति तो उसी समय प्राप्त होगी जब ज्ञान दीपक से उजाला करके आत्मा को वैर–विकार से रहित बनाओगे। सर्वदेशीय शाति ही वास्तविक शाति है।

शातिनाथ भगवान की प्रार्थना मे कहा गया है

श्री शातिनाथ जिनेश्वर सायब सोलवा
जनमत शाति करी निज देश मे।
मिरगी मार निवार हो सुभागी।।
तन मन वचना शुध करि ध्यावता
पूरे सगली हाम हो सुभागी ।। श्री ।।

उन शातिनाथ भगवान को पहिचानो जिन्होंने माता के उदर मे आते ही ससार मे शाति का प्रसार कर दिया था। उस समय की शाति सूर्योदय से पहले होने वाली उषा के समान थी।

उषा प्रात काल लालिमा फैलने ओर उजाला होने को कहते हे। भगवान् शातिनाथ का जन्मकाल शातिप्रसार का उषाकाल था। इस उषाकाल के दर्शन कब और कैसे हुए, इत्यादि बाते समझाने के लिए शातिनाथ भगवान् का जन्मचरित्र सक्षेप मे बतला देना आवश्यक है। जिस प्रकार सूर्योदय की उषा से सूर्य का सम्बन्ध है, उसी प्रकार भगवान् शातिनाथ के उषाकाल से उनका सम्बन्ध है। अतएव उसे जान लेना आवश्यक हे।

हस्तिनापुर मे महाराज अश्वसेन और महारानी अचला का अखण्ड राज्य था। हस्तिनापुर नगर अधिकतर राजधानी रहा हे। प्राचीन काल मे उसकी बहुत प्रसिद्धि थी । आजकल हस्तिनापुर का स्थान देहली ने ले लिया है।

भगवान् शातिनाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर महारानी अचला के गर्भ मे आये। गर्भ मे आते समय महारानी अचला ने जो दिव्य स्वप्न देखे, वे सब उस उषाकाल की सूचना देने वाले थे। मानो स्वप्न मे दिखाई देने वाले पदार्थो मे कोई भी स्वार्थी नही है। हाथी, वृषभ, सिह और पुष्पमाला कहते है कि आप हमे अपने मे स्थान दीजिए। चन्द्रमा और सूर्य निवेदन कर रहे हैं कि हमारी शाति और तेज प्रभो। तेरे मे ही है।

उग्गए विमले भाणू।

प्रभो । हमारे प्रकाश से अन्धकार नही मिटता है अतएव आप ही प्रकाश कीजिए।

उधर फहराती हुई ध्वजा कहती हे—मे तीन लोक की विजयपताका हू। मुझे अपनाइये। मगलकलश कहता हे—नाम तभी सार्थक हे जब आप मुझे ग्रहण कर ले। मानसरोवर कहता हे—यह मगलकलश मेरे से ही बना हे। मे ओर किसके पास जाऊ ? मे ससार के मानस का प्रतिनिधि होकर आया हू ओर प्रार्थना करता हू कि तू सबके मानस मे प्रवेश कर ओर उसे उज्ज्वल बना । क्षीर सागर कहता है यह सरोवर तो छोटा—सा हे। लेकिन अगर आप मुझे न धारण करेगे तो मे कहा रहूगा ? प्रभो । इस ससार को अमृतमय कर दो। ससार मुझ से अतृप्त हे, अत आप उसे तृप्त कीजिए।

इस प्रकार उषाकाल की सूचना देकर भगवान शातिनाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से महारानी अचला के गर्भ मे आये। सव देवी—देवताओ ने भगवान् से प्रार्थना की—प्रभो । सव लोग अपने—अपने पक्ष मे पडे हुए हे। आप ससार का उद्धार कीजिये। हमारे सिर पर भी आशीर्वाद का हाथ फेरिये।

लोकोत्तर स्वप्नो ने मानो अचला महारानी को बधाई दी। उसके बाद अचला महारानी के गर्भ मे भगवान् का आगमन हुआ। क्रमश गर्भ की वृद्धि होने लगी।

जिन दिनो भगवान् शातिनाथ गर्भ मे थे, उन्ही दिनो महाराज अश्वसेन के राज्य मे महामारी का रोग फैल गया।

पश्न हो सकता है कि जब भगवान् गर्भ मे आये तो रोग क्यो फैला ? मगर वह रोग नही, उषाकाल की महिमा को प्रकट करने वाला अन्धकार था। जैसे उषाकाल से पहले रात्रि होती है और उस रात्रि से ही उषाकाल की महिमा जानी जाती है, उसी प्रकार वह महामारी भगवान् शातिनाथ के उषाकाल के पहले की रात्रि थी। उसका निवारण करने के कारण ही भगवान 'शातिनाथ पद को प्राप्त हुए। यद्यपि भगवान गर्भ मे आ चुके थे और उस समय रोग फैलना नही चाहिए था, फिर भी रोग के फैलने के बाद भगवान के निमित्त से उसकी शाति होने के कारण भगवान की महिमा का प्रकाश हुआ। इससे भगवान् के आने की सूचना और भगवान् के प्रताप का परिचय उनके माता पिता को मिल गया।

राज्य मे मिर्गी रोग फैलने की सूचना महाराज अश्वसेन को मिली। महाराज ने यह जानकर कि मिर्गी रोग के कारण लोग मर रहे है रोग की उपशाति के अनेक उपाय किये। मगर शाति न मिली।

यह मिर्गी लोगो की कसौटी थी। इसी से पता चलता था कि लोग मार्ग पर है या मार्ग भूले हुए है। यह मिर्गी शाति से पहले होने वाली क्राति थी।

उपाय करने पर भी शाति न होने के कारण महाराज बडे दु खी हुए। वह सोचने लगे– जिस प्रजा का मैने पुत्र के समान पालन किया है, जिसे मेने अज्ञान से सज्ञान निर्धन से धनवान और निरुद्योगी से उद्योगवान बनाया हे वह मेरी प्रजा असमय मे ही मर रही है । मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो रहा हे । मेरे राजा रहते प्रजा को कष्ट होना मेरे पाप का कारण है ।' पहले के राजा राज्य मे दुष्काल पडना रोग फेलना प्रजा का दु खी होना आदि अपने पाप का ही फल समझते थे।

रामायण मे लिखा हे कि एक ब्राह्मण का लडका बचपन मे ही मर गया । ब्राह्मण उस लडके को लेकर रामचन्द्रजी के पास गया आर बाला आपने क्या पाप किया हे कि मेरा लडका मर गया ?

इस उल्लेख से ज्ञात होता हे कि पहले के राजा, प्रजा के कष्ट का कारण अपना ही पाप समझते थे। इसी भावना के अनुसार महाराज अश्वसेन मिर्गी फैलने को अपना ही दोष मानकर दु खी हुए। उन्होने एकान्त मे जाकर निश्चय किया कि जब तक प्रजा का दु ख दूर न होगा, मे अन्न–जल ग्रहण नही करूगा।

सुदृढ निश्चय मे वडा वल होता हे। भक्त तुकाराम ने कहा हे–

निश्चयाचा बल तुका म्हणे च फल।

निश्चय के बिना फल की प्राप्ति नही होती।

इस प्रकार निश्चय करके महाराज अश्वसेन ध्यान लगा कर बेठ गये। भोजन का समय होने पर महारानी अचला ने दासी को भेजा कि वह महाराज को भोजन करने के लिए बुला लावे। दासी गई, किन्तु महाराज को ध्यानमुद्रा मे बैठा देखकर वह सहम गई। भला उसका साहस कैसे हो सकता था कि वह महाराज के ध्यान को भग करने का प्रयत्न करे । वह धीमे–धीमे स्वर से पुकार कर लौट गई। उसके बाद दूसरी दासी आई फिर तीसरी आई मगर ध्यान भग करने का किसी को साहस न हुआ। महारानी अचला बार–बार दासियो को भेजने के अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करके कहने लगी–स्वामी को बुलाने के लिए दासियो को भेजना उचित नही था, स्वय मुझे जाना चाहिए था। यद्यपि मैने पति से पहले भोजन करने की भूल नही की है, लेकिन स्वय उन्हे बुलाने न जाकर दासियो को भेजने की भूल अवश्य की हे।

समय अधिक हो जाने के कारण भोजन ठडा हो गया था। इस कारण दासियो को दूसरा भोजन बनाने की आज्ञा देकर महारानी अचला स्वय महाराज अश्वसेन के समीप गई।

महारानी सोच रही थी–पत्नी, पति की अर्धांगिनी हे। उसे पति की चिन्ता का भी भाग बाटना चाहिए । जो स्त्री, पति की प्रसन्नता मे भाग लेना चाहती हे ओर चिन्ता मे भाग नही लेना चाहती वह आदर्श पत्नी नही हो सकती। ऐसी स्त्री पापिनी हे।

महारानी अचला को वाल्यावस्था से ही सुन्दर सस्कार मिले थे। वह अपने पतिधर्म को भलीभाति समझती थी। इस कारण वह भोजन किये विना ही महाराज अश्वसेन के समीप पहुची। वहा जाकर देखा कि महाराज अश्वसेन गम्भीर मुद्रा धारण करके ध्यान मे लीन हे। महारानी ने हाथ जोडकर धीमे ओर मधुर किन्तु गम्भीर स्वर मे महाराज का ध्यान भग करने का प्रयत्न

किया। महारानी का गम्भीर स्वर सुनकर महाराज का ध्यान टूटा। उन्होने आख खोलकर देखा तो सामने महारानी हाथ जोडे खडी नजर आई। महाराज ने इस प्रकार खडी रहने और ध्यान भग करने का कारण पूछा। महारानी ने कहा–आप आज अभी तक भोजन करने नही पधारे। इसका क्या कारण है ? महाराज सोचने लगे–जिस उपद्रव को मै दूर नही कर सकता, उसे महारानी स्त्री होकर कैसे दूर कर सकती है ? फिर अपनी चिन्ता का कारण कह कर उन्हे दु खी करने से क्या लाभ है ? इस प्रकार विचार कर वह चुप ही रहे। कुछ न बोले।

पति को मौन देख महारानी ने कहा जान पडता है, आप किसी ऐसी चिन्ता मे डूबे है, जिसे सुनने के लिए मै अयोग्य हू। सभवत इसी कारण आप बात छिपा रहे है। यदि मेरा अनुमान सत्य है तो आज्ञा दीजिए कि मै यहा से टल जाऊ। ऐसा न हो तो कृपया अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए। आपकी पत्नी होने के कारण आपके हर्ष–शोक मे समान रूप से भाग लेना मेरा कर्त्तव्य है।

महाराज अश्वसेन ने कहा–मेरे पास कोई चीज नही हे जो तुम से छिपाने योग्य हो मै ऐसा पति नही कि अपनी पत्नी से किसी प्रकार का दुराव रक्खू। मगर मेरी चिन्ता तो दूर होगी नही, तुम्हे भी चिन्ता हो जायेगी । इससे लाभ क्या होगा ?

महारानी–अगर बात कहने से दु ख नही मिटेगा तो उदास होने से भी नही मिटेगा। इस समय सारा दु ख आप उठा रहे है लेकिन जब आप अपनी इस अर्धागिनी से दु ख का कारण कह देगे तो आपका आधा दु ख कम हो जाएगा।

महाराज–तुम्हारी इच्छा है तो सुन लो। इस समय सारी प्रजा महामारी की बीमारी से पीडित है। मुझसे ही कोई अपराध बन गया हे जिसके कारण प्रजा को कष्ट भुगतना पड रहा है। ऐसा न होता तो मेरे सामने प्रजा क्यो दु खी होती ?

महारानी–जिस पाप के कारण प्रजा दु ख पा रही हे वह आपका ही नही है मेरा भी हे।

महारानी की यह बात सुनकर महाराज को आश्चर्य हुआ। फिर उन्होने कुछ सोचकर कहा–ठीक ही है। मगर विचारणीय बात तो यह ह कि यह दु ख किस प्रकार दूर किया जाये ?

महारानी–पहले आप भोजन कर लीजिए। काई न कोई उपाय निकलेगा ही।

महाराज–मै प्रतिज्ञा कर चुका हू कि जब तक प्रजा का दु ख दूर न होगा, मै अन्न–जल ग्रहण नही करूगा।

महारानी–जिस नरेश मे इतनी दृढता है, जो प्रजाहित के लिए आत्मबलिदान करने को उद्यत है, उसकी प्रजा कदापि दु खी नहीं रह सकती। लेकिन जब तक आप भोजन नही कर लेते, मै भी भोजन नही कर सकती।

महाराज–तुम अगर स्वतन्त्र होती ओर भोजन न करतीं, तब तो कोई बात ही नही थी। लेकिन तुम गर्भवती हो। तुम्हारे भूखे रहने से गर्भ को भी भूखा रहना होगा और यह अत्यन्त ही अनुचित होगा ।

गर्भ की याद आते ही अचला महारानी ने कहा–नाथ ! अब मै महामारी को मिटाने का उपाय समझ गई । यह महामारी उषा के पूर्व का अन्धकार है। मै इसे मिटाने का उपाय करती हू।

महारानी अचला महल के ऊपर चढ गई और अमृतदृष्टि से चारो ओर देखकर कहने लगी–प्रभो ! यदि यह महामारी शात न हुई तो पति जीवित नही रहेगे। पति के जीवित न रहने पर मै भी जीवित नही रह सकूगी। और इस प्रकार यह गर्भ भी नष्ट हो जायेगा। इसलिए हे महामारी ! मेरे पति के लिए, मेरे लिए और इस गर्भ के लिए इस राज्य को शीघ्र छोड दे।

उषा के आगे अन्धकार कैसे ठहर सकता है ? महारानी के चारो ओर देखते ही महामारी हट गई। उसके बाद महाराज अश्वसेन को सूचना मिली कि राज्य मे शाति हो गई हे। महाराज आश्चर्यचकित रह गये। वे महारानी के महल मे आये। मालूम हुआ कि वे महल के ऊपर हे। महाराज वही पहुचे। उन्होने देखा कि अचला महारानी अचल–ध्यान मे खडी हे। चारो ओर अपनी दिव्य–दृष्टि फिराती हे किन्तु मन को नही फिरने देती।

महाराज अश्वसेन ने थोडी देर यह दृश्य देखा। उसके बाद स्नेह की गम्भीरता के साथ कहा–'देवी, शात होओ !

पति को आया जान महारानी ने उनका सत्कार किया। महाराज ने अतिशय सतोष ओर प्रेम के साथ कहा– समझ मे नही आया कि तुम रानी हो या देवी ? तुम्हारी जितनी प्रशसा की जाये थोडी हे। तुम्हारे होने से ही मेरा वडप्पन हे। तुम्हारी मोजूदगी से ही मेरा कल्याण–मगल हुआ। तुमने देश मे शाति का प्रसार करके प्रजा के ओर मेरे प्राण की रक्षा की हे।

पति के मुख से अपनी अलकारमय प्रशसा सुनकर रानी कुछ लज्जित हुई फिर रानी ने कहा–नाथ ! यह अलकार मुझे शोभा नही देते। ये इतन भारी ह कि म इनका बोझ नही उठा सकती। मुझमे इतनी शक्ति हे कहा

जितनी आप कह रहे है ? थोडी–सी शक्ति हो तो वह आपकी ही शक्ति है। काच की हडी मे दीपक रखने पर जो प्रकाश होता है वह काच की हडी का नही, दीपक का ही है। इसलिए आपने प्रशसा के जो अलकार मुझे प्रदान किये है, उन्हे आभार के साथ मै आपको ही समर्पित करती हू। आप ही इनके योग्य है। आप ही इन्हे धारण कीजिये।

महाराज–रानी, यह भी तुम्हारा एक गुण है कि तुम्हे अपनी शक्ति की खबर ही नही ! वास्तव मे जो अपनी शक्ति का घमण्ड नही करता वही शक्तिमान् होता है। जो शक्ति का अभिमान करता है, उसमे शक्ति रहती ही नही! बडे–बडे ज्ञानी ध्यानी और वीरो की यही आदत होती है कि वे अपनी शक्ति की खबर भी नही रखते। मैने तुम्हे जो अलकार दिये हे उन्हे तुम मेरे लिए लौटा रही हो, किन्तु पुरुष होने के कारण मै उन्हे पहिन नही सकता। साथ ही मुझे ख्याल आता है कि वह शक्ति न तुम्हारी है न हमारी है। हमारी और तुम्हारी भावना पूरी करने वाले त्रिलोकीनाथ का ही यह प्रताप हे। वह नाथ, जन्म धारण करके सारे ससार को सनाथ करेगा। आज के इस चमत्कार को देखते हुए, इन अलकारो को गर्भस्थ प्रभु के लिए सुरक्षित रहने दो। जन्म होने पर इनका 'शातिनाथ' नाम रक्खेगे। 'शातिनाथ' नाम एक सिद्ध–मन्त्र होगा, जिसे सारा ससार जपेगा और शाति–लाभ करेगा। देवी, तुम कृतार्थ हो कि ससार को शाति देने वाले शातिनाथ तुम्हारे पुत्र होगे।

रानी–नाथ ! आपने यथार्थ कहा। वास्तव मे बात यही हे । यह अपनी शक्ति नही, उसी की शक्ति है ! उसी का प्रताप है जिसे मेने गर्भ मे धारण किया है।

प्रार्थना मे कहा गया है

अश्वसेन नृप अचला पटरानी,
तस सुत कुल सिगारी हो सुभागी।
जन्मत शाति थई निज देश मे,
मिरगी मार निवार हो सुभागी।

इस प्रकार शातिनाथ भगवान रूपी सूर्य के जन्म धारण करने से पहले होने वाली उषा का चमत्कार आपने देख लिया ! अव शातिनाथ–सूर्य के उदय होने का वृत्तान्त कहना है। मगर समय कम होने के कारण थाडे ही शब्दो मे कहता हू।

शातिनाथ भगवान को गर्भ मे रहने या जन्म धारण करने के कारण आप वन्दना नही कर सकते है। वे इस कारण वन्दनीय है कि उन्होने दीक्षा धारण करके केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की।

भगवान् शातिनाथ ने लम्बे काल तक ससार मे रह कर अद्वितीय काम कर दिखाया। उन्होने स्वय राज्य करके राज्य करने का आदर्श जनता के समक्ष उपस्थित किया । राज्य करके उन्होने अहकार नही सिखलाया। उनमे ऐसी–ऐसी अलौकिक शक्तिया थी कि जिनकी कल्पना भी हमारे हृदय मे आश्चर्य उत्पन्न करती है। लेकिन उन्होने ऐसी शक्तियो का कभी प्रयोग नही किया। माता अपने बालक को कामधेनु का दूध पिलाकर तृप्त कर सकती हो तो भी उसे अपना दूध पिलाने मे जिस सुख का अनुभव होता है, कामधेनु का दूध पिलाने मे वह सुख कहा ? इसी प्रकार शातिनाथ शक्ति का प्रयोग कर सकते थे परन्तु उन्हे शाति और प्रेम से काम लेने मे ही आनन्द आता था।

शातिनाथ भगवान् ने ससार को क्या–क्या सिखाया और किस प्रकार महारम्भ से निकालकर अल्पारम्भ मे लाये यह कथा लम्बी है। अतएव इतनी सूचना करके ही सतोष करता हू।

प्रभो ! आप जन्म, जरा औरे मरण, इन तीन बातो मे ही उलझे रहे तो आप शातिनाथ न बनते ! लेकिन आप तो ससार को शाति पहुचाने वाले और शाति का अनुभव–पाठ पढाने वाले हुए इस कारण हम आपकी भक्ति–पूर्वक वन्दना करते है। आपने कौन–सी शाति सिखलाई है, इस सम्बन्ध मे कहा है

'चइत्ता भारह वास चकवट्टी महढ्डिओ।'

चक्रवर्ती की विशाल समृद्धि प्राप्त करके भी आपने विचार किया कि ससार को शाति किस प्रकार पहुचाई जा सकती हे ? इस प्रकार विचार कर आपने शाति का मार्ग खोजा और ससार को दिखलाया। जैसे माता कामधेनु का नही वरन् अपना ही दूध बालक को पिलाती हे उसी प्रकार आपने शाति के लिए यन्त्र–मन्त्र–तन्त्र आदि का उपयोग नही किया किन्तु स्वय शातिस्वरूप बनकर ससार के समक्ष शाति का आदर्श प्रस्तुत किया। आपके आदर्श से ससार ने सीखा कि त्याग के बिना शाति नही प्राप्त की जा सकती। आपने ससार को अपने ही उदाहरण से बतलाया हे कि सच्ची शाति भोग मे नही, त्याग मे हे ओर मनुष्य सच्चे हृदय से ज्यो–ज्यो त्याग की ओर बढता जाएगा त्यो–त्यो शाति उसके समीप आती जाएगी।

त्याग का अर्थ यदि आप ससार छोडकर साधु बनना समझे तो वह गलत अर्थ नही होगा। परन्तु यहा इतना समझ लेना आवश्यक हे कि कस्तूरी किसी क घर हजार मन हो ओर किसी के घर एक मन हो तो चिन्ता नही

पर चाहिए सच्ची कस्तूरी। एक तोला रेडियम धातु का मूल्य साढे चार करोड रुपया सुना जाता है। उसके एक कण से भी बहुत–सा काम निकल सकता है पर शर्त यही है कि वह नकली, नही, असली हो। इसी प्रकार पूर्ण शाति प्राप्त करने के लिए आप पूर्ण त्याग कर सके तो अच्छा ही है। अगर पूर्ण त्याग करने की आप मे शक्ति नही है तो आशिक तो करना ही चाहिए। मगर ध्यान रखना जो त्याग करो, वह सच्चा त्याग होना चाहिए। लोक–दिखावे का द्रव्य–त्याग आत्मा के उत्थान मे सहायक नही होगा। आत्मा के अन्तरतम से उद्भूत होने वाली त्याग भावना ही आत्मा को ऊचा उठाती है। त्याग भले ही शक्ति के अनुसार थोडा हो परतु असली हो और शुद्ध हो, जो कि भगवान् शातिनाथ को चढ सकता हो।

जिन देवो ने त्याग करके शाति नही प्राप्त की उन्होने ससार को शाति नही सिखाई। महापुरुषो ने स्वय त्याग करके फिर त्याग का उपदेश दिया है और सच्ची शाति दिखाई है। महापुरुष त्याग के इस अद्भुत रेडियम को यथाशक्ति ग्रहण करने के लिए उपदेश देते है। अतएव आप पापो का भी त्याग करो। जिस समय कोई आप पर क्रोध की ज्वालाए फैके उस समय आप शाति के सागर बन जाइए। शातिनाथ भगवान् का नाम लीजिये। फिर आप देखेगे कि क्रोध करने वाला किस प्रकार परास्त हो जाता है ?

भगवान् शातिनाथ का जाप तो लोग आज भी करते है, परन्तु उनका प्रयोजन दूसरा होता है। कोई मुकदमा जीत लेने के लिए शातिनाथ को जपते है तो कोई किसी दूसरी झूठी बात को सच्ची सिद्ध करने के लिए। इस प्रकार अशाति के लिए शातिनाथ को जपने से कोई लाभ नही होगा । कोई भी अशाति उत्पन्न करने वाली चीज भगवान् शातिनाथ को स्वीकार नही हो सकती।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या विवाह आदि के अवसर पर भगवान् शातिनाथ का स्मरण नही करना चाहिए ? इसका उत्तर यह ह कि स्मरण तो करना चाहिये लेकिन यह समझकर कि विवाह– बन्धन की चीज है इसलिए हे प्रभो ! तू ऐसी शक्ति मुझे प्रदान कर कि म इस बन्धन मे ही न रहू। गृहस्थावस्था मे विवाह से फलित होने वाले चतुर्थ अणुव्रत का पालन कर सकू और शक्ति आने पर भोग को निस्सार समझ कर पूर्ण ब्रह्मचर्य का धारण कर सकू। इस प्रकार की धर्मभावना के साथ भगवान का नाम जपने से आपका कल्याण ही होगा।

व्यापार के निमित्त वाहर जाते समय आप मागलिक सुनते हैं ओर मुनि सुनाते हे। इसका यह अर्थ नही होना चाहिए कि व्यापार मे खूब धन कमाने के लिए आप सुने ओर मुनि सुनावे। व्यापार करते समय आप धन के चक्कर मे पडकर धर्म को न भूल जाए। आपको धन ही शरणभूत, मगलमय और उत्तम न दिखाई दे वरन् धर्म को उस समय भी आप मगलमय माने। इसी भावना से मुनि आपको मगल पाठ सुनाते हे ओर आपको भी इसी भावना से उसे सुनना चाहिए।

भोजन करते समय भी भगवान् शातिनाथ को स्मरण रक्खो ओर विचार करो कि—'प्रभो !' मुझे भक्ष्य—अभक्ष्य का विचार रहे। मगर ऐसा कोन करता हे ? और बेभान होकर अभक्ष्य भक्षण करते हे ओर ठूस—ठूस कर आवश्यकता से अधिक खा लेते है। वे सोचते है—अर्जीर्ण होगा तो औषधि की क्या कमी है ! अब औषध के भरोसे न रहकर भगवान् शातिनाथ को याद करो और सोचो कि मै शरीर का ढाचा रखने के लिए ही खाऊ और खाने मे बेभान न हो जाऊ।

एक प्रोफेसर का कहना है कि मै जब उपवास करता हू तो मेरी एकाग्रता बढ जाती है और मे अवधान कर सकता हू। अगर उपवास न करू तो अवधान नही कर सकता।

अगर आप अधिक उपवास न कर सके तो महीने मे चार उपवास तो किया करे। चार उपवास करने से भी ओषध लेने की आवश्यकता नही रहेगी। अगर प्रसन्नता और सद्भावना से उपवास करोगे तो धर्म का भी लाभ होगा। अगर आपने स्वेच्छा से उपवास न किये तो प्रकृति दूसरी तरफ से उपवास करने के लिए आपको बाध्य करेगी, ज्वर आदि होने पर भोजन त्यागना पडेगा।

भगवान् शातिनाथ ने छह खण्ड का राज्य त्याग कर ससार को सिखाया हे कि त्याग केसे किया जाता हे ओर त्याग मे कितनी निराकुलता तथा शाति हे। मगर तुमसे और कुछ नही वन पडता तो शातिनाथ भगवान् के नाम पर क्रोध करने का ही त्याग कर दो । जहा क्रोध का अभाव हे वहा ईश्वरीय शाति उपस्थित रहती हे। आप शाति चाहते हे तो उसे पाने का कुछ उपाय भी करो। एक भक्त कहते हे

कठिन कर्म लेहि जाहि मोहि जहा
तहा—तहा जन छन

प्रभो ! क्रूर कर्म न जाने कहा—कहा मुझे घसीट कर ले जाते ह । इसलिए हे देव ! म आपसे यह याचना करता हू कि जव कर्म मुझे परायी स्त्री

और पराये धन आदि की ओर ले जावे तब मै आपको भूल न जाऊ। आपकी दृष्टि मुझ पर उसी प्रकार बनी रहे जिस पकार मगर या कछुई की दृष्टि अपने अण्डो पर उन्हे पालने के लिए बनी रहती है।

गाधीजी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि मेरी माता जैन– धर्मी सन्त की भक्त थी । विलायत जाते समय मेरी माता मुझे उन सन्त के पास ले गई। वहा उसने कहा–मेरा यह लडका दारू, मास और परस्त्री का त्याग करे तब मै इसे विलायत जाने दे सकती हू, अन्यथा नही जाने दूगी। गाधीजी माता की आज्ञा को पर्वत से भी उच्च मानते थे। इसलिए उन्होने महात्मा के सामने मदिरा, मास और परस्त्री का त्याग किया।

गाधीजी लिखते है कि उस त्याग के प्रभाव से वे कई बार भ्रष्ट होने से बचे। एक बार जब वे जहाज से सफर कर रहे थे, अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण ही बच सके । गाधीजी जहाज से उतरे थे कि उन्हे उनके एक मित्र मिल गए। उन मित्र ने दो–एक स्त्रिया रख छोडी थी, जिन्हे जहाज से उतरने वाले लोगो के पास भेजकर उन्हे भ्रष्ट कराते और इस प्रकार अपनी आजीविका चलाते थे। उन मित्र ने पैसे कमाने के उद्देश्य से तो नही पर मेरा आतिथ्य करने के लिए एक स्त्री को मेरे यहा भी भेजा। वह स्त्री मेरे कमरे मे आकर खडी रही। मै उस समय ऐसा पागल–सा हो गया मानो मुझे बचाने के लिए साक्षात् परमात्मा आ गये हो। वह कुछ देर खडी रही और फिर निराश होकर लौट गई। उसने मेरे मित्र को उलाहना भी दिया कि तुमने मुझे किस पागल के पास भेज दिया । उस बाई के चले जाने पर जब मेरा पागलपन दूर हुआ तब मै बहुत प्रसन्न हुआ और परमात्मा को धन्यवाद दने लगा कि प्रभो ! तुम धन्य हो। तुम्हारी कृपा से मै बच गया।

भक्त लोग कहते है–नाथ तू इसी प्रकार मुझ पर दृष्टि रखकर मेरी रक्षा कर।

गाधीजी ने एक घटना और लिखी है। वे जिस घर मे रहते थे उस घर की स्त्री का आचरण वेश्या सरीखा था। एक मित्र का उसके साथ अनुचित सम्बन्ध था। उन मित्र के आग्रह से मे उस स्त्री के साथ तास खलन बैठा। खेलते–खेलते नीयत बिगडने लगी। पर उस मित्र क मन मे आया कि मे तो भ्रष्ट हू ही इन्हे क्यो भ्रष्ट होने दू। इन्होने अपनी माता क सामने जो पतिज्ञा की हे वह भग हो जायेगी। आखिर उन्होने गाधीजी को वहा से उठा लिया। उस समय मुझे बुरा तो अवश्य लगा लेकिन विचार करने पर बाद मे बहुत आनन्द हुआ।

मित्रो ! अपने त्याग की दृढता के कारण ही गाधीजी दुष्कर्मो से बचे रहे और इसी कारण आज सारे ससार मे उनकी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा है। उन्होने गुरू से त्याग की बानगी ही ली थी। उसका यह फल निकला तो पूरे त्याग का कितना फल न होगा ? आप पूरा त्याग कर सके तो कीजिए। न कर सके तो त्याग की बानगी ही लीजिये और फिर देखिए कि जीवन कितना पवित्र और आनन्दमय बनता है।

गाधीजी लिखते हैं कि मुझ पर आये हुए सकट टल जाने से मुझे मालूम हुआ कि परमात्मा की सत्ता अवश्य है। अगर आप लोग भी शातिनाथ भगवान् को याद रक्खे तो आपको भी परमात्मा के साक्षात् दर्शन होगे।

भाइयो और बहिनो ! कुकर्म जहर से बढकर है। जब इनकी ओर आपका चित्त खिचने लगे तब आप भगवान् शातिनाथ का स्मरण किया करो। ऐसा करने से आपका चित्त स्वस्थ होगा, विकार हट जायेगा और पवित्र भावना उत्पन्न होगी, आप कुकर्म से बच सकेगे और आपका जीवन पवित्र रहेगा। भगवान शातिनाथ का नाम पापो से बचने का महामन्त्र है।

शातिनाथ भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त करके पच्चीस हजार वर्ष तक सब जीवो को शाति प्रदान की। आप भी अपनी योग्यता के अनुसार दूसरो को शाति पहुचाए। कोई काम ऐसा मत कीजिए जिससे किसी को अशाति पहुचती हो। आपका ज्ञान, ध्यान, पठन–पाठन आदि सब ऐसे होने चाहिए जो शातिनाथ को पसन्द हो। अगर आप शातिनाथ भगवान को हृदय मे धारण करके प्राणी मात्र को शाति पहुचाएगे तो आपको भी लोकोत्तर शाति प्राप्त होगी।

आज भगवान् शातिनाथ की प्रार्थना की है। शातिनाथ भगवान् के नाम से शाति प्राप्त होती है। अतएव यह समझ लेना आवश्यक है कि भक्ति और शाति मे क्या सबध है ? और सच्ची शाति क्या है तथा वह कैसे प्राप्त हो सकती है ? आज इसी विषय पर कुछ विचार प्रकट करूगा।

प्रेमी, जिसके हृदय मे प्रेम–भक्ति है, शाति इसलिए चाहते है कि मेरे प्रेम मे कोई बाधा उपस्थित न हो। जैसे किसान चाहता है कि मेरी खेती मे कोई विघ्न उपस्थित न हो जाये खेती को कीडे या मृग आदि पशु न खा जाए और किसी प्रकार की उपाधि खडी न हो जाये इसी प्रकार जिसने प्रेम–भक्ति की खेती उपजाई है वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि मेरी इस खती मे कोई विघ्न उपस्थित न हो। वह कहता है–परमात्मा ! यह ससार विघ्नो का न हो। वह कहता है–परमात्मा! यह ससार विघ्नो का मूल है। इसम विघ्न भरे ह। मुझे इन विघ्ना से बचा। इन दु खो से मेरी रक्षा कर।

विघ्न क्या है ? और विघ्नो की उत्पत्ति कहा से होती है ? यह समझ लेना भी आवश्यक है। विघ्न तीन प्रकार के होते है–(1) आधिभौतिक (2) आधिदैविक और (3) आध्यात्मिक।

भौतिक पदार्थों से दुःख होना जैसे काटा लग जाना किसी दूसरे पदार्थ से चोट लग जाना कपड़ा अन्न घर आदि न मिलना या इच्छा के विरुद्ध मिलना आधिभौतिक विघ्न कहलाता है।

जो विघ्न अनायास आ पडता है वह आधिदेविक कहलाता है। जेसे अतिवृष्टि होना अनावृष्टि होना अग्नि वायु आदि के द्वारा आपत्ति होना आदि।

तीसरा विघ्न आध्यात्मिक है। यह इन दोनो से वहुत गम्भीर और वडा है। यह आध्यात्मिक विचारो से उत्पन्न होता हैं। क्रोध, अहकार लोभ तृष्णा आदि से कष्ट पाना भविष्य की आशा या भूतकाल के विचारो से, चिन्ताओ से आत्मा को दुःख होना आध्यात्मिक विघ्न कहलाता है। इसके समान ओर कोई दुःख नही है।

इन विघ्नो से आत्मा दुर्वल हो जाती है ओर दुर्वल हो जाने के कारण प्राय अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाती है। इससे भक्ति मे शाति नही मिलती। यही कारण हे कि भक्त–जन परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि भगवान्। तू हमे शाति दे जिससे भक्ति मे उपस्थित होने वाले विघ्न शात हो जाए। भक्त प्रार्थना करते हे

> **शाति जिनेश्वर सायब सोलमा,**
> **शातिदायक तुम नाम हो सुभागी।**
> **विघन न व्यापे तुम सुमिरन थकी,**
> **नासै दारिद्रय दुःख हो सुभागी ।।**

इस प्रकार सभी ससारी जीव शाति चाहते है। पर उनका उद्देश्य भिन्न–भिन्न होता है। अधर्मी पुरुष अधर्माचरण मे और धार्मिक पुरुष धर्माचरण मे विघ्न न होने की कामना से शाति की इच्छा करता है। चोर भी अपने काम मे विघ्न न आने की ही इच्छा से शकुन देखता है।

धर्मनिष्ठ पुरुष परमात्मा से शाति चाहता हे क्योकि उससे मिली हुई शाति से किसी को दुःख नही होता। दूसरो से चाही हुई शाति द्वारा यदि एक को सुख होता हे तो दूसरे को दुःख होता हे। मगर परमात्मा से चाही हुई शाति से किसी को भी दुःख नही होता।

शाति के अनेक रूप हे। एक शाति ऐसी होती है, जिसके मिलने से मनुष्य अधिक गफलत मे पड जाता हे । आलसी वनकर पाप मे डूबा रहता है और दुष्कर्म करता हे। ऐसी शाति वास्तविक शाति नही, घोर नरक मे ले जाने वाली अशाति है। दूसरे प्रकार की शाति के मिलने से आत्मा उत्कर्ष की ओर बढती जाती हे। शास्त्र मे इसी लिए पुण्य के दो भेद किये हें –(1) पापानुबन्धी पुण्य, (2) पुण्यानुबन्धी पुण्य ।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का साम्राज्य मिला ओर सभी प्रकार के सासारिक वैभव भी प्राप्त हुए परन्तु वह साम्राज्य ओर वेभव उसे सातवे नरक मे ले गया। इसके विपरीत चित्र मुनि, जो उसके पूर्व भव के भाई थे, आनन्द भोग कर मोक्ष मे पधारे। चित्र मुनि कितनी सम्पत्ति के स्वामी थे, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि वे एक करोड सोनैया प्रतिदिन दान करते थे। ऐसी अक्षय सम्पत्ति होने पर भी वे उनमे आसक्त नही हुए। इसी कारण इस लोक का आनन्द–सुख भोग कर वे शाश्वत सुख के अधिकारी बने। तात्पर्य यह हे कि ससार के भोग भोगने वाले प्राणी दो प्रकार के होते हे–एक तो मिश्री की मक्खी सरीखे जो मिश्री का रस तो चूस लेती है पर उसमे फसती नही–चूस कर उड जाती हे। दूसरे लोग नाक से निकलने वाले बलगम पर बैठने वाली मक्खी के समान होते हैं। जैसे इस मक्खी को यथेष्ट रस भी नही मिलता, बलगम मे उसके पख भी फस जाते हे ओर अन्त मे मृत्यु का आलिगन करना पडता हे। इसलिए भक्त–जन कहते हे कि परमात्मा की भक्ति करके मिश्री की मक्खी की तरह रहो। इससे ससार का ऐश्वर्य भोगने के बाद भी कल्याण का मार्ग प्राप्त कर सकोगे। सार यह हे कि अगर आप भोगोपभोगो का सर्वथा त्याग नही कर सकते तो भी कम से कम उसमे लिप्तगृद्ध–मूर्छित मत वनो।

भक्त कहते हें हे शातिनाथ भगवान् ! मे तेरी सहायता से शाति पाने की आशा करता हू।

जैन सहायक शाति जिनन्द तू,
तेने कमी न कोय हो सुभागी ।

जिसे तेरी सहायता प्राप्त हे उसे किस चीज की कमी हे ? उसका इच्छित कार्य तो सिद्ध हुआ ही समझना चाहिए।

कई कहते हे कि हम परमात्मा को भजते हे फिर भी हमारी आकाक्षाए पूरी नही होती। पर ऐसा कहने वाला को अपनी आकाक्षाआ का पता नही ह। उन्हे पहले यह तो समझ लेना चाहिए कि वे कल्पवृक्ष या

चिन्तामणि से मागना क्या चाहते है—विष या अमृत । जब मन यही निश्चय करने मे असमर्थ है तो फिर उन्हे शाति मिले कैसे ? मगर आप यह निश्चय करेगे कि मै किसी का बुरा नही चाहता उद्योगी बनना चाहता हू तो आपको अवश्य ही शातिनाथ भगवान से सहायता मिलेगी। मगर आप तो यह चाहते है कि हमे मसनद के सहारे पडे–पडे ही सब कुछ मिल जाये। उद्योग तनिक भी न करना पडे। किन्तु भक्त जन आलसी बनने के लिए परमात्मा से सहायता नही चाहते। वे आलस्यमय विचार नही करते। वे आलस्य पूर्ण जीवन को धिक्कारते है। इस विषय मे एक दृष्टान्त लीजिए –

मुसलमानो के एक पेगम्बर एकान्त जगल मे बैठकर, पीपल का एक–एक पत्ता जलाकर पुस्तक को याद करते थे। जब एक पत्ता जल जाता तो दूसरा पत्ता जलाकर वह फिर पढने लगते। इस कार्य मे वह इतने मग्न थे कि दूसरी ओर उनका ध्यान ही न जाता था। वह इसी प्रकार उद्योग करते रहे।

पेगम्बर की यह तल्लीनता देखकर उसके पास खज्जाखजर अर्थात् भूले को राह बताने वाला फरिश्ता आया। वह आकर पैगम्बर के पास खडा हुआ परन्तु पेगम्बर बोला नही। वह अपने काम मे तल्लीन रहा, फरिश्ते की ओर आख उठाकर भी उसने न देखा। आखिर फरिश्ते ने स्वय ही उससे कहा—क्या कर रहे हो ?

पेगम्बर– क्या देखते नही हो ?

फरिश्ता– देखता हू कि तुम पढ रहे हो। मगर मै कहता हू कि तुम इस प्रकार एक–एक पत्ता जलाकर कब तक पढा करोगे ? तुम मुझसे प्रार्थना करो तो मै अभी तुम्हे आलिम फाजिल बना दू।

पेगम्बर—तुम्हारा नाम क्या हे ?

फरिश्ता—खज्जाखजर अर्थात् भूले को राह बताने वाला।

पेगम्बर—तुम अपने काम पर जाओ। जो भूला हो उसे राह बताओ। मै भूला नही हू। अपनी राह पर ही हू।

फरिश्ता—तुम राह पर केसे हो ?

पेगम्बर—मे इस प्रकार उद्योग करके पढ रहा हू सो यही विद्या मेरे काम आने वाली हे। तुम्हारे दिमाग का बताया हुआ इल्म मेरे काम का नही हे। मेरे काम तो वही इल्म आएगा जो मे अपने उद्योग से सीखूगा। तुम्हारी दी हुई विद्या अनायास मेरे पास आएगी तो अनायास ही चली भी जाएगी। इसलिए तुम वहा जाओ जहॉ कोई गफलत मे पडा हो आलस्य मे डूबा हो।

मित्रो । अधिकाश लोग चाहते है कि हमे कोई काम न करना पडे। मगर आलस्य मे जीवन व्यतीत करने वाले परमात्मा के नाम की महिमा नही जानते। परमात्मा के नाम की महिमा गम्भीर हे और उसको समझे बिना काम नही चल सकता। परमात्मा के नाम की महिमा को आलसियो ने विकृत कर दिया है। वे आलसी बनने के लिए उसके नाम का स्मरण करते हे। ज्ञानी पुरुष आलस्य मे पडे रहने के लिए परमात्मा के नाम का स्मरण नही करते, बल्कि उद्योगी बनने के लिए उसकी सहायता चाहते है।

(ख)

परमात्मा की प्रार्थना करना मुख्य धर्म हे। वह प्रार्थना दो प्रकार की होती है–एक अन्तर्मुखी, दूसरी बहिर्मुखी। अभी शातिनाथ भगवान् की जो प्रार्थना की गई है, उसका अर्थ भी दोनो प्रकार से हो सकता है। अधिकाश लोग प्रार्थना का बहिर्मुख अर्थ भी समझते है। सास–बहू की लडाई हो तो सास चाहती है, बहू पर विजय प्राप्त हो। भाई–भाई मे लडाई होने पर एक दूसरे पर विजय पाने के लिए दोनो भगवान् से प्रार्थना करते हे। बाप–बेटा, पति–पत्नी ओर गुरु–चेला आदि सब का यही हाल है। ऐसी अवस्था मे परमात्मा को क्या करना चाहिए ? अर्थात् परमात्मा किसकी सहायता करे ओर किसकी न करे ? उसके भक्त दोनो हैं। वह किस पर प्रसन्न हो और किस पर क्रुद्ध हो ? परमात्मा की वास्तविकता न समझ कर आपस मे लडती–झगडती एक स्त्री, दूसरी से कहती है– 'भगवान् तेरा नाश करे। इस लडाई के समय परमात्मा का नाम आने से लोग समझते हे कि वह किसी का भला ओर किसी का बुरा करता हे। इस तरह वे परमात्मा का नाम तो अवश्य सीख लेते हैं, परन्तु उसका यथार्थ स्वरूप नही समझ पाते।

अन्तर्मुखी प्रार्थना मे सब एक हो जाते हे। कोई बडा या छोटा नही रहता। समदृष्टि की दिव्य ज्योति जगाने के लिए अन्तर्मुखी प्रार्थना करने पर कोई विघ्न नही रहता।

वहिर्मुखी प्रार्थना करने वाले दूसरो का नाश चाहकर या दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा करके शाति चाहते हे किन्तु अन्तर्मुखी प्रार्थना करने वाले यह चाहते हे कि मुझमे क्रोध की अशाति हे अत मेरा क्रोध नष्ट हो जाये। पग–पग मुझे अभिमान छलता हे। इस अभिमान के कारण वडी अशाति रहती हे यहा तक कि खाना–पीना भी अच्छा नही लगता नीद भी

नही आती। रावण और दुर्योधन को सब सुख प्राप्त होने पर भी इसी अभिमान ने चैन नही लेने दी । इसलिए हे प्रभो ! मेरे अभिमान का नाश हो जाये।

एक मा के दो बेटे हो और वे दोनो आपस मे झगडते हो तो मा किसकी विजय चाहेगी ? वह तो यही चाहेगी कि दोनो शात हो जाए। जब माता का प्रेम ऐसा है तो क्या परमात्मा माता से छोटा है? वह एक का पक्ष लेकर दूसरे का नाश चाहेगा ? इसलिए परमात्मा की अन्तर्मुखी प्रार्थना करनी चाहिए जिससे वास्तविक शाति प्राप्त हो।

ईश्वर की स्तुति करना और धर्म पालन करना एक ही बात है। धर्म का पालन करके ईश्वर की स्तुति करना अन्तर्मुखी स्तुति है और धर्म का पालन न करते हुए स्तुति करना बहिर्मुखी स्तुति है। आत्मा का शाश्वत कल्याण अन्तर्मुखी प्रार्थना से ही हो सकता है।

17. श्री कुंथुनाथ जी

प्रार्थना

कुंथु जिनराज तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बांह दृढ गहिये।। 1।।
भवोदधि डूबतां तारो, कृपानिधि आसरो थारो।
भरोसो आपको भारी, विचारो विरुद उपकारी।। 2।।
उमाहो मिलन तो तोसै, न राखो आतरो मोसै।
जैसी सिद्ध अवस्था तेरी, तैसी चैतन्यता मेरी।। 3।।
करम–भ्रम जाल को दपट्यो, विषय सुख ममता मे लपट्यो।
भ्रम्यो हूं चहूं गति माही, उदयकर्म भ्रम की छांही।। 4।।
उदय को जोर है जौलो, न छूटे विषय सुख तौलो।
कृपा गुरुदेव की पाई, निजातम भावना भाई।। 5।।
अजब अनुभूति उर जागी, सुरत निज रूप मे लागी।
तुम्ही हम एकता जाणूं, द्वैत भ्रम–कल्पना मानू।। 6।।
'श्रीदेवी' सूर' नृप नन्दा, अहो सरवज्ञ सुखकन्दा।
'विनयचन्द' लीन तुम गुन मे, न व्यापे अविद्या मन मे।। 7।।

परमात्मा की प्रार्थना करने मे आत्मा का विकास होता हे। परमात्मा ओर आत्मा मे कितना सम्बन्ध हे आज इस पर थोडा विचार करना हे। यद्यपि यह विषय ऐसा नही हे कि जल्दी ही समझ मे आ जाये ओर एकदम कार्यरूप मे परिणत कर दिया जाये। फिर भी धीरे– धीरे उस ओर लक्ष्य होने ओर आगे वढने से मनुष्य कभी ध्येय पर पहुच ही जाता हे।

कुन्थु जिनराज ! तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो।

हे कुन्थुनाथ प्रभु ! तेरे समान ओर कोई देवता मुझे दिखाई नही देता।

त्रिलोकीनाथ तू कहिये हमारी बाह दृढ गहिये।

तू त्रिलोकीनाथ है। इसलिए मै प्रार्थना करता हू कि तू मेरी बाह पकड। तेरे सिवाय मै अपनी बाह किसके हाथ मे दू ? ससार मे तेरे समान और कोई भी देव भरोसा देने वाला नही। मै सबको ढूढ–खोजकर तेरे पास आया हू। तू मेरी बाह दृढता से पकड।

मित्रो ! भगवान से यह कहने का हक किसको है ? जब तक ऐसा कहने का अधिकार प्राप्त न हो ऐसा कहना उचित नही है। अगर आप अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करके भगवान से इस प्रकार निवेदन करे तो आपकी इच्छा पूर्ण हुए बिना नही रहेगी।

आप अपने अन्त करण को टटोल कर कहिये कि क्या इस समय आपको ऐसा कहने का अधिकार है कि यदि तू त्रिलोकीनाथ बना है तो मेरा हाथ पकड नही तो तू त्रिलोकीनाथ मत कहला ! तेरा और मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। इसलिए साहसपूर्वक कहता हू कि मेरा हाथ पकड, ऐसा कहने से पहले आपको अपने कर्त्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

आश्रय उसका लिया जाता है जिसमे आश्रय देने की शक्ति हो। परन्तु आश्रय लेने पर ही आश्रय मिलेगा अन्यथा नही। पवन सर्वदेशीय शक्तिमान है, अर्थात् वह सब के साथ समान बर्त्ताव करता है। साप, मनुष्य, पशु आदि सभी को वह श्वास देता है। किसी से यह नही कहता कि तेरे पास नही आऊगा फिर भी श्वास तो तभी मिलेगा जब उसे खीचा जायेगा। बिना खीचे वह भी नही आ सकता। पवन को सर्वव्यापक मान कर अगर कोई श्वास न खीचे और नाक बन्द कर ले तो वह मर जायेगा या जीता रहेगा ?

मर जायेगा !'

सर्व्यापी होने पर भी जो पवन को अपना कर ग्रहण करता है, वह उसी के पास जाता है। इसी प्रकार त्रिलोकीनाथ भगवान् यद्यपि सर्वदेशीय है तथापि जिसने उन्हे अपना लिया उसी ने उन्हे पाया है।

यहा यह आशका की जा सकती है कि भगवान् वीतराग है। उन्हे किसी से राग–द्वेष नही है। वह किसकी बाह पकडे ? इसके अतिरिक्त अगर वह अरूपी सच्चिदानद है तो किसी की बाह नही पकडता है। फिर उसकी प्रार्थना अनावश्यक है। इसका समाधान करना आवश्यक है। कल्याण–मन्दिर स्तोत्र मे कहा है

त्व तारको जिन! कथा भविना त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त ।

यद्वा दृतिस्तरति तज्जलमेव नून–
मन्तर्गतस्य पवनस्य किलानुभाव ।।

कौन कहता है कि तू जगत का तारक है ? अगर तू जगत् का तारक होता तो जगत् डूबता ही क्यो ? धन्वन्तरि के होते हुए कोई रोगी रहे और क्षीरसमुद्र की मौजूदगी मे कोई प्यासा बना रहे तो आश्चर्य की बात हे। इससे तो यही अनुमान होता है कि तू तारक नही है। मगर इसमे भी सन्देह नही कि तू तारक अवश्य है। जो तेरा आश्रय लेते हैं अर्थात् अपने हृदय मे तुझे धारण करते है, वे अवश्य तिर जाते है।

ससार की ओर दृष्टि लगाकर देखो तो मालूम हो जायेगा कि परमात्मा किस प्रकार तारक है ? मशक को यो ही पानी मे डाल दो तो वह डूब जायेगी। अगर उसमे पवन भर दिया जाये और मुह बन्द कर दिया जाये तो वह डूबेगी नही, पानी पर तैरेगी।

निश्चय ही मशक पवन के प्रभाव से तैरती है। इसी प्रकार मशक मे वायु की तरह जिसके हृदय मे परमात्मा विराजमान होगा, वही ससार–सागर से तिर सकता है। यद्यपि भगवान् त्रिलोकीनाथ सर्वव्यापक है, पर जब तक हम अपनी बाह उन्हे दृढता से न थमा दे अर्थात् उनकी भक्ति पर विश्वास करके उसमे तल्लीन न हो जाए, तब तक हम तिरने की आशा कैसे कर सकते है ? इसीलिए ज्ञानी–जन कहते है–मशक के लिए जैसा पवन हे मेरे लिए वैसा ही तू है।

भरोसो आपको भारी, विचारो विरुद उपकारी।

मुझे केवल आपका ही भरोसा है। मेरी बाह आप पकड लीजिए। किसी भी समय, केसे भी कर्म उदय मे आवे मुझे तेरा ही ध्यान बना रहे।

मशक पर चाहे जेसे चित्र बने हो ओर चाहे जेसा रग चढा हो वह तब तक नही डूबेगी जब तक उसमे से हवा बाहर न निकल जाये। इसी प्रकार ससार मे चाहे सुख हो या दु ख हो, गरीबी हो अथवा अमीरी हो या कगाली हो, इन बातो की मुझे चिन्ता नही हे। केवल तू अपनी अनन्य ज्योति के साथ मेरे हृदय मे विराजमान रहे, वस यही मे चाहता हू, ससार के सब पदार्थो के होने या न होने से काम चल जाये परन्तु तेरे विना काम न चले। ऐसा दृढ विश्वास मुझे प्रदान कर।

मेरे हृदय मे एक बात ओर आई हे। वह भी कह देता हू। एक कवि सरोवर के किनारे खडा था। उसने देखा कि सूर्य के ताप से सरोवर का जल सूख रहा हे। कई पक्षी सरोवर के किनारे के वृक्षो पर बेठे हैं ओर भ्रमर कमल

रस पीने के लिए उड रहे है। सरोवर मे मछलिया भी है। यह सब देखकर कवि ने सोचा–सरोवर सूख जाये या न सूखे, इन पक्षियो को इस बात की परवाह नही है। अगर सूख गया तो पक्षियो का क्या बिगडेगा ? वे अपने पखो से आकाश मे उडकर दूसरे सरोवर पर चले जाएगे। और ये भौंरे, जो इस समय सरोवर के कमलो का मधुपान कर रहे है सरोवर के सूखने पर उडकर दूसरे फूलो पर चले जाएगे। परन्तु बेचारी यह मछलिया कहा जाएगी ? ऐसा विचार कर कवि सरोवर से अनुनय करने लगा–हे सर ! तेरे सूख जाने की चिन्ता इन पक्षियो और भवरो को नही है परन्तु इन दीन अनन्यशरण मछलियो की क्या गति होगी ? यह तेरे ही साथ जन्मी है और तेरे ही साथ मरेगी। इसलिए तू इनके वास्ते सजल बना रह। इनके लिए तेरे सिवाय और गति नही है।

कवि की इस उक्ति को सुनने का अभिप्राय यह है कि आज लोग पक्षियो और भवरो की तो मनुहार करते है पर बेचारी मछलियो को कोई पूछता तक नही ! जो लोग झूठी प्रशसा करना जानते है उनका सत्कार होता है और अपने आश्रितो को दुत्कारा जाता है। किन्तु याद रखना चाहिए कि झूठी प्रशसा करने वाले पक्षियो और भौरो की तरह उड जाएगे और जल को निर्मल रखने वाली तथा जल की शोभा बढाने वाली मछली के समान आश्रित लोग मछली की ही तरह मिट जाएगे। ऐसा समझ कर आश्रित लोगो के साथ प्रेम रखने मे ही बडप्पन है।

मित्रो ! परमात्मा से प्रार्थना करो कि मै मीन हू और तू सरोवर है। मे अपने शरीर के लिए प्रार्थना नही करता। पौद्गलिक शरीर तो अनन्त बार मिला है। पर यह दीन आत्मा रूपी मीन तेरे ही आश्रित है। अतएव तेरे प्रेम का पानी न सूखे, यह प्रार्थना है।

(ख)

कुन्थु जिनरात तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो।

भगवान् कुन्थुनाथ है । परमात्मा की प्रार्थना मे अमोघ शक्ति है। अमोघ उसे कहते है जो निष्फल न जावे। परमात्मा की प्रार्थना की शक्ति सदैव सफल है। दुनिया मे कई लोग अपनी बडाई के लिए यह विज्ञापन किया करते है कि हमारी दवा रामबाण है। हमारा इलाज और कार्य रामबाण है। अर्थात् राम का बाण चूके तो हमारी दवा का भी लक्ष्य चूके–लाभ न करे। कई लोग रामबाण के नाम पर इस प्रकार का विज्ञापन करके अपना व्यवसाय चलाते है। मगर मै कहता हू कि परमात्मा की प्रार्थना अमोघ है।

शका हो सकती है कि जिस प्रकार व्यवसायी अपना व्यवसाय चलाने के लिए दवा को रामबाण—अमोघ कहते हैं, उसी प्रकार प्रार्थना के विषय मे भी तो नही कहा जाता है ? शकाशील के लिए सर्वत्र शका को स्थान है किन्तु परीक्षा और पहचान करने से शका का निवारण भी हो सकता है। परमात्मा प्रार्थना की शक्ति अमोघ और सफल हे, यह बात मिथ्या प्रशसा मे नही कही गई है। और यह भी स्पष्ट है कि ऐसा कहने वाले का इसमे कोई स्वार्थ नही है। यह बात सर्वथा सत्य है और जिन्होने परीक्षा की हे उन्हे किसी तरह का सन्देह भी नही है।

राम के बाण हमने नही देखे। केवल ग्रथो मे उनकी अमोघता का वर्णन आया है और इसी आधार पर हम विश्वास करते हैं कि राम के बाण व्यर्थ नही जाते थे। वह ग्रथ सत्यपुरुषो ने नि स्वार्थ भावना से बनाये हे, इस कारण उन पर विश्वास किया जाता है। वास्तव मे चाहे चन्द्र से आग गिरने लगे और पृथ्वी उलट जाये, किन्तु सत्पुरुष झूठ कदापि नही लिख सकते। उनके वचन किसी भी अवस्था मे झूठे नही हो सकते। ऐसे सत्पुरुष जब राम का बाण अचूक कहते है तो समझना चाहिए कि वे राम—बाण के सम्बन्ध मे उतना नही कह रहे हे, जितना राम के नाम की शक्ति के विषय मे कह रहे हैं। ऐसी स्थिति मे बाण के विषय मे कही गई बात पर अविश्वास करने का क्या कारण हो सकता है ? राम के विषय मे वह मिथ्या कथन क्यो करेगे ? अगर आप राम के विषय मे कही गई उनकी बात सत्य मानते हे तो जो बात उन्होने कही है वही बात परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे भी कही गई हे। जिस तरह उनकी कही बात पर विश्वास करते हो, उसी तरह परमात्मा की प्रार्थना की शक्ति के विषय मे भी पूर्वकालीन अनेक महात्माओ ने जो कुछ कहा हे, उस पर विश्वास करो। प्रार्थना की शक्ति के विषय मे हम अपनी ओर से कुछ नही कहते हे, पूर्वकाल के महात्माओ का कथन दोहराते है। हम उनकी उच्छिष्ट वाणी ही सुनाते हे। अतएव प्रार्थना की शक्ति के विषय मे सन्देह करने का कोई कारण नही हे।

परमात्मा की प्रार्थना मे अमोघ शक्ति हे, यह बात कहना तो सरल है लेकिन उसे प्राप्त करना कठिन मालूम होगा। परन्तु महापुरुष को कोई वात कहना तो कठिन जान पडता हे करना उतना कठिन नही जान पडता। इसलिए हमे सावधान होकर वे ही शब्द निकालने चाहिए जिन्हे हम अमल मे ला सकते हो। जितना कर सकते हो उतना ही करो ओर जो कुछ कहते हो उसके करने की अपने ऊपर जिम्मेदारी समझो। इस तरह स्वच्छ चित्त

होकर एकाग्रतापूर्वक परमात्मा की पार्थना करने ओर परमात्मा–प्रार्थना द्वारा उसकी अमोघ पाक्ति पाप्त करने वाला सुकृति का भण्डार वन जाता है।

पश्न किया जा सकता हे–आपने परमात्मा की पार्थना के विषय मे जो कुछ कहा है सो ठीक है मगर परमात्मा कहा हे ? उसका स्वरूप क्या हे ? साम्पदायिक भेद के कारण परमात्मा के स्वरूप मे इतनी भिन्नता मालूम होती है आर उसकी पार्थना करने की रीति मे भी इतनी विभिन्नता है कि इस दशा मे परमात्मा के किस रूप को ओर पार्थना की किस विधि को सत्य माने ? इन वातो का ठीक–ठीक पता केसे लग सकता हे ?

इस पश्न का समाधान करने के लिए महापुरुषो ने वहुत सरल मार्ग बताया हे। इसी प्रार्थना मे कहा हे

तुम्ही–हम एकता जानू, द्वैत भ्रम कल्पना मानू।

हे प्रभो! जो तू हे वही मे हू और जो मे हूँ वही तू है। 'य परमात्मा स एवाह योऽह स परमस्तथा। सोऽह और ह–स इस प्रकार हे प्रभो ! तुझ मे और मुझ मे कुछ अन्तर ही नही है।

यह कथन ऊपरी नही, भक्तो की गहरी आत्मानुभूति का उद्गार है। जो आत्मा ओपाधिक मलिनता को एक ओर हटाकर, अन्तर्दृष्टि होकर–अनन्यभाव से अपने विशुद्ध स्वरूप का अवलोकन करती है और समस्त विभावो को आत्मा से भिन्न देखती है उसे सोऽह के तत्त्व की प्रतीति होने लगती है। बहिरात्मा पुरुष की दृष्टि मे स्थूलता होती है अतएव वह शरीर तक, इन्द्रियो तक या मन तक पहुच कर रह जाती हे, और उसे इन शरीर आदि मे ही आत्मत्व का भान होता हे, मगर अन्तरात्मा पुरुष अपनी पैनी नजर से शरीर आदि से परे सूक्ष्म आत्मा को देखता हे। उस आत्मा मे असीम तेजस्विता, असीम बल अनन्त ज्ञानशक्ति ओर अनन्त दर्शनशक्ति देख कर वह विस्मित–सा रहता हे। उसके आनन्द का पार नही रहता। ऐसी ही अवस्था मे उसकी वाणी से फूट पडता हे

सिद्धोऽह सुसोऽह अणतणाणादि–गुणसमिद्धोऽह।

अर्थात्–मे सिद्ध हू, मै शुद्ध हू, मै अनन्त ज्ञानादि गुणो से समृद्ध हू।

इस प्रकार जव परमात्मा मे और आत्मा मे अन्तर ही नही है, तब उसके रूप आदि के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह होने का क्या कारण हे ?

लेकिन फिर यह प्रश्न खडा हो सकता है कि कहा तो मोह के चक्कर मे पडकर नाना प्रकार की अनुचित चेष्टा करने वाले और घृणित काम करने

वाले हम लोग और कहा शुद्ध स्वरूप परमात्मा ! हमारी और उसकी समानता भी नही हो सकती तो एकता तो होगी ही कैसे? इस प्रश्न का उत्तर प्रकारान्तर से ऊपर आ गया है। मतलब यह है कि इस तरह उपाधिभेद तो अवश्य है, लेकिन वस्तु का शुद्ध स्वरूप देखने वाले निश्चय नय के अभिप्राय से और सग्रह नय के अनुसार 'एगे आया' आगम वाक्य से परमात्मा एव आत्मा मे कोई अन्तर नही है। 'एगे आया' इस कथन मे सिद्ध भी आ जाते हैं और समस्त ससारी जीव भी आ जाते हैं। जो कुछ भेद है, उपाधि मे है, आत्मा मे कोई भेद नही है। मूलद्रव्य के रूप मे परमात्मा और आत्मा का कोई भेद होता तो आत्मा समस्त विकारो और आवरणो को दूर करके परमात्मा नही बन सकती थी। अगर कोई भी आत्मा, परमात्मा नही बन सकती तो समस्त साधना निष्प्रयोजन हो जाती। मगर ऐसा नही है। साधक पुरुष अपनी साधना द्वारा आत्मा के स्वाभाविक गुणो का विकास करता हुआ और विकारो को क्षीण करता हुआ अन्त मे पूर्णता और निर्विकारता प्राप्त कर लेता है और वही परमात्मा–दशा है। उपाधि के कारण आत्मा और परमात्मा मे जो भेद है उसी को मिटाने के लिए प्रार्थना करनी होती है। अतएव उपाधि का भेद होने पर भी यह समझने की आवश्यकता नही कि आत्मा मे और परमात्मा मे मूल से कोई वास्तविक भेद है।

एक बात और है कि कर्म करने वाला तथा कर्म का फल भोगने वाली यह आत्मा ही है। फिर प्रार्थना करने वाली और प्रार्थना का फल पाने वाली भी आत्मा ही ठहरती हे या नही ? ऐसी अवस्था मे शका का कारण ही क्या है ?

भावनिक्षेप दो प्रकार का हे—आगम भावनिक्षेप ओर नोआगम भावनिक्षेप। आगम भावनिक्षेप के अनुसार भगवान् महावीर मे तल्लीन रहने वाला स्वय ही महावीर हे। जब क्रोध का स्मरण करने वाला अर्थात् क्रोध के उपयोग मे उपयुक्त आत्मा क्रोध मान मे उपयुक्त आत्मा मान, उच्च मे उपयुक्त आत्मा उच्च और नीच के उपयोग मे उपयुक्त आत्मा नीच मानी जाती हे तो भगवान् के उपयोग मे उपयुक्त (तल्लीन) आत्मा भगवान् ही हे, ऐसा मानने मे सदेह केसे किया जा सकता हे ? ऐसी अवस्था मे जिस पानी से मोती निपजता हे उसे कीचड मे डालकर खराव क्यो करना चाहिए ? प्रार्थना के उस पवित्र पानी को आत्मा मे क्यो न उतारना चाहिए कि जिससे वहुमूल्य मोती वने।

जिस प्रार्थना की शक्ति अमोघ हे वह प्रार्थना करने की तवीयत किसकी न होगी ? ऐसी प्रार्थना सभी करना चाहेगे मगर देखना यह हे कि

अन्तराय कहा है ? वस्तुभेद से तो अन्तराय के अनेक पकार है मगर सामान्य रूप से स्वार्थबुद्धि आने से अन्तराय होता है। यो तो ससार मे स्वार्थो की सीमा नही है किन्तु जहा स्वार्थ नही है वहाँ पर भी लोग काल्पनिक विचारो मे पडकर ऐसे विचार कर बैठते है जो प्रार्थना के मार्ग मे अन्तराय करने वाले हो जाते है। काल्पनिक विचारो मे घुल जाना उन पर आरूढ हो जाना पार्थना के मार्ग मे बडा अन्तराय है। इस अन्तराय की चिन्ता अनेक कवियो और शक्तिशाली पुरुषो को भी हुई है। सर्वसाधारण के ऐसे काल्पनिक विचार देखकर उन्हे भी चिन्तित होना पडा है। कहा जा सकता है कि किसी मे अगर कोई बुराई है तो उन्हे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ? दूसरा कोई कुमार्ग मे जाता है तो जाये, हम उसके लिए चिन्तित क्यो हो ? मगर बेटे के बिगडने पर बाप को चिन्ता होती है या नही ? बिगडे बेटे की चिन्ता करना बाप का फर्ज माना जाता है। आप स्वय अपने बेटे की चिन्ता करते है। यह बात दूसरी है कि आपने अपनी आत्मीयता का दायरा सकीर्ण बना लिया है। आप अपने बेटे–पोते आदि घरवालो को ही अपना समझते है और उनके अतिरिक्त दूसरो को गैर समझते है। मगर जिनका ममत्व फैल कर प्राणीमात्र तक पहुच गया है, ससार के समस्त प्राणियो को जो आत्मवत् मानते है, जिन्होने 'एगे आया' का सिद्धात अपने जीवन मे घटाया है, उनके लिए तो सभी जीव अपने है, कोई पराया नही है। ऐसी दशा मे जैसा आप अपने बेटे की चिन्ता करते है उसी प्रकार उदार भाव वाले ज्ञानी पुरुष प्रत्येक जीव की चिन्ता करते है। इस प्रकार की चिन्ता के कारण ही उन्होने परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहा है

कौन जतन विनती करिये।
निज आचरण विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये।। कौन।।
जानत हु मन वचन कर्म करि परहित कीने तरिये।
सो विपरीत देखि के पर सुख बिन कारण ही जरिये।। कौन।।

वह कहते हैं–हे नाथ ! हे प्रभो ! मैं आपकी विनती कैसे करू? कहा तो तुम्हारे समान मेरा स्वरूप कहा 'एगे आया' मानकर तेरे और मेरे स्वरूप को एक मानने वाला मे और कहा मेरे आचरण ? मै इन आचरणो को देखकर विचार मे पड जाता हू कि हे नाथ ! किस प्रकार तेरी प्रार्थना करू। किस मुह से मे तेरे सामने आऊ ?

जो मनुष्य राजा की चोरी करता है या राजा की आज्ञा तथा उसके बनाये नियमो की अवज्ञा करता है उसे राजा के सामने जाने मे सकोच होगा

या नही ? अवश्य होगा । क्योकि उसका आचरण उसे भयभीत करेगा। इसी प्रकार भक्त कहता हे–प्रभो । में अपना आचरण देखकर स्वय ही डरता हू। मेरा आचरण ही प्रकट कर रहा हे कि मेने तेरी सत्ता को नही माना ओर तेरी चोरी की हे।

भक्त अपने मे ऐसी क्या कमी देखते हैं ? यह तो सभी जानते हैं कि तन, मन, धन ओर जन से जितना भी वन सके, परोपकार करना चाहिए। परोपकार करना धर्म हे, यह कोन नही जानता ? 'परोपकाराय सता विभूतय' ओर 'परोपकार पुण्याय' इत्यादि उपदेश वाक्य भी वहुत से लोगो ने सुने हैं। भक्त–जन कहते है–'मुझ से परोपकार होना तो दरकिनार, में इससे विपरीत ही वर्त्ताव करता हू। मेने किसी को सुखी नही वनाया, इतना ही नही, वल्कि मेरी करतूत तो यह है कि दूसरे को सुखी देखकर मेरे दिल मे ईर्ष्या का दावानल सुलगने लगता है। इस प्रकार मेरे हृदय मे उपकार की भावना के वदले अपकार की भावना उत्पन्न होती हे। दूसरे ने मुझसे सुख नही पाया, सम्पत्ति नही पाई, फिर भी मुझसे उसकी सुख–सम्पत्ति नही देखी जाती हे। जव मेरा यह स्वभाव हे तो में परोपकार क्या करूगा ? ओर अपनी इस निकृष्ट दशा मे तेरी प्रार्थना क्या करू ?

प्रभु की प्रार्थना मे यह अन्तराय सबसे बडा हे। अगर आप किसी का उपकार नही कर सकते तो न सही मगर कम से कम इतना तो करो कि दूसरो को देख कर जलो मत। स्वय किसी का उपकार नही कर पाते या प्रत्युपकार नही कर सकते तो खेर, लेकिन जिन्होने आपके ऊपर उपकार किया हे, उनका उपकार तो मत भूलो। इतना तो कर ही सकते हो । इतना करने मे भी कल्याण हे।

18. श्री अरहनाथ जी

प्रार्थना

अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी साहब सीधो।। 1।।
चेतन भज तू अरहनाथ ने, ते प्रभु त्रिभुवन राय।
तात 'सुदर्शन 'देवो' माता, तेहनो पुत्र कहाय।। 2।।
क्रोड जतन करता नही पामे, एहवी मोटी माम।
ते जिन भक्ति करो ने लहिये, मुक्ति अमोलक ठाम।। 3।।
समकित सहित किया जिन भगती, ज्ञान दर्शन चारित्र।
तप वीरज उपयोग तिहारा, प्रगटे परम पवित्र।। 4।।
स्व उपयोग सरूप चिदानन्द, अगम, अगोचर आप।
निरविकल्प निकलक निरजन, अद्भुत ज्योति अमाप।। 6।।
ओलख अनुभव अमृत याको, प्रेम सहित रस पीजे।
हू–तू छोड विनयचन्द' अन्तर आतमराम रमीजे।। 7।।

आज भक्ति के रूप मे परमात्मा की प्रार्थना की जाती है। भक्ति मे क्या शक्ति हे ओर भक्ति करने से किस शाति की प्राप्ति होती है, यह बाते समझ लेना अत्यन्त उपयोगी हे, किन्तु इन्हे समझने के लिए विस्तार की अपेक्षा हे। थोडे–से समय मे और शव्दो मे इनका पर्याप्त विवेचन होना सम्भव नही हे। फिर भी सक्षेप मे समझाने का प्रयत्न किया जाएगा।

जो भक्ति करता हे, जिसने भक्ति की है या जिसे भक्ति का अनुभव हे, उसके लिए कुछ कहना और न कहना–दोनो बरावर है। हा, जो भक्ति की शक्ति से अनभिज्ञ रहे, उनके लिए ही कुछ कहने की आवश्यकता है।

जो वस्तु करोडो उपाय करने पर भी नही मिल सकती वह परमात्मा की भक्ति से सहज ही मिल जाती हे। प्राणी साधारण वस्तु से भी प्रेम के द्वारा ही लाभ उठा सकता हे दूसरे उपाय से नही। प्रेम–भक्ति ही ऐसी चीज है

जो पराये को अपना बना लेती है। बिना भक्ति के बाप वेटे का और बेटा बाप का नही होता। बेटा बाप की भक्ति न करे, उसकी सेवा न करे तो वह अधिकारी होने पर भी पिता की सम्पत्ति से वचित रह जाता है। इसके विपरीत जो भक्ति करता है वह सम्बन्धी न होने पर भी उसके सर्वस्व का स्वामी बन जाता है। तात्पर्य यह है कि हृदय का दुराव न रख कर अगर सेवाभक्ति की जाती है तो जिसकी भक्ति की जाती है खुशी–खुशी अपने प्राण तक दे देता है।

जिस प्रकार पिता को भक्ति से प्रसन्न करके पुत्र उसकी सम्पत्ति को प्राप्त करता है, उसी प्रकार परमात्मा की भक्ति से हमे सभी कुछ प्राप्त हो जाता है।

व्रत करो, नियम करो, तपस्या की अग्नि मे शरीर को सुखा डालो, लेकिन आपके हृदय मे अगर विश्वास नही है तो यह सब निरर्थक है। विश्वास करने और उसमे तल्लीन होने से ही सब कार्य सिद्ध होते हैं। अतएव भक्ति मे तल्लीनता होनी चाहिए।

(ख)

प्रार्थना का विषय अगाध है। जिस प्रकार गोताखोर को एक–एक मोती मिल जाने से उसे लत पड जाती है और वह लत फिर गोता लगाने की प्रेरणा करती, उसी प्रकार भक्त–जन परमात्मा की अनन्त गुणराशि रूपी महासागर मे गोता लगाते है और गुण–रत्न उपलब्ध करके निहाल हो जाते हैं। इस प्रकार प्रार्थना मे कहा है

चेतन ! भज तू अरहनाथ को।

अर्थात्–हे चेतन ! तू अरहनाथ भगवान् का भजन कर। चेतन का अर्थ आत्मा हे। मे आत्मा हू, तुम आत्मा हो ओर सभी जीवधारी आत्मा है। चेतन्य की अपेक्षा से सभी जीव एक हे। फिर भी मनुष्य योनि मे चेतन का विकास अपेक्षाकृत अधिक होता हे। अत मनुष्य की योनि पाकर विषेष रूप से परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। जिसने मनुष्यजन्म पाकर परमात्मा का भजन नही किया ओर जड को भजा, उसने मानो चिन्तामणि रत्न को पाकर वृथा गवा दिया।

परमात्मा के ध्यान मे एक विशाल वस्तु खडी हे। उसे मे आप लोगो को कंसे समझाऊ ? वहा पहुच कर वाणी मूक हो जाती हे। इस कारण जानते हुए भी कहने मे असमर्थ हू। जब मेरी यह दशा हे तो महाज्ञानी के मन मे यह वस्तु कसी होगी ?

ससार मे तुम विचित्र रचना देखते हो पुरुष तथा स्त्री की चेष्टा देखकर खुश हो जाते हो पर यह क्या नही सोचते कि यह चेष्टा किसकी है ऊपर को देखकर भीतर का मत भूलो। मुर्दा कुछ नही कर सकता। जो कुछ करता है आत्मा ही करता है। चित्रकार चित्र बनाता है पर दोनो मे कौन बडा है ? चित्र बडा है या चित्रकार ?

चित्रकार !

फिर भी लोग चित्र पर मुग्ध हो जाते हैं, और चित्रकार को भूल जाते है। इसलिए भक्त–जन पार्थना करते है

चेतन! भज तू अरहनाथ को, ते प्रभु त्रिभुवन–राया।

भाइयो ! यह चिदानन्द कौन है जिसकी रचना से यह ससार ऐसा है?

मकडी अपने शरीर मे से तन्तु निकाल कर जाल बनाती है। वह जाल बनाती है दूसरे जीवो को फसाने के लिए, परन्तु भान भूल कर स्वय ही उसमे उलझ कर मर जाती है। ऐसी ही दशा इस ससार की हो रही है। मनुष्य अपनी चित् शक्ति से सुख प्राप्त करने के लिए कार्य करते है किन्तु उन्हे सुख के बदले दु ख की प्राप्ति होती है। जीव की अनादि काल से ऐसी आदत पड रही है। इस आदत को सुधारने के लिए ही ज्ञानी–जन कहते है कि अगर तू चेतन है तो परमात्मा को भज। आत्मा और परमात्मा की जाति एक ही है। इस कारण परमात्मा जिस पद पर पहुच चुके है, उस पर तू भी पहुच सकता है। एक कवि ने कहा है –

आतम परमातम पद पावे,
जो परमातम मे लौ लावे।
सुन के शब्द कीट भृगी का,
निज जन मन की सुधि विसरावे।
देखहु प्रकट ध्यान की महिमा,
सोऊ कीट भृग होय जावे।।

पृथ्वी पर पेट घिस–घिस कर चलने वाला एक कीडा है। वह पृथ्वी से पाव अगुल भी ऊपर नही उठ सकता। उसे एक भवरी मिल गई। भवरी ने उसे उठा कर अपने घर मे रख लिया और घर को मिट्टी से मूद दिया। कहते हैं, 17 दिन मे वह कीडा परिपक्व हो जाता है। तब तक भवरी उस कीडे के आसपास गुन–गुन करके मन्त्र सा सुनाया करती है। वह लट भवरी की सगति से आसमान मे उडने लगती है। तो हे आत्मा ! तू विश्वास कर परमात्मा की सगति से तू आकाश मे इस तरह उडने लगेगी कि तेरी गति का

ओर–छोर नही होगा। आप लोगो को पेट–घिसनी आदत बुरी लगती हो अर्थात बार–बार जन्म–मरण करने से अगर आप उकता गये हो तो उससे छूटने का उपाय यही है। यदि बुरा न लगता हो तो फिर क्या कहा जाये ?

कवि ने कहा है

क्रोड जतन करता नही लहिये, एक मोटी काम।

अर्थात् करोडो यत्न करने से भी जो काम नही होता, वह काम आत्मा को परमात्मा के समर्पण कर देने से हो जाते हैं।

मित्रो ! आप पेट घिसते रहना चाहते हैं या आकाश मे उडना चाहते है ? आप मेरे पास आये हो तो जो मैं कहता हू वह करो। आपको पेट घिसते नही रहना है, आकाश मे उडना है तो आत्मा को थोडी–थोडी ऊची करो। ऐसा करने से वह धीरे–धीरे ऊची ही ऊची उठती चली जायेगी।

आकाश मे उडने का अर्थ यह नही है कि आप पक्षियो की तरह उडने लगे, वल्कि सासारिक पुद्गलो का मोह त्यागना आकाश मे उडना है। किसी दूसरे ने तुम्हे बन्धन मे नही बाधा है, वरन् तुमने आप ही अपने को बधन मे जकड लिया है। सासारिक पदार्थो से जब आत्मा चिपट जाती है तो उसे परमात्मा नही दीखता। जिस दिन आपके अन्त करण मे यह भाव जागेगे कि आप भूल कर रहे हैं–पुद्गल से प्रेम कर रहे है–उसी दिन आत्मा को परमात्मा मिलते देर नही लगेगी। एक कवि की कविता से मैं इस बात को समझाने का प्रयत्न करूगा। उसका आशय यह है तेरे पति को किसी नीच ने भरमा दिया है। इस कारण वह तुझे कष्ट देता है। तेरे पति का कोई दोष नही है। वह तो सगति से भरम रहा है।

इसके उत्तर मे सखी कहती है–उस भरमाने वाले का अपराध नही। भूल तो मेरे पति की है जो खुशी से उसके पास जाता है।

इस वात को आप भलीभाति समझे नही होगे। मैं चिदानन्द के विषय मे यह बात कह रहा हू। चिदानन्द की दो स्त्रिया है–एक सुमति ओर दूसरी कुमति ! कुमति सुमति से कहती है–इस चिदानन्द को छह मे से एक ने वहकाया है। इस कारण यह पुद्गल द्रव्य के इशारे पर नाचता है। पुद्गल इसे नाना प्रकार से नाच नचाता है। सुमति ने कहा–पुद्गल जड है। उसकी क्या ताकत कि वह चेतन्य को नचा सके। वह तो चिदानन्द की ही भूल है तो अपने स्वरूप को न पहचान कर पुद्गल के भ्रम मे पड रहा है।

ससार का यह मायाजाल वास्तव मे पुद्गल की ही रचना है। पुद्गल जड है आर मिलना तथा विछुडना उसका धर्म है। मगर चिदानन्द ने उस मायाजाल का अपना मान लिया ह। ज्ञान होने पर माया चिदानन्द के

पास ठहर नही सकती परन्तु जब तक अज्ञान हे तब तक यह भ्रम मे पडा हुआ है। जड वस्तुओ का कभी सयोग होता हे कभी वियोग होता है। फिर भी चिदानन्द वास्तविकता के मर्म को नही समझता ओर यह मेरा यह मेरा' इस प्रकार की ममता के जाल मे फसा हुआ है।

मित्रो ! अगर आपको पेट-घिसनी आदत छोडनी हो तो विचार करो कि यह शरीर तुम्हारा है या तुम इस शरीर के हो ? इस शरीर को शरीर ना देने वाला चिदानन्द ही है। तुम मोती को अपना कहते हो परन्तु अपना कहने वाला चिन्दानन्द हे। अतएव मोती के तुम न बनो। भलीभाति समझ लो कि तुम मोती के नही हो मोती तुम्हारा हे। इन दोनो प्रकार के कथन मे क्या अन्तर हे ?

अगर तुम मोती के होओगे तो मोती तुमको नही छोडेगा और तुम मोती की रक्षा के लिए अपने को निछावर कर दोगे। मोती के लिए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, नीति-अनीति ओर पुण्य-पाप आदि का भी विचार न करोग। इसके विपरीत अगर मोती मेरा है, ऐसा सोचोगे तो मोती के लिए धर्म का त्याग नही करोगे। मोती जाये तो जाये, मगर धर्म न चला जाये, इस बात का पूरा ध्यान रक्खोगे।

जेन धर्म की यह विशिष्टता है कि उसकी छत्रा-छाया मे आश्रय लेने वाला कोई भी पुरुष हजार रुपया देने पर भी किसी क्षुद्र जीव को भी मारने के लिए तैयार न होगा। मगर यह तुम्हारी उपज नही है। बल्कि पूर्वाचार्यो ने कुल धर्म मे इस मार्यादा को सम्मिलित कर दिया है। तुम्हारी कमाई तो तब समझे जब झूठ न बोलो। आज लोग एक दमडी के लिए झूठ बोलने मे सकोच नही करते। यह कितने दु ख की बात है ! यह बात सिर्फ गृहस्थो मे ही नही, वल्कि कतिपय साधु भी धर्म का कर्म न समझ कर असत्य भाषण करने से नही डरते। लोकमान्यता ओर प्रतिष्ठा चले जाने के भय से साधु होकर भी धर्म के कार्य मे सत्य पर नही टिकते है।

अगर कोई गृहस्थ कीडी को न मारे किन्तु गरीब का कचूमर निकाल डाले तो उसे क्या दयावान् कहा जा सकता है ?

यह सब पुद्गल के मायाजाल का प्रताप है। अगर वास्तविक कल्याण चाहते है तो आपको इस मायाजाल से नाता तोडना होगा। स्व-पर का भेदज्ञान करना होगा। भेदविज्ञान हो जाने पर कल्याण का मार्ग आपके लिए खुल जायेगा ओर अन्त मे आप आत्मा के बदले परमात्मा बन जाएगे।

19. श्री मल्लीनाथ जी

प्रार्थना

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी,
'कुम्भ' पिता 'परमावती' मइया तिनकी कुवरी ।। टेर।।
मां नी कूंख कन्दरा मांही उपना अवतारी।
मालती कुसुम–मालानी वांछा, जननी उर धारी।। 1।।
तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो, त्रिभुवन प्रियकारी।
अद्भुत चरित्र तुम्हारी प्रभुजी, वेद धर्मो नानी।। 2।।
परणन काज जान सज आए, भूपति छह भारी।
मिथिला पुर घेरी चौतरफा, सेना विस्तारी।। 3।।
राजा 'कुम्भ' प्रकाशी तुम पै, बीती विधि सारी।
छहु नृप जान सजी तौ परणन, आया अहकारी।। 4।।
श्रीमुख धीरज दिधी पिता ने, राखो हुशियारी।
पुतली एक रची निज आकृति, थोथी ढकवारी।। 5।।
भोजन सरस भरी सा पुतली, श्री जिन सिणगारी।
भूपति छ बुलवाया मन्दिर, बिच बहु दिन टारी।। 6।।
पुतली देख छहु नृप मोह्या, अवसर विचारी।
ढक उघार दियो पुतली को भभक्यो अन्न भारी।। 7।।
दुसह दुर्गन्ध सही ना जावे, उठ्या नृप हारी।
तब उपदेश दियो श्रीमुख से मोह दशा टारी।। 8।।
महा आसार उदारिक देही, पुतली इव प्यारी।
सग कियां भटके भव दु ख मे, नारी नरक वारी।। 9।।
भूपति छ प्रतिबोध सुनि हो सिद्धगति सम्भारी।
'विनयचन्द' चाहत भव–भव मे भक्ति प्रभु थारी।। 10।।

यह भगवान मल्लिनाथ की पार्थना की गई हे। परमात्मा की प्रार्थना जीवन के उच्च होने की डोरी हे। पार्थना से आत्मा ऊर्ध्वगामी बनती है। पार्थना करने वाला आर जिसकी पार्थना की जाये वे केसे हो, इसमे मतभेद हो सकता हे। यो तो पत्येक आस्तिक किसी न किसी रूप मे परमात्मा की पार्थना करता हे ओर पार्थना द्वारा आत्मा को ऊपर चढाने की इच्छा रखता हे परन्तु सब पार्थनाओ मे विशेष कोन–सी हे यह विचारणीय बात है।

आर्य देश के निवासियो द्वारा की जाने वाली परमात्मा की प्रार्थना मे ओर आर्य देश से वाहर वालो की प्रार्थना मे वहुत अन्तर है। वह अन्तर इतना अधिक हे जितना आकाश ओर पृथ्वी मे हे। आर्य देश से बाहर के लोगो की प्रार्थना मे गुलामी का भाव भरा रहता हे। वे समझते हे कि ईश्वर एक व्यक्ति विशेष हे ओर हम सब उसके अधीनस्थ जीव हें। हम अपनी सहायता करने के लिए उससे प्रार्थना करते है। जेसे राजा के सामने किसी चीज की याचना करने से राजा सहायता देता हे उसी प्रकार ईश्वर हम से बडा है, हम उसकी प्रार्थना करेगे तो वह हमारी कुछ मदद करेगा।

आर्य देश से वाहर के लोगो की प्रार्थना की मूल दृष्टि यह है। जब इग्लेड ओर जर्मनी मे युद्ध चला था तब बादशाह तथा अन्य ईसाई लोग गिरजाघर मे जाकर प्रार्थना करते थे। वह प्रार्थना क्या थी ? बस, यही कि 'हे परमात्मा! जर्मनी को हरा दे ओर हमे विजय दे।' मगर यह बात विचारणीय हे कि परमात्मा ऐसा क्यो करेगा ? क्या वह इग्लैड का ही है ? जर्मन प्रजा क्या उसकी प्रजा नही हे ? इसके सिवा जेसे इग्लेड ने परमात्मा से अपनी विजय की ओर जर्मनी के पराजय की प्रार्थना की है, उसी प्रकार जर्मनी मे भी तो अपनी विजय ओर शत्रु के पराजय की प्रार्थना की जाती थी। ऐसी दशा मे तुम्ही सोचो कि परमात्मा किसकी प्रार्थना स्वीकार करे और किसकी अस्वीकार करे वह कहा जाए ? किसे जय दिलावे और किसे पराजय दिलावे? ईश्वर के लिए तो दोनो देश समान है। अगर यह ख्याल किया जाता हो कि ईश्वर तुम्हारा ही हे वह शत्रु–देश का नही है, तब तो ईश्वर का ईश्वरत्व छिन जाता हे। फिर या तो कोई ईश्वर न ठहर सकेगा या अलग–अलग देशो के अलग–अलग ईश्वर मान लेने पडेगे।

फिर भी यह बीमारी इतने से ही शात न होगी । जब किसी एक ही देश के दो प्रातो मे झगडा खडा होगा तब प्रात–प्रात का ईश्वर भी अलग–अलग हो जाएगा । इस प्रकार ईश्वर की अनेकता का रोग फैलते–फैलते व्यक्तियो तक पहुचेगा ओर एक–एक व्यक्ति का ईश्वर भी अलग–अलग

कल्पित करना पडेगा। अब सोचना चाहिए कि ऐसा ईश्वर क्या दरअसल ईश्वर कहलाएगा ? लोगो मे आपस मे लडने की पाशविक वृत्ति इतनी अधिक बढी हुई है कि वे अपने साथ अपने भगवान को भी अछूता नही छोडना चाहते। ईश्वर को भी लडाई मे शामिल करना चाहते है। अगर उनका वश चले तो वे साडो की तरह अपने-अपने भगवान् को लडा-भिडा कर तमाशा देखे ओर अपनी पशुता प्रदर्शित करे। पर उनसे ऐसा करते नही बनता । इस कारण परमात्मा से अपनी विजय और शत्रु की पराजय की प्रार्थना करके ही सन्तोष मान लेते है।

लेकिन इस सम्बन्ध मे आज कुछ नही कहना हे। हम तो यहा सिर्फ प्रार्थना के मूल मे रही हुई भावना की ही समालोचना करना चाहते है । उक्त कथन से यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि आर्य देश से बाहर के लोगो की प्रार्थना मे बडा बेढगापन है। उनके द्वारा की जाने वाली प्रार्थना की जड मे गुलामी का भाव भरा हुआ है। उनके समीप ईश्वर के लिए भी समानता का सिद्धात नही है। वे ईश्वर को भी समभावी के रूप मे नही देखना चाहते ।

वास्तव मे आत्मा और ईश्वर एक ही हे। केवल प्रकृति के भेद से ओर कर्म की उपाधि से आत्मा ओर परमात्मा मे अन्तर दिखाई देता हे। लोगो ने भ्रम ओर अज्ञान के वश होकर ईश्वर को व्यक्ति-विशेष के रूप मे कल्पित कर लिया हे । वास्तव मे ईश्वर कोई स्वतन्त्र व्यक्ति-रूप सत्ता नही है। वह आत्मा की शुद्ध ओर स्वाभाविक अवस्था हे ओर उस अवस्था को प्राप्त करने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार हे। ईश्वर कहता हे-कर्म का नाश करो। कर्म का नाश करने से में ओर तू एक हे। आज जो प्राणी ससारी हे कर्मो से लिप्त होने के कारण शरीरधारी है ओर अनेक प्रकार के कष्ट उठा रहा हे, वह कुछ दिन बीतने पर कर्मो को सर्वथा क्षीण करके, अशरीर बन कर परमात्मा हो जाता है। परमात्मा या सिद्ध कोई भिन्न व्यक्ति नही हे।

परमात्मा का यही आदेश हे-'मुझ मे ओर तुझ मे कोई मोलिक अन्तर नही हे। जो कुछ अन्तर आज दृष्टिगोचर होता हे वह सव ओपाधिक हे, आगन्तुक हे ओर एक दिन वह मिट जायेगा। इस ओपाधिक अन्तर को दवा दे मे ओर तू एक हो जाएगे।

20. श्री मुनिसुव्रतनाथजी

प्रार्थना

श्री मुनिसुव्रत साहिबा, दीनदयाल देवा तणा देव के।
तारण तरण प्रभु तो भणी उज्जल चित्त सुमरू नितमेव के ।। 1 ।।
हू अपराधी अनादि को, जनम–जनम गुना किया भरपूर के।
लूटिया प्राण छ कायना, सेविया पाप अठार करूर के।। 2 ।।
पूर्व अशुभ कर्तव्यता, तेहने प्रभु तुम न विचार के।
अधम उधारण विरुद छे सरण आयो अब कीजिये सार के।। 3 ।।
किचित पुन्य परभावथी, इण भव ओलख्यो श्रीजिन धर्म के।
निवतू नरक निगोदथी, अेहवो अनुग्रह करो परिब्रह्म के।। 4 ।।
साधुपणो नहि सग्रह्यो, श्रावक व्रत न किया अगीकार के।
आदरिया तो न आराधिया तेहिथी रूलियो हु अनत ससार के।। 5 ।।
अब समकित व्रत आदर्यो, तेने अराधी उतरू भवार के।
जनम जीतव सफलो हुवै इण पर विनवू वार हजार के।। 6 ।।
सुमति' नराधिप तुम पिता, धन–धन श्री 'पद्मावती' माय के ।
तस सुत त्रिभुवन तिलक तू, बदन 'विनयचन्द' सीस नवाय के ।। 7 ।।

श्रीमुनिसुव्रत सायबा !

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की यह प्रार्थना है। देखना चाहिए कि भक्त अपने भावो को भगवान् के समक्ष प्रार्थना द्वारा किस प्रकार निवेदन करते है, इस विषय को लेकर अनुभव होगा। आनन्ददायक वस्तु जितनी अधिक समीप होगी, उससे उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा। समुद्र की शीतल तरगे ग्रीष्म के घोर ताप से तपे पुरुष को शातिदायक मालूम होती हे तो अधिक सन्निकट होने पर और भी अधिक शाति पहुचाती है। पुष्प का सौरभ अच्छा लगता है लेकिन फूल जब अधिक नजदीक होता है तो उसकी खुशबू और ज्यादा

आनन्द देने वाली होती हे। इन लौकिक उदाहरणो से यह वात भलीभाति समझी जा सकती है कि परमात्मा की प्रार्थना जव समीप से समीपतर हो जाती है तब उसमे और भी अधिक माधुर्य प्रतीत होने लगता है। इस दशा मे प्रार्थना की सरसता बहुत कुछ वढ जाती है ओर उसमे अपूर्व आस्वाद आने लगता हे। परमात्मा की प्रार्थना का सन्निकट होना अर्थात् जिह्वा से ही नही, वरन् अन्तर से आत्मा से प्रार्थना का उद्भव होना। परमात्मा की प्रार्थना जव आत्मा से उद्भूत होती हे तब आत्मा परमात्मपद की अनुभूति के अलोकिक आनन्द मे डूब जाती हे। उस समय उसे बाह्य ससार विस्मृत-सा हो जाता है। उस समय के आनन्द की कल्पना अनुभवगम्य है, वाणी उसे प्रकट करने मे समर्थ नही है।

प्रार्थना अन्तरतर से हुई है या नही, यह जानने की कसोटी यही है कि अगर आपको प्रार्थना मे अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हुआ है, अद्भुत शात रस के सरोवर मे आप डूब गये हैं तो समझिए कि आपकी प्रार्थना समीप की हे। अगर आपको यह स्थिति प्राप्त नही हुई तो मानना चाहिए कि प्रार्थना आत्मस्पर्शी नही हे-ऊपरी हे ओर उससे प्रार्थना का उद्देश्य पूर्ण रूप से सफल नही हो सकता। प्रार्थना के मार्ग मे आपको और आगे बढना है-उच्चतर अवस्था के मार्ग मे आपको ओर आगे बढना हे- उच्चतर अवस्था प्राप्त करना हे ओर अपनी अपूर्णता को हटाना हे। जिस समय आपकी यह अपूर्णता दूर हो जायेगी, उस समय आपको ससार के विषयभोग तृण के समान तुच्छ ओर रसहीन प्रतीत होने लगेगे।

प्रश्न किया जा सकता हे कि क्या ऊपर से प्रार्थना वोलना उचित नही हे ? इसका उत्तर यह हे कि चाहे आपकी प्रार्थना अन्तरतर से उत्पन्न हुई हो ओर आप उसके रस का आस्वादन करते हो तव भी जिह्वा से प्रार्थना वोलना वन्द कर देने से व्यवहार उठ जायेगा। अगर आपने आजीवन मोन साध लिया होता, वार्तालाप करना भी स्थगित कर दिया होता तो प्रार्थना वोलना वन्द कर देना भी कदाचित् ठीक कहा जा सकता था, लेकिन जव तक आपने ऐसा नही किया-सासारिक कार्यो मे बोलना वन्द नही किया, तव तक प्रार्थना वोलना वन्द कर देना कहा तक उचित हे ? अगर आप रोटी-पानी का नाम लेना छोड चुके हो तो वात दूसरी हे। अन्यथा दुनिया भर की पचायत करो ओर प्रार्थना वोलना छोड दो तो यह बुद्धिमत्ता की वात नही हे। उपर्युक्त आतरिक प्रार्थना का अर्थ यह कदापि नही कि आप वाचनिक प्रार्थना न करे। उसका आशय यह हे कि जव आप वाचनिक प्रार्थना कर तो मन भी साथ

रहे। ऐसा न हो कि मन तो इधर–उधर भटकता फिरे और अकेली जीभ की पार्थना का स्वाद आत्मा आर मन को नही आएगा। वेचारी जीभ तो खाने–पीने का स्वाद चख सकती ह वह पार्थना के रस को नही चख सकती। पार्थना का असली रस अनुभव करना हे तो मन वचन और काय–तीनो से पार्थना करो। वाणी से पार्थना का जो पावन पीयूष–प्रवाह बहे, उसमे मन निमग्न होकर पवित्र वन जाये तो पार्थना से कल्याण होगा । जो मन पार्थना के अर्थपवाह से दूर भागता फिरेगा उसके पाप किस पकार धुलेगे ?

कल्पना कीजिए आपने किसी से पानी लाने के लिए कहा। आपके शब्द के आकर्षण से वह पानी ले आया। पानी आपके सामने आ गया। मगर पानी सामने आने से ही क्या प्यास वुझ जायेगी ? शब्द मे शक्ति है और उस शक्ति से पानी आ गया लेकिन पानी के आ जाने से प्यास नही वुझेगी । इसी प्रकार भूख लगने पर आपने भोजन मगवाया । भोजन आ गया, मगर भोजन आ जाने से भूख नही मिट सकती । पानी पीने से प्यास ओर भोजन करने से ही भूख मिटेगी। इस प्रकार प्रयोजन सिद्ध करने के लिए दो व्यवहार हुए–एक वस्तु का आकर्षण करने के लिए वोलना ओर दूसरा आकर्षित वस्तु का उपयोग करना । सासारिक कार्यो मे आप दोनो व्यवहार करने से नही चूकते लेकिन परमात्मा की प्रार्थना करने मे भूल होती है । आप प्रार्थना बोलते हे ओर वोलने से प्रार्थना का आनन्द रूपी जल आपके पास आता भी है, मगर जव तक आप उसका पान नही करेगे, तव तक आनन्द मिले कहा से, प्रार्थना के परिणाम स्वरूप फिर शाति मिले केसे? अतएव वाणी द्वारा ऊपर से प्रार्थना करो ओर मन के द्वारा आतरिक प्रार्थना भी करो। दोनो का समन्वय करने से आप कृतार्थ हो जाएगे । आपको कल्याण की खोज मे भटकना नही पडेगा। कल्याण आप ही खोज लेगा।

21. श्री नमिनाथ जी

प्रार्थना

'विजयसेन' नृप विप्राराणी', नमीनाथ जिन जायो।
चौसठ इन्द्र कियो मिल उत्सव, सुर नर आनन्द पायो।
सुज्ञानी जीवा ! भज लो जिन इकवीसवा।। टेर ।। 1।।
भजन किया भव–भवना दुष्कृत, दु:ख दुर्भाग्य मिट जावे।
काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा, दुर्मति निकट न आवे रे।। 2।।
जीवादिक नव तत्त्व हिये धर, हेय ज्ञेय समझीजे।
तीजो उपादेय ओलख ने, समकित निरमल कीजै रै।। 3।।
जीव अजीव बध, ये तीनों, ज्ञेय जथारथ जानो।
पुन्य पाप आस्रव परिहरिये, हेय पदारथ मानो रे।। 4।।
संवर मोक्ष निर्जरा निज गुण, उपादेय आदरिये।
कारण कारज जाण भली विध, भिन्न–भिन्न निरणो करिये रे।।5।।
कारण ज्ञान स्वरूप जीव को, काज क्रिया पसारो।
दोनू को साखी शुद्ध अनुभव आपो खोज तिहारो रे।। 6।।
तू सो प्रभु –प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो।
सच्चिद् आनन्दरूप 'विनयचन्द', परमातम पद भेओ रे।। 7।।

परमात्मा की प्रार्थना से आत्मा मे पवित्र भाव उत्पन्न होते हे। वे भाव किस प्रकार के होते हें यह वात अनुभव के द्वारा ही जानी जा सकती हे। आत्मा स्वय ही उसे जान सकती हे। जेसे सूर्य के प्रकाश को नेत्र द्वारा सूर्य के प्रकाश से ही जाना जा सकता हे, उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना की महिमा आगम द्वारा आत्मा से ही जानी जा सकती हे। उसे जानकर ज्ञानी पुरुपो के मुख से अनायास यह ध्वनि निकल पडती हे –

सुज्ञानी जीवा ! भजलो रे जिन इकवीसवां।

कहा जा सकता है कि यहा ज्ञानी को भगवान का भजन करने की पेरणा की गई है किन्तु ज्ञानी को भजन की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कहना कृतज्ञता नही कृतघ्नता है। पिता से धन लेने के पश्चात् यदि पुत्र यह विचार करता है कि अब पिता की सेवा करने से क्या लाभ है तो ऐसे पुत्र को क्या कहना चाहिए ?

कृतघ्न।

इसी पकार ज्ञान पाप्त हो जाने पर परमात्मा के भजन की क्या आवश्यकता हे ऐसा कहने वाला भी कृतघ्न हे। सोचना चाहिए कि ज्ञान की प्राप्ति हुई कहा से है ? ज्ञान की प्राप्ति परमात्मा की कृपा का ही फल है। अत उसकी प्रार्थना मे मग्न होकर स्तुति करना चाहिए, जिससे ज्ञान पतित न होकर धीरे–धीरे उसी परमात्मा के रूप मे पहुच जाये।

यह भी कहा जा सकता हे कि ज्ञानी भजन करे तो ठीक है, परन्तु जो लोग अज्ञान मे पडे हैं वे भजन करने के अधिकारी कैसे हो सकते है ? चोरी व्यभिचार, बालहत्या आदि सरीखे घोर अपराध करने वाले पापी हैं, उन्हे परमात्मा का भजन करने का क्या अधिकार हे ? इसका उत्तर यह है कि ओषध रोगी के लिए ही होती हे। जिस औषध का सेवन रोगी न कर सके उसका कोई महत्त्व नही, उसकी कोई उपयोगिता नही है।

परमात्मा का नाम पतितपावन है। अगर पतित लोगो को परमात्मा के भजन से अलग रक्खा जाये तो उसके पतितपावन नाम की महिमा कैसे रहेगी ? अतएव पापी को भी परमात्मा का भजन करने का अधिकार है। अलबत्ता यह ध्यान रखना चाहिए कि भजन पापो को काटने के लिए या पापो से मुक्त होने के लिए किया जाना चाहिए, पापो को बढाने के लिए नही। ठीक उसी प्रकार जेसे रोगो से मुक्त होने के लिए दवा का सेवन किया जाता हे, रोग बढाने के लिए नही। तत्त्व की सिद्धि के लिए ज्ञानी, अज्ञानी, पण्डित, मूर्ख आदि सब को परमात्मा का भजन करके पवित्र होना चाहिए।

प्रश्न किया जा सकता है कि परमात्मा की भक्ति से क्या प्राप्त होगा? इस प्रश्न का उत्तर देने मे कारण, कार्य और भाव की घटना समझना आवश्यक है। यह सब बाते बहुत सूक्ष्म हैं। इन्हे समझाने के लिए बहुत समय अपेक्षित हे। फिर भी सक्षेप मे कहने का प्रयत्न करूगा।

भजन करने से क्या लाभ हे, इस प्रश्न का उत्तर इसी प्रार्थना मे आ गया है। प्रार्थना मे कहा है–

काम क्रोध मद मत्सर तृष्णा दुर्मति निकट न आवे।

जिस भजन के करने से काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि दुर्भाव नष्ट हो जाते है, उसी को वास्तविक भजन समझना चाहिए। अथवा यो कहा जा सकता है कि इन दुर्भावो को नष्ट करने के लिए भजन किया जाता है।

ईश्वर के भजन या नामस्मरण मे ऐसा क्या चमत्कार है, जिससे आत्मा के समस्त दुर्भाव नष्ट हो जाते हैं ? यह भी समझ लेने की आवश्यकता है। लोग दूसरे कामो की खटपट मे पडे रहते हैं, ईश्वर के नाम से प्रेम नही करते । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होने ईश्वर के नाम की महिमा नही जानी । जो लोग अपना समय व्यर्थ नष्ट करते हैं, वे भी समय को परमात्मा का स्मरण करके सार्थक नही करते। परमात्मा का स्मरण करने वाले का चेहरा भव्य और नेत्र तेजस्वी होते है। उसके पास पाप टिक नहीं सकता। भक्त और अभक्त मे क्या अन्तर है, इसे भक्ति करने वाला ही भलीभाति समझ सकता है। अत परमात्मा के नाम का घोष हृदय मे अगर निरन्तर चलता रहेगा तो निश्चित रूप से आपके समस्त पाप भयभीत होकर भाग जाएगे। सम्भव है, आपको इस कथन पर विश्वास न आता हो। इसके लिए एक उदाहरण लो—क्या दीपक के पास अन्धेरा आता है ?

'नही ।'

'क्यो ?'

दीपक के प्रकाश से वह दूर ही रहता है।

'और दीपक यदि बुझ जाए तो ?

'अन्धेरा घेर लेगा ।'

'इस बात पर पूरा विश्वास हे ?

'हा ।'

मित्रो । आको दीपक पर इतना भरोसा हे किन्तु परमात्मा के नाम पर नही । आपने परमात्मा के नाम को दीपक के बराबरी भी नही समझा । भाइयो, जेसे दीपक के प्रकाश से अन्धेरा भाग जाता हे उसी प्रकार परमात्मा के नाम के अलोकिक प्रकाश से पाप भागेगे। आप दीपक पर जेसा विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार परमात्मा के नाम पर भी विश्वास रखिए।

ईश्वर भीतर ओर बाहर सब जगह प्रकाश देता हे। उसके प्रकाश से कोई जगह खाली नही हे। वह सब जगह देखता हे। चाहे आप कोठरी मे छिपकर कुछ करे चाहे प्रकट मे करे या मन मे सोचे पर उससे कुछ भी छिप नही सकता। आपके भीतर क्या हे यह परमात्मा को भली—भाति विदित ह। अगर आपको यह प्रतीत हो जाये कि ईश्वर सब जगह देखता हे ता

आपका मन नीच या बुरी वासना की ओर कैसे जाएगा ? आप जानते हो कि आपके साथ राजा है तो क्या आप चोरी करने का साहस करेंगे ?

नहीं ।

क्यो ?

'उनसे डरेंगे ।

आप सोचेंगे कि राजा के राज्य मे रहते हैं फिर उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य कैसे करे ? इसी तरह जो परमात्मा सर्वत्र है और जिसे आप सर्वत्र जानकर भजते हैं उसका निरन्तर ध्यान रहने से आपके हृदय मे बुरी वासना उत्पन्न नही होगी । हृदय मे परमात्मा होगा तो आप यही सोचेगे कि मेरी प्रत्येक भावना का मेरे प्रत्येक कार्य और सकल्प का भगवान् साक्षी है। मैं कुमार्ग की ओर कैसे जाऊ ?

अब आप सोचेगे कि– ऐसा तो साधु ही कर सकते है, हम गृहस्थो से ऐसी सावधानी नही निभ सकती। गृहस्थ तो जितनी देर साधु के पास बैठे या धर्मक्रिया करे उतना ही धर्म है। बाकी ससार मे तो सब पाप ही पाप है।' आपकी ऐसी ही भावना रहती है। पर आपको सोचना चाहिए कि यह भावना शास्त्र अनुकूल है या प्रतिकूल है ?

भगवान् ने उन लोगो को भी श्रावक कहा है जो सग्राम करने गये थे । क्या सग्राम मे गया हुआ श्रावक अपना श्रावकपन भूल गया था ? या सग्राम मे जाने से उसका श्रावकपन नष्ट हो गया था ? फिर क्यो सोचते हो कि मकान और दुकान मे तुम अपने धर्म का पालन नही कर सकते ?

आप कहेगे हम ससार मे जितने काम करते है, कुटुम्ब–परिवार का पालन–पोषण करने के लिए करते है। बिना पाप किये काम नही चलता।' यह कहना किसी अश मे सत्य हो सकता है, सर्वांश मे नही। गृहस्थ अगर अपनी मर्यादा मे रहकर कार्य करे तो वह धर्म का उपार्जन भी कर सकता है। परिवार का भरण–पोषण करने के लिए छल कपट, दगाबाजी, बेईमानी और अनीति करना आवश्यक नही है। न्याय नीति से और प्रामाणिकता से व्यवहार करने वाले का परिवार भूखा नही रहता। आप गृहस्थी मे एकात अधर्म मान कर व्यापार मे अनीति और अप्रामाणिकता को आश्रय देते है यह उचित नही है। प्रत्येक स्थिति मे मनुष्य अपने धर्म का यथायोग्य पालन कर सकता है। अतएव साधु–सतो के समागम से अन्त करण मे जो धर्म–भावना आप ग्रहण करते हे उसका व्यवहार ससार के प्रत्येक कार्य के समय होना चाहिए। जो भी कार्य करो धर्म को स्मरण करके करो। अपने अन्त करण को ऐसा

साध लो कि वह प्रत्येक दशा मे तुम्हारा मार्ग–दर्शक बन सके। सत्य को सदैव अपने सम्मुख रक्खे।

मित्रो ! सत्य पर विश्वास वेठ जाना वडा दुर्लभ हे। इस विश्वास की प्राप्ति के लिए परमात्मा का भजन करो। काम, क्रोध, मोह–कपाय को जीतने का प्रयत्न करो तो हृदय मे कभी पाप नही जागेगा। भगवान् के भजन से काम, क्रोध, मद, मत्सरता का नाश होता है। अतएव इनका नाश करने के लिए परमात्मा का भजन करना आवश्यक हे। कपट करने के लिए जो भजन किया जाता रहे, वह भजन नही हे। बिना किसी कामना के आत्मा को पवित्र करने के लिए किया गया भजन ही सच्चा भजन हे।

आप सोचते होगे कि प्रार्थना तो आप बोलते हैं पर वह चमत्कार जो प्रार्थना मे हम बतलाते हैं, क्यो दिखाई नही देता ? प्रार्थना करने पर काम, क्रोध आदि का नाश हो जाना चाहिए पर वह सब तो अब भी मौजूद है। इसका क्या कारण है ?

इस विषय को साकार करके समझना कठिन है, परतु यह देखना चाहिए कि प्रार्थना मे यह त्रुटि किस ओर से होती है ? प्रार्थना करते समय हमे भलीभाति समझना चाहिए कि जिसकी प्रार्थना की जा रही है वह कौन हे और इस प्रार्थना का उद्देश्य क्या है ?

आपस मे लडाई करने वाले दो मित्रो मे से एक ईश्वर से प्रार्थना करता हे– 'तू इस लडाई मे मेरी मदद कर जिससे न्याय मेरे पक्ष मे हो और प्रतिपक्षी का पतन हो जाये ।' क्या ऐसी प्रार्थना करने वाले ने ईश्वर का स्वरूप समझा हे ? उससे पूछा जाये–तू ईश्वर से प्रार्थना कर रहा हे, परन्तु तेरा पक्ष सच्चा हे या झूठा ? तब वह कहेगा–झूठा हे, इसीलिए तो प्रार्थना कर रहा हू।

अब जरा विचार कीजिए। एक वकील अगर सच्चे को झूठा ओर झूठे को सच्चा साबित करता हे तो वह झूठ मे शरीक हुआ कहलाएगा या नही?

'आवश्यक कहलाएगा ।'

उस वकील के लिए कहा जायेगा कि उसने पेसो के लिए धर्म वेच दिया। उसने पेसे के लोभ मे पडकर सच्चे को झूठा ओर झूठे को सच्चा वना दिया । हम उसे सलाह देगे कि क्या सत्य से तुम्हारा पेट नही भरता जो झूठ को अपनाते हो ?

जव एक वकील से हम ऐसा कहते हे तव ईश्वर को सच्चे को झूठा ओर झूठे को सच्चा वनाने के लिए याद करना क्या ईश्वर को पहचानना हे? ऐसा करने वाला क्या ईश्वर को न्यायी समझता हे ?

मित्रो ! आप ईश्वर को अन्यायी बनाते हो और फिर कहते हो उसकी प्रार्थना से काम–क्रोध आदि का नाश नही हुआ, यह कहा तक उचित है ? आप उल्टा आरोप लगाते है कि काम–क्रोध का नाश क्यो नही होता?

भाइयो ! ईश्वर की प्रार्थना मे कितना गुण है, यह बात जो अच्छी तरह समझ लेगा वह राग–द्वेष को बढाने के लिए तुच्छ लौकिक स्वार्थ–पूर्ति के लिए या किसी दूसरे को हानि पहुचाने के लिए उससे प्रार्थना कदापि नही करेगा । पर आज लोग चक्कर मे पडे हैं । वे ईश्वर को तभी मानना चाहते है जब वह सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बना दे ।

तो फिर ईश्वर की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर मे मै कहता हू कि ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए कि–'हे प्रभो ! क्रोध लोभ मोह आदि मेरे शत्रु है। तेरी शरण लिये बिना इन शत्रुओ का विनाश नही हो सकता। अतएव मुझे ऐसा बल दीजिए कि मै कभी झूठ न बोलू, किसी पर क्रोध न करू और अपने हृदय मे लोभ, मोह, मात्सर्य आदि उत्पन्न न होने दू।' अगर आप इस प्रकार की प्रार्थना करते हुए ईश्वर तथा धर्म पर विश्वास रक्खेगे तो आपको तीन लोक नही ललचाएगा।

मित्रो ! इस प्रकार दृष्टिकोण को शुद्ध और भावना को पुनीत करके परमेश्वर की प्रार्थना करो। आपका कल्याण होगा।

22. श्री नेमीनाथ जी

प्रार्थना

'समुद्रविजय' सुत श्री नेमीश्वर, जादव कुल को टीको।
रत्न कुख रानी 'शिवादेवी', तेहनो नन्दन नीको।।
श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे।। 1।।
सुन पुकार पशु की करुणा कर, जानि जगति फीको।
नव भव नेह तज्यो जीवन मे, उग्रसेन नृप–घी को।। 2।।
सहस्र पुरुष संग संजम लीधो, प्रभुजी पर उपकारी।
धन–धन नेम राजुल की जोडी, महा बालब्रह्मचारी।। 3।।
बोघानंद सरूपानन्द मे, चित्त एकाग्र लगायो।
आतम अनुभव दशा अभ्यासी, शुक्लध्यान जिन ध्यायो।। 4।।
पूर्णानन्द केवली प्रगटे, परमानन्द पद पायो।
अष्टकर्म छेदी अलवेसर, सहजानन्द समायो।। 5।।
नित्यानन्द निराश्रय निश्चल, निर्विकार निर्वाणी।
निरातंक निरलेप निरामय, निराकार निर्वाणी।। 6।।
एवो ज्ञान समाधि सयुत, श्री नेमीश्वर स्वामी।
पूरण कृपा 'विनयचन्द' प्रभु की, अब तो ओलख पामी।। 7।।

परमात्मा की यह स्तुति साधारण रूप मे हे। प्रेमी अपने प्रेम–पात्र को जिन शब्दो मे याद करता हे, भक्त भी कभी–कभी उन्ही शब्दो मे भगवान् को याद करता रहे। ऐसी प्रार्थना मे शब्दो का वास्तविक अर्थ न समझने के कारण सन्देह हो सकता हे किन्तु शब्दो का गूढ आशय समझ मे आते ही सन्देह और भ्रम दूर हो जाता हे।

परमात्मा 'मोहन गारो' हे किन्तु किसे मोहित करता हे ? रागी किसे मोहता ह और वीतराग किसे मोहित करता हे इस वात पर गम्भीरता के साथ विचार करना चाहिए। विचार करने पर गूढ आशय समझ मे आ जायगा ओर सन्देह नष्ट हो जायेगा।

स्तुतिकार कहते है– हे परमेश्वर ! तेरी मोहन शक्ति अद्भुत है। वह ऐसा अनोखा जादू है कि उसके सामने ससार के सारे जादू रद्द हो जाते है। जिस पर तेरी मोहिनी दृष्टि पडी वह ससार मे से गायब हो जाता है–अर्थात् वह ससार की माया मे लिप्त नही हो सकता । वह ससार मे रहेगा भी तो ससार से अलिप्त होकर रहेगा जेसे जल से कमल अलिप्त रहता है। मगर यहा यह प्रश्न उपस्थित होता हे कि भगवान जब वीतराग हे तो वे मोहक किस पकार हुए ? और जैन सिद्धान्त के अनुसार भगवान् मे मोहकता कैसे घट सकती है ?

इस प्रार्थना मे राजीमती ओर नेमिनाथ का चरित्र वर्णन किया गया हे। राजीमती की ओर से भक्त कहता हे प्रभो ! तू मोहनगारो हे। लेकिन जब तुम्हे विवाह नही करना था–वालब्रह्मचारी ही रहना था तो फिर विवाह का यह ढोग क्यो रचा ? क्या सिर्फ दूर से दर्शन देने के लिए ही तोरण तक आये थे ?

इससे राजीमती समझी कि मुझे वश मे करने के लिए ही भगवान् का यहा तक पदार्पण हुआ था। इसी प्रकार भक्त भी समझता है कि भगवान् मोहन है।

भगवान् वीतराग है। उन्हे मोहक मानना अर्थात् ससार के समस्त नश्वर पदार्थो से मोह हटा कर एक मात्र उन्ही की ओर प्रीति लगाना तभी सम्भव है जब मनुष्य माया को छोड कर चेतन की ओर ही अपना सम्पूर्ण ध्यान लगाए।

हाड–हाड की मीजी प्रीति के रग मे रग जाये, ऐसी शक्ति केवल परमात्मा के रूप मे ही हे।

यै शातरागरुचिभि परमाणुभिस्त्व,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणव पृथिव्या,
यत्ते समानमपर न हि रूपमस्ति ।।

अर्थात् हे प्रभो! क्या निवेदन करू ! आपका देह जिन परमाणुओ से बना हे वे परमाणु ससार मे उतरने ही थे। इसका प्रमाण यही है कि ससार मे आपके सदृश रूप वाला कोई और नही है।

रूप मे शाति अपना विशेष स्थान रखती हे । जिस रूप के देखने से क्रूर से क्रूर आदमी भी शात हो जाता हे वही मोहक रूप है।

कवि कहता हे–राजीमती गुण की खूबी समझती है। राजीमती ने प्रभु का ससार रूप देखा तब तो उनकी ऐसी निष्ठा हो गई, ससारी प्रभु के

शरीर की छाया पडते ही उनके हृदय मे भगवान के प्रति ऐसा शुद्ध प्रेम जागा हे प्रभो ! आप तो सयमी और लोकोत्तर ज्ञान के धनी हे। आपका तो कहना ही क्या है !

पूर्णानन्द केवली प्रकट्यो, परमानन्द पद पायो।
अष्ट कर्म छेदी अलबेश्वर, सहजानन्द समायो।

हे प्रभो ! आत्मानन्द मे केसे जाया जाये ? बात बहुत सूक्ष्म हे। नित्यानन्द ओर स्वरूपानन्द तो केवल योगीगम्य हें । में उसे शब्दो द्वारा केसे व्यक्त कर सकता हू ।

जिस समय भगवान् दूल्हा बन कर जा रहे थे, उस समय वे उपशात थे, आनन्दमय थे, उनमे खोटा राग नही था। सम्पूर्ण उपशात भगवान् का ठीक–ठीक वर्णन कौन कर सकता है ? उनके एक बार के दर्शन से ही बडी–बडी शक्तिया मोहित हो जाती हैं, फिर भगवान् को अगर वीतराग–मोहक कहा जाये तो अनुचित क्या है ?

भगवान् के मोहक रूप को देखकर बाडे मे घिरे पशु क्या कहने लगे ? उनकी भावना को इस प्रकार कहा जा सकता है–हम कर्मो के सकट के वशीभूत होकर यहा आये थे किन्तु वास्तव मे हमारा कोई पूर्वकृत सुकृत उदय मे आया है ओर वही सुकृत हमे बन्दी के रूप मे यहा ले आया हे । हमारी उस स्वतन्त्रता से यह बन्धन लाखो गुना हितकर हे, कल्याणमय हे। हम बन्दी होकर यहा न आते तो भगवान् का यह परम शातिदायक दर्शन हमे केसे नसीव होता ! भगवान् के अलोकिक रूप का दर्शन कर लेने पर सिह ओर वकरी भक्ष्य ओर भक्षक का भाव भूल कर आपस मे रक्ष्य–रक्षक का सा व्यवहार करने लगे । वकरी सिह को अपना वच्चा समझकर उसे सूघती ओर उस पर अपना वात्सल्य प्रकट करती है । सिह वकरी को अपनी माता समझ कर उस पर श्रद्धा प्रकट करता हे । केसा मोहकरूप हे भगवान् का। भगवान् का दर्शन पाते ही जाति–विरोधी जीव पारस्परिक विरोध को भूल करके वीतरागता की पावनी मोहिनी मे डूव कर आपस मे मित्रवत् व्यवहार करने लगे।

(ख)

भगवान अरिष्टनेमि की प्रार्थना करते–करते आज एक विशेप बात मालूम हुई हे। लेकिन उसका वर्णन करने मे जीभ काम नही कर रही हे। वह वस्तु मन स भी पर ह जीभ से उसका वर्णन केसे करू? फिर भी आप सुनन

वैठे हे सो उस पूर्ण को भी अपूर्ण रूप मे कहना होगा। पूर्ण वात तो पूर्ण पुरुष ही जानते हे, मगर वे भी पूर्ण कथन नही कर सकते। मै छद्मस्थ और अपूर्ण हू। मेरे शब्द तो सीमित और सीमित अर्थ वाले ही होगे। लेकिन मै जो कह रहा हू वह मेरी कल्पना की वात नही है उन्ही महापुरुष की कही हुई है जो पूर्णता को प्राप्त कर चुके थे। अतएव मेरे द्वारा अपूर्ण रूप से कही जाने पर भी पूर्ण पुरुषो द्वारा कथित होने के कारण अगर आप इस पर रुचि लाएगे तो निरसन्देह आपका कल्याण ही होगा।

जो प्रार्थना अभी की गई है वह किसकी ओर है ? मेरी ओर से या आपकी ओर से ? किसी की ओर से न कह कर प्रार्थना को यदि महासती राजीमती की ओर से की हुई मान ले तो आप ओर हम सभी इस प्रार्थना के अधिकारी हो जाएगे। फिर जो भी हकदार होगा, जिसका भी हक होगा वह आप ही पा जाएगा। इस प्रार्थना मे कहा गया है–

श्रीजिन मोहनगारी छे, जीवन–प्राण हमारो छे।

यह कहती तो है राजीमती, फिर भी इस कथन मे जिसका जितना हक होगा उसको उतना मिल जायेगा। राजीमती इस प्रार्थना द्वारा समीप से सायुज्य मे गई है। राजीमती की इच्छा विवाह करने की थी। वह विवाह करके आदर्श जीवन विताना चाहती थी। उसका विचार उस समय गृह त्याग कर साध्वी होने का नही था। भगवान् अरिष्टनेमि के विचार के विषय मे तो कह ही कोन सकता हे ! उनका विचार कुछ और ही था। फिर भी वे बारात सजाकर दूल्हा वनकर आये। लेकिन राजीमती की और उनकी आखे चार भी नही हुई ओर उन्होने राजीमती को कोई सूचना या सदेश भी नही दिया, केवल–

सुनि पुकार पशु की करुणा, करि जानि जगत सुख फीको।
नव भव स्नेह जज्यो, जीवन मे उग्रसेन नृप धीको।।

वे पशुओ की करुणा के लिए लौट गये। उन्होने सारथी से पूछा–हे सारथी ! इन सुखाभिलाषी ओर को कष्ट न देने वाले भद्र प्राणियो को इस बाडे मे क्यो बन्द कर दिया हे ? इन्हे इस तरह क्यो दु खी किया जा रहा है ?

क्या भगवान् इस बात को जानते नही थे कि पशुओ को बाडे मे बन्द करने का प्रयोजन क्या हे ? फिर भी कायदे की खानापूरी करने के लिए उन्होने सारथी से यह प्रश्न किया–सारथी निर्भय होकर भगवान् से कहने लगा–भगवन ! यह सब जीव आपके विवाह के निमित्त पकडे गये है। आपके

विवाह मे आये हुए बहुत से लोगो को इनके मास का भोजन कराया जायेगा। इस प्रकार सारथी ने उन पशुओ को वधन मे डाले जाने का कारण भगवान् को ही वताया। उसने सारी वात भगवान् पर ही डाल दी।

सारथी की बात सुनकर भगवान् ने उससे कहा—मेरे निमित्त से यह सब जीव मारे जाएगे । यह हिसा मेरे लिए परलोक मे श्रेयकर नही हो सकती—परलोक मे कल्याण—कारिणी नही होगी।

इस प्रकार सारथी की कही हुई बात का भगवान ने भी समर्थन कर दिया और अपने ऊपर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व ले लिया। उन्होने 'मेरी लीक तेरे जावे' इस कहावत को चरितार्थ नही किया, अर्थात् दूसरो के सिर उत्तरदायित्व थोपने का प्रयत्न नही किया। साफ कह दिया—यह मेरे लिए हितकर नही है। उन्होने यह नही कहा कि इनका पाप जो मारेगा उसी के सिर होगा। मुझे पाप क्यो लगेगा ? उन्होने 'सीधे' का आश्रय क्यो नही लिया ? भगवान् कह सकते थे इन जीवो की हिसा के पाप का भागी मै कैसे हो सकता हू ? मैं अपनी ओर से तो यह भी कह दूगा कि हिसा मत करो। इतने पर भी यदि कोई नही मानेगा तो वही पाप का भागी होगा । लेकिन भगवान् ने ऐसा कहकर समस्या को टालना उचित नही समझा। उन्होने कहा—यह हिसा मेरे लिए परलोक मे कल्याणकारिणी नही हो सकती।

भगवान् का यह कथन कितना अर्थसूचक है ? इस कथन मे वडा ही गम्भीर आशय छिपा हे।

कोई आदमी तर्क—वितर्क करके दूसरे को दबा सकता हे चुप कर सकता हे, लेकिन तर्क—वितर्क से पुण्य का पाप ओर पाप का पुण्य नही बन सकता । तर्क ओर दलील से कोई पाप के फल से नही वच सकता । अतएव तर्क—वितर्क के चक्कर मे न पडकर जो वात सत्य हो उसे स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर हे।

भगवान् को विवाह तो करना नही था, फिर भी वारात सजाकर मानो यही दिखाने के लिए आये थे। उस आमतोर पर फेली हुई हिसा ओर मास—भक्षण के विरुद्ध विनम्र आत्मोत्सर्ग द्वारा प्रबल जागृति उत्पन्न करने के लिए ही जेसे भगवान् ने यह युक्ति सोची थी। उन्होने ससार को दिखा दिया कि जगत मे जो प्राणी की हिसा करते हे वे भी मेरी आत्मा के ही तुल्य ह। अतएव पूर्ण करुणा की भावना को प्रकट करने के लिए भगवान न उन प्राणियो की हिसा को अपने सिर ले लिया ओर कहा—उनकी हिसा परलोक मे मरे लिए श्रेयस्कर नही ह। हिस्य अर्थात मार जाने वाले जीवो पर तो प्राय

सभी सहृदय पुरुष करुणा करते हैं कोई विरला पाषाणहृदय ही उनकी करुणा का विरोध करता है किन्तु हिंसक अर्थात् मारने वाले पर भी करुणा करने का आदर्श अनूठा है। भगवान हिंसक को भी आत्मीय रूप मे ग्रहण करते हे ओर उसके पाप को अपना ही पाप मानकर उसका परिहार करने के लिए महान त्याग करते है। पूर्ण करुणा का यह साकार स्वरूप भगवान अरिष्टनेमि के जीवन मे पत्यक्ष दिखाई देता हे। वास्तव मे नेमिनाथ भगवान् के द्वारा पदर्शित किया गया यह आदर्श अत्यन्त भावमय अत्यन्त सुहावना ओर अत्यन्त वोधपद है।

मेरे पास एक सन्त थे । जब वह गृहस्थावस्था मे थे तो उनके लडके ने चोरी कर ली। उन्होने सोचा–यह लडका सजा पाएगा। अतएव उन्होने वह चोरी अपने ही सिर पर ले ली ओर लडके को बचा दिया। उन्हे सजा भी भोगनी पडी। सजा भोगने के वाद दीक्षा धारण की। इससे आप समझ सकते है कि बाप को बेटे पर कितनी करुणा होती हे। भगवान् की करुणा तो व्यापक ओर पूर्ण रूप से निस्वार्थ थी। उस समय यादवो मे जो हिसा और अनीति चल रही थी वह भगवान् को असह्य हुई। उस समय विवाह–शादी आदि के अवसर पर जीवो की हिसा की जाती थी। उन सब की करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने उन जीवो की हिसा को अपने सिर लेकर कहा–यह हिसा मेरे लिए श्रेयस्कर नही हो सकती।

भगवान इतना कह कर ही नही रुके। उन्होने सारथी को रथ लौटा देने का आदेश भी दे दिया। सोचा–विवाह करना उचित नही है। मेरे इस त्याग से जगत् को वोध मिलेगा ।

भगवान् विना विवाह किये ही लोट गये। भगवान् के लौट जाने पर राजीमती का क्या कर्त्तव्य था ? राजीमती के विषय मे अनेक कवियो ने कविताए रची हे। किसी ने भावपूर्ण रचना की है तो किसी ने इधर–उधर से सामग्री जुटा कर कविता की है। 'नेमिनिर्माण' और 'नेमिदूत' आदि काव्य भी लिखे गये हे। किसी ने कुछ भी लिखा हो, पर यह तो स्पष्ट है कि राजीमती की इच्छा विवाह करने की थी। भगवान् के लोट जाने से उसकी इच्छा पूरी नही हो सकी। इच्छा पूरी न होने पर क्रोध आना स्वाभाविक था। फिर राजीमती ने भगवान पर क्रोध नही किया। इसका क्या कारण था ? राजीमती का भगवान के प्रति गम्भीर ओर सात्विक प्रेम था।

राग ओर स्नेह अलग–अलग हे। प्रेम का मार्ग ही निर
को अपने प्रेमपात्र पर क्रोध नही आता। उसे अपने प्रेमी का दोष



देता। प्रेम प्रथम तो विरह को सहन ही नही कर सकता, अगर सहन करता है तो विरह मे वह और अधिक बढ जाता है। प्रेमी विरह मे भी अपने प्रेमास्पद के दुर्गुणो का रोना नही रोता। इसके लिए कवियो ने अनेक उदाहरण दिये है। एक कवि ने कहा है

एक मछली जल माहे भमे छे,
जल माही रेवुं गमे छे,
कोई पापीए बाहर काढी,
मुई तडफडी अंग पछाडी,
प्राण जावे जलने समरवु,
एक प्रभु चरणे चित धरवुं।

जल मे मछली प्रेम से रहती है। वह जब जल मे रहती है तो खान–पान आदि सभी क्रियाए करती है। लेकिन जब जल सूख जाता है या कोई पापी उसे जल से बाहर निकाल देता है तब वह तडफडाने लगती है। वह प्राण जाने के अन्तिम समय तक जल को ही स्मरण करती रहती है। मछली यह बात किससे सीख कर आई है। भक्तो ने परमात्मा से प्रेम करना मछली से सीखा है या मछली ने भक्तो से, जल से प्रेम करना सीखा हे ?

जिस प्रकार जल से बाहर निकाल दी जाने पर मछली तडफडाने लगती है उसी प्रकार भगवान् के जाने पर राजीमती भी तडफडाने लगी। लेकिन उसने भगवान् को दोष नही दिया। पीछे के कवियो ने राजीमती के विषय मे अनेक कविताए लिखी है पर जिन्होने राजीमती के प्रेम की इस विशेषता को अपनी कविता मे से निकाल दिया, वे पूर्ण कवि नही हे। राजीमती ने भगवान् के चले जाने पर यही कहा था कि भगवान् ने मेरा परित्याग कर दिया हे, अत अब मुझे अपने प्रेम की परीक्षा देनी चाहिए। राजीमती ने इसके सिवाय भगवान् के ओर कोई दुर्गुण नही कहे। विरह मे प्रेमी को व्यथा तो होती हे, फिर भी वह अपने प्रेमास्पद का दोष नही देखता।

आज भगवान् आपके सामने हे या नही ? भगवान् हे तो सही लेकिन जिस तरह वे राजीमती को छोड गये थे उसी तरह आपको छोड गये हैं। अर्थात् आज भगवान से आपका विरह हे। उस विरह मे ही राजीमती भगवान् का सच्चा स्वरूप समझ पायी थी इसी तरह आप भी विरह मे भगवान के सच्चे स्वरूप को पहचानो। तभी आपका भगवान के प्रति सच्चा प्रेम कहा जायेगा।

कोई भी शक्ति किसी पर जबर्दस्ती प्रेम उत्पन्न नही कर सकती। किसी न ठीक ही कहा हे

पेम न वाडी नीपजे पेम न हाट विकाय।
राजा पजा जिसको रुचे शीश दे ले जाय।

पेम किसी वाग–वगीचे मे पदा नही होता ओर न बाजार मे बिकता है। पेम जिसे रुचेगा वह अपना सिर देकर ले जायेगा। प्रेम का मूल्य सिर हे।

पेम की परीक्षा विरह मे होती है। प्रेमी के हृदय मे विरह की आग तो लगती ह फिर भी वह अपने पेमपात्र के अवगुण नही देखता। सगर्भ अवस्था मे सीता को राम ने वन मे भेज दिया था। उस समय सीता को राम क्या वुरे लगे थे ? स्त्रिया लगन तो आज भी करती हैं लेकिन उनसे पूछो कि कभी पति से सच्ची लगन भी लगी हे ? सच्ची लगन तो विरले को ही लगती हे। वन मे भेज देने पर भी सीता को राम से कोई शिकायत नही थी। आप भी परमात्मा से इसी प्रकार प्रेम करे तो समझना कि आपका प्रेम सच्चा हे ।

(ग)

समुद्रविजय–सत श्रीनेमीश्वर, जादव–कुल नो टीको।

परमात्मा की स्तुति करना नित्य कर्म है। जीवन के लिए भोजन की तरह यह अनिवार्य कार्य होना चाहिए। आज भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना की गई है। अव यह देखना है कि इस प्रार्थना से आत्मा को किन–किन वस्तुओ की प्राप्ति होती है

मित्रो । ईश्वर–प्रार्थना के आजकल अनेक उपाय देखे जाते है। जेनधर्म ने एक साधन यह वतलाया है कि व्यक्त के बिना अव्यक्त समझ मे नही आता। हमारे ओर आपके शरीर मे असख्य जीव भरे है, परन्तु वे जीव इतने सूक्ष्म हे कि दृष्टि मे नही आते। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि हम स्थूल को ही पहचान सकते हैं अर्थात् स्थूल शरीर के द्वारा ही जीव को जानते हे। बिना शरीर के अथवा अत्यन्त सूक्ष्म शरीर वाले को जानना ज्ञानियो का ही काम हे। मगर वह सूक्ष्मता जव स्थूल रूप मे आती है तब सब की समझ मे आ जाती हे। इसी कारण हिसा के भी स्थूल ओर सूक्ष्म भेद किये गये है। स्थूल हिसा वही कहलाती है जो प्रत्यक्ष दिखाई दे। पानी मे असख्यात जीव हे किन्तु पानी पीने वाले को कोई हत्यारा या हिसक नही कहता। वही मनुष्य यदि कीडो को मारता हे तो उसे कहा जाता है–क्यो हिसा करता है? इसका कारण यही हे कि स्थूल को समझने मे कठिनता नही होती।

आज कई पुस्तके ऐसी लिखी जाती है कि जिनसे जनसाधारण को कुछ समझ मे नही आता। कई स्तुतिया भी ऐसी है जिन्हे केवल विशेष ज्ञानी ही समझ सकते है। ऐसी चीजे भले उत्तम कोटि की हो मगर सर्वसाधारण के काम की नही है। इसीलिए यहा तीर्थकर भगवान् की प्रार्थना इस रूप मे की गई है कि इस प्रार्थना को सभी समझ सके ओर उसके आधार से आत्मिक विचार भी कर सके। मेने अभी कहा हे

समुद्रविजय सुत श्रीनेमीश्वर, जादवकुल नो टीको।
रतनुकुंख धारिणी शिवा दे, तेहनो नन्दन नीको।।

इस प्रकार जल्दी ही समझ मे आ जायेगा । यह भगवान् के स्थूल रूप की प्रार्थना है। मगर इस प्रार्थना मे स्थूल रूप को दिखाकर अनन्त परमात्मा का दर्शन कराया गया हे। भगवान् ने स्थूल शरीर मे रह कर ऐसा काम कर दिखाया है कि जिसकी साधारण मनुष्य कल्पना भी नही कर सकता ।

नेमिनाथ भगवान् जानते थे कि विवाह की तैयारी मे आरम्भ ही आरम्भ हो रहा है। जल का व्यय, बरात की तेयारी ओर चलने–फिरने आदि मे कितनी हिसा हुई होगी ? क्या भगवान् को उस हिसा का परिज्ञान नही था ? क्या हम लोगो की अपेक्षा भी भगवान् को कम ज्ञान था ? मगर उसके निराले तत्त्व को ज्ञानी ही जान सकता हे।

हम लोग स्वय ज्ञानी नही हे। हम उन्ही के समझाने से थोडा वहुत समझे हे। फिर यह जानते हुए कि मुझे विवाह नही करना हे, वारात तेयार की, यह दोष किसके सिर थोपना चाहिए ? कदाचित् यह कहा जाये कि कृष्णजी ने बरात सजाई थी ओर नेमिनाथ उन्ही के परणाये परण रहे थे तो फिर कृष्णजी की वात उन्हे अन्त तक माननी चाहिए थी। ऐसा न करके वे तोरण से क्यो लोट आये ?

मित्रो ! भगवान नेमिनाथ का वारात को सजाने मे यही उद्देश्य था कि यादवो मे जो हिसा घुस रही हे उसे हटाया जाना चाहिए ओर मासाहार का विरोध करना चाहिए। इस हिसा को दूर करने के लिए ही भगवान् ने अपनी अनोखी ओर प्रभावशालिनी पद्धति से आदर्श उपस्थित करने का विचार किया। इसके अतिरिक्त वारात सजाने का अगर कोई कारण हो तो उसे सुनने के लिए हम तेयार ह।

जो नेमिनाथ भगवान गर्भ की वात जानते थे उन्हे क्या यह पता नहीं था कि उन्हे विवाह नही करना ह ? कदाचित यह कहा जाये कि उन्ह

पता ता था किन्तु सबका मनोरथ पूरा करने के लिए वे विवाह करने को तैयार हो गये । तो सब का मनोरथ जब पूरा होता है तब वे विवाह कर लेते । विवाह किये बिना ही लाट जाने से सब का मनोरथ केसे पूरा हो गया ? भाइयो । भगवान का आशय आदर्श उपस्थित करके स्वय महान् त्याग करके हिसा को बन्द करना था । यद्यपि हिसा तो बारात की तेयारी करते समय ओर स्नान करते समय भी हुई थी किन्तु उस समय उन्होने विवाह करना अस्वीकार नही किया। इसका कारण यही था कि स्नान आदि मे हुई हिसा सूक्ष्म हिसा थी। भगवान् ने सूक्ष्म हिसा का विरोध करने के लिए लोगो को पानी पीने से नही रोका किन्तु स्थूल हिसा का पशु–पक्षियो के वध का विवाह करना, अस्वीकार करके विरोध किया। इससे क्या परिणाम निकलता है ? वास्तव मे सूक्ष्म हिसा को लेकर स्थूल को न समझना अज्ञान है।

कहा जा सकता है कि हिसा बन्द करने के लिए उन्होने आज्ञा क्यो न जारी कर दी या करा दी ? इसके लिए बारात सजाने की क्या आवश्यकता थी ? इस प्रश्न का उत्तर यह हे कि तीर्थकर हुक्म देकर कर्त्तव्य नही कराते, किन्तु स्वय करके दिखलाते हे। ऐसा करने से सारा ससार स्वय उस ओर आकर्षित हो जाता हे । अगर ऐसा न हो तो तीर्थकर और राजा मे अन्तर क्या रहे ? आदेश देकर करवाया हुआ कार्य स्वेच्छा से प्रेरित नही होता और इसीलिए हार्दिक नही होता। इसलिए उसका पालन कराने के लिए राजा को फोज ओर पुलिस की जमात खडी करनी पडती हे। मगर तीर्थकर का मार्ग इससे सर्वथा भिन्न होता हे। तीर्थकर का विधान बलात्कार से नही लादा जाता। अतएव वह स्वेच्छा–स्वीकृत और हार्दिक होता रहे । उसे पलवाने के लिए फोज या पुलिस की अपेक्षा नही रहती । उसमे इतनी गहराई होती है कि साधक अपने प्राणो की आहुति देकर भी उस विधान से रचमात्र विचलित नही होते।

कृष्णजी के साथ क्या नौकर–चाकर नही थे कि उन्होने स्वय ईटे उठाई ? वह हुक्म देते तो क्या ईटे नही उठ सकती थी ? मगर ऐसा करने से अशक्त–जनो की सेवा–सहायता करने का जो भव्य और चिरतन आदर्श–उपस्थित हुआ, वह कदापि न होता। स्वय ईटे उठाकर कृष्णजी ने ससार पर अदभुत प्रभाव डाला है। यह बात दूसरी हे कि अनुकम्पा से द्वेष होने के कारण इन बातो का वास्तविक रहस्य छिपाकर उल्टा ही अर्थ लगाया जाये ।

आज श्रावक साधु के और साधु श्रावक के कामो का उत्तरदायित्व अपने सिर ओढने का दम भरते है। इसी कारण धर्म की अवनति हो रही हे।

साधु की सूक्ष्म अहिसा को श्रावक अपने ऊपर लेते हैं । मगर नेमिनाथ भगवान् ने आदर्श उपस्थित किया है कि श्रावक को किस अहिसा का पालन करना चाहिए।

अर्थ । यह अनुपम त्याग और अनूठा कार्य आप ही कर सकते थे। मन का दमन करना, विवाह न करने के निश्चय को किसी के भी दबाव से न बदलना और लगातार नौ भवो के स्नेहमय सम्बन्ध को तोड देना तीर्थंकर की लोकोत्तर शक्ति के बिना कैसे सम्भव हो सकता हे ?

भगवान् ने विवाह का त्याग करके यह प्रकट किया कि मुझे इन जीवो की अपेक्षा राजीमती पर अधिक प्रेम नही है। उन जीवो को बन्धनमुक्त कर देने पर भगवान् ने सारथी को पुरस्कार दिया था। उनका तात्पर्य यह था कि यह गरीब प्राणी अशक्त हैं और मनुष्य से दया की अपेक्षा रखते हैं। उन जीवो पर यादव लोग अपने आनन्द के लिए अत्याचार करते थे। भगवान् ने उन्ही अबोध और मूक जीवो पर दया की थी।

कई भाई कहते हैं कि मरते जीव को बचा लेना मोह का ही परिणाम है। जीव की रक्षा करने वाला मोही है, क्योकि मरते हुए जीव पर राग हुए बिना उसे बचाया नही जा सकता। उनकी इस भ्रमपूर्ण मान्यता के अनुसार कहना होगा कि भगवान् नेमिनाथ को बाडे मे बद जीवो पर राग उत्पन्न हुआ था । अगर यह सही हो तो स्नान करते समय एकेन्द्रिय जीवो पर राग क्यो नही हुआ था ? वास्तव मे भगवान् के चित्त मे उन जीवो के प्रति न मोह था और न राग था, सिर्फ दया की पवित्र भावना थी। जिन्हे पिछले नो भवो से सगाई सम्बन्ध रखने वाली भावना थी। जिन्हे पिछले नो भवो से सगाई सम्बन्ध रखने वाली राजीमती पर भी मोह नही हुआ, उन्हे बाडे मे बन्द अपरिचित पशु–पक्षियो पर केसे मोह हो सकता हे । मगर अत्यन्त खेद हे कि हमारे कितने ही भाई भगवान् की इस विशुद्ध अनुकम्पा से भी मोह और राग की कल्पना करते हे ओर जीवरक्षा मे पाप बतलाते हे।

गाधीजी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है–मे कलकत्ता मे कालीजी के दर्शन को गया था। वहा खून के घमसान का दृश्य देखकर मेरा हृदय द्रवित हो गया। में समझता हू कि बकरे का प्राण मनुष्य के प्राण से कम नही हे। इसके सिवाय वह अवोल हे अत मनुष्य से विशेप दया का पात्र हे। यदि काली कहे तो इसके सामने म अपनी गर्दन काट दू ।

कहिए गाधीजी को भी बकरे पर राग हो गया था। मित्रो । करुणा भाव को लुप्त कर देना धर्म की आत्मा को निर्दयतापूर्वक हनन कर देना है। इससे अधिक भयकर ओर कोई कार्य नही हो सकता।

इस थली पात मे लागो के पास लाखो का धन हे। फिर भी उनके सामने से वध के लिए पशु ले जाया जाये तो उनके हृदय मे वेसी दया उत्पन्न नही होती जेसी साधारण तथा अन्य पातवासियो के हृदय मे होती है। कोई–कोई तो खुद ही कसाई को अपना पशु वेच देते हे। यह कितनी निष्ठुरता हे ? न जाने केसा हृदय हे जो दया से द्रवित नही होता। जितनी कठोरता इस पात मे हे उतनी शायद ही किसी दूसरे पात मे हो। इसका कारण यही हे कि यहा के लोगो के हृदय से दया निकाल दी गई है। इसीलिए पाय लोग खुद भी दया नही करते ओर दूसरे को करते देखते है तो उसे पापी कहते है । नेमिनाथ भगवान के समय मे गाय या दूसरे उपयोगी पशु नही मारे जाते थे। परन्तु यादव लोग अपनी खुराक के लिए हिरण आदि जीवो को निरुपयोगी समझ कर मारते थे। वे समझते थे कि यह जीव जगल मे रहते हे किस काम आते है । भगवान् नेमिनाथ ने राजीमती का त्याग करके ऐसे पशुओ पर भी दया दिखलाई थी। मित्रो । आज जो पशु आपके रक्षक हे उन पर भी आप दया नही दिखलाते । आपका यह हट्टा कट्टापन किसके प्रताप से हे ? गायो का घी–दूध खा–पीकर आप तगडे हो रहे है और जी रहे हे ओर उन्ही की करुणा को मोह कहकर धर्म और सभ्यता का घोर अपमान कर रहे है । शास्त्र को शस्त्र बना डालना कितना भयकर काम है? अपने आदर्श भगवान् नेमिनाथ ने राजीमती का त्याग करके दीक्षा ग्रहण की तथा दया ओर दान का आदर्श उपस्थित किया । उन्होने अपने कर्त्तव्य से यह भी प्रकट कर दिया है कि मनुष्य को किस दर्जे पर क्या करना चाहिए। उन्होने दीक्षा के ऊँचे दर्जे का काम करके, उससे पहले के उससे नीच दर्जे के कर्त्तव्य का अपमान नही किया ।

जरा विचार कीजिए इस चूरू शहर मे जब जौहरी ही जौहरी बस जाए ओर अनाज, शाक–सब्जी आदि प्रतिदिन उपयोग मे आने वाली वस्तुए उत्पन्न करने वाला या वेचने वाला कोई भी न हो तो काम चल सकता है ?

'नही ।'

इसी प्रकार जेनधर्म मे छोटे–बडे सब काम बतलाये गये है। बडे काम पूर्ण सयम का ग्रहण आदि हो तो अच्छा ही है, परन्तु उससे पहले की स्थिति मे करुणा करने का निषेध तो नही करना चाहिए।

विपत्ति से सताये हुए ओर भयभीत प्राणी पर थोडी–बहुत दया लाकर जैनशास्त्र की आज्ञा का पालन करो तो अच्छा ही हे। इसके बजाय दया करने वाले को पापी कहकर दया का निषेध करते हो यह कहा तक

ठीक है ? बन्धुओ । अपने भविष्य का थोडा–बहुत विचार करो। जीवरक्षा का निषेध करके अपने भविष्य को दु खमय मत बनाओ। करुणा इस जगत् मे एक दैवी गुण हे। इस पर कुठाराघात करना अपनी आत्मा पर ही कुठाराघात करना है। भगवान् नेमिनाथ के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करो। इससे आपकी आत्मा का कल्याण होगा और जगत् को अवकाश मिलेगा।

(घ)

श्री जिन मोहनगारो छ। समुद्रविजय सुत श्री नेमीश्वर।

यह भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना की गई है। सारा ससार एक मन होकर परमात्मा की जो प्रार्थना करता हे, वही प्रार्थना मैंने अपने शब्दो मे की है। प्रार्थना का विषय इतना व्यापक और सार्वजनिक है कि प्रार्थ्य महापुरुष का नाम चाहे कुछ भी हो और प्रार्थना के शब्द भी कुछ भी हो, उसकी मूल वस्तु समान रूप से सभी की होती है। इस प्रार्थना मे कहा गया है

'श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे।'

यहा पर यह आशका की जा सकती है कि क्या भगवान् मोहनगारो हो सकता हे ? जिसे जैन–धर्म वीतराग मोहनगारो' केसे कहा जा सकता है ? जो परमात्मा स्वय मोह से अतीत है, वह 'मोहनगारो' केसा ? जिसे अमूर्तिक और निराकार माना जाता हे, वह किस प्रकार ओर किसे मोहित करता हे ? इस आशका पर सरल रीति से यहा प्रकाश डाला जाता हे।

लोक–मानस इतना सकीर्ण ओर अनुदार हे कि उसने ससार के अन्यान्य भोतिक पदार्थो की तरह ईश्वर का भी बटवारा सा कर रक्खा हें। यही कारण हे कि ईश्वर के नाम पर भी आये दिन झगडे होते रहते हे। इसके अतिरिक्त ईश्वर को समझने के लिए उपयुक्त वक्ता न होने से ईश्वर के नाम से होने वाली शाति के बदले उलटी अशाति होती हे–कलह फेलता हे। यह सब होते हुए भी वास्तव मे ईश्वर का नाम शातिदाता हे ओर ईश्वर 'मोहनगारो हे।

वीतराग किस प्रकार किसी को मोहित कर सकता हे इस प्रश्न के उत्तर मे सत्य यह हे कि वीतराग भगवान ही मनमोहन हे। जिसमे वीतरागता नही हें वह मनमोहन या 'मोहनगारो भी नही हे। उपर्युक्त प्रार्थना वीतराग भगवान की ही हे किसी ससारी पुरुष की नही हे। इस प्रार्थना म वीतराग को ही मोहनगारो बतलाया गया हे । भगवान वीतराग 'मोहनगारो किस प्रकार हे यह बात ससार की बातो पर दृष्टि डालने से साफ समझ म आ जायगी ।

जिसका चित्त ईश्वर पर माहित होकर ससार की ओर वस्तुओ से हट जाएगा जो एकमात्र परमात्मा को ही अपना आराध्य मानेगा जो परमात्मा–प्राप्ति के लिए अपने सर्वस्व को हसते–हसते ठुकरा देगा वह परमात्मा को ही मोहनगारो मानेगा। परमात्मा मोहनगारो नही है तो भक्तजन किसके नाम पर ससार का विपुल वैभव त्याग देते हे ? अगर ईश्वर मे आकर्षण न होता तो बडे–बडे चक्रवर्ती ओर सम्राट उसके लिए वन की खाक क्यो छानते फिरते ? अगर भगवान् किसी का मन नही मोहते तो प्रह्लाद को किसने पागल बना रखा था ? ओर मीरा ने किस मतलब से कहा था– मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।'

परमात्मा स्वय कहने नही आता कि मे 'मोहनगारो हू' मगर लोग ही कहते है श्रीजिन मोहनगारो छे' परमात्मा को 'मोहनगारो मानने वाला भक्त केसा होना चाहिए यह जानने के लिए सासारिक बातो पर दृष्टिपात करना होगा।

जो पुरुष ससार के सब पदार्थो मे से केवल धन को 'मोहनगारो' मानता हे, उसके सामने दूसरी तरह की चाहे लाखो बाते की जाए, लेकिन वह धन के सिवाय ओर किसी भी बात पर नही रीझेगा। उसे धन ही धन दिखाई देगा। वह सोने मे ही सब करामात मानेगा। कहेगा

सर्वे गुणा काचनमाश्रयन्ति।'

ससार के समस्त सुखो का एक मात्र साधन और विश्व मे एकमात्र सारभूत वस्तु धन हे धन ही परब्रह्म है, धन ही धर्म है, धन ही लोक–परलोक हे ऐसा समझने वाला पुरुष धन को ही 'मोहनगारो मानेगा। ऐसा आदमी ईश्वर को मोहनगारो नही मान सकता। वह ईश्वर की तरफ झाक कर भी नही देखेगा। कदाचित् किसी की प्रेरणा से प्रार्थना करेगा भी तो कचन के लिए करेगा। वह धनलाभ को ही ईश्वर की सच्चाई की कसौटी बना लेगा।

कचन ओर कामिनी ससार की दो महाशक्तिया है। कई लोग ऐसे भी हैं, जिनके लिए कचन तो इतना 'मोहनगारा'नही है, किन्तु कामिनी ही उन्हे गुण–निधान, सुखनिधान ओर आनन्द–निधान जान पडती हे। कनक और कामिनी मे ही ससार की समस्त शक्तियो का समावेश हो जाता है।

इन शक्तियो से जिनका अन्त करण अभिभूत हो गया है, जिसके हृदय पर इन्होने आधिपत्य जमा लिया हे वह ईश्वर की तरफ नही झाकेगा। अगर झाकेगा भी तो इसलिए कि ईश्वर उसे कामिनी दे। कदाचित कामिनी मिल जाये तो वह ईश्वर से पुत्र आदि परिवार की याचना करेगा। पुत्र–पोत्र

मिल जाने पर वह सासारिक मान–सम्मान के लिए ईश्वर को नमस्कार करेगा। मगर जो ममुष्य कचन ओर कामिनी आदि के लिए ईश्वर की उपासना करेगा वह उन मे किसी की कमी होते ही ईश्वर से विमुख हो जाएगा और कहेगा–ईश्वर हे कोन? अपना उद्योग करना चाहिए, वही काम आता हे। ऐसे लोग ईश्वर के भक्त नही हो सकते। इनके आगे ईश्वर की वात करना भी निरर्थक–सा हो जाता हे।

जेसे धन को मोहनगारो' मानने वाला धन के सिवाय ओर किसी में भलाई नही देखता, उसी प्रकार ईश्वर को मोहनगारो मानने वाले मनुष्य ईश्वर के सिवाय ओर किसी मे भलाई नही देखते। वे लोग ईश्वर को ही मोहनगारो मानते हैं और ईश्वर को ही अपना उपास्य समझते हैं।

जल मे रहने वाली मछली खाती भी है, पीती भी हे, विपयभोग भी करती है, मगर करती हे सब कुछ जल मे रह कर ही। जल से अलग करके उसे मखमल के बिछोने पर रख दिया जाये और बढिया भोजन खिलाया जाये, तो वह न भोजन खायेगी, न मखमल के मुलायम स्पर्श का आनन्द ही अनुभव करेगी। उसका ध्यान तो जल मे ही लगा रहेगा। परमात्मा के प्रति भक्तो की भावना भी ऐसी ही होती हे। भक्त चाहे गृहस्थ हो या साधु, पानी के विना मछली की तरह परमात्मा के ध्यान के विना–सुख अनुभव नहीं करता। उसका खाना–पीना आदि सारा ही व्यवहार परमात्मा के ध्यान के साथ ही होगा। परमात्मा के ध्यान के विना कोई भी बात उसे अच्छी नही लगेगी।

प्रश्न हो सकता हे–परमात्मा के भक्त परमात्मा को मोहनगारो मानकर उसके ध्यान मे आनन्द मानते हैं, लेकिन केसे कहा जा सकता हे कि यह उनका भ्रम नही हे ? क्या यह सम्भव नही हे कि वे भ्रम के कारण ही परमात्मा का भजन करते हैं ? परमात्मा मे ऐसा क्या आकर्पण हे–कोनसी मोहनशक्ति है कि भक्तजन परमात्मा के ध्यान विना, जल के विना मछली की तरह विकल रहते ह ? इस प्रश्न का उत्तर यह हे कि मछली ही जानती हे उसी से पूछो। दूसरा कोई क्या जान सकता हे । इसी प्रकार जिन्हे परमात्मा से उत्कट प्रेम हे वही वतला सकते हैं कि परमात्मा मे क्या आकर्पण हे, केसा सान्दर्य हे ओर केसी मोहकशक्ति हे । क्यो उन्हे परमात्मा के ध्यान विना चेन नही पडता । उनके अन्तर से निरन्तर यह ध्वनि फूटती रहती हे–

'श्री जिन मोहनगारो छे जीवन–प्राण हमारो छे।

इस प्रकार परमात्मा भक्त का आधारभूत हे। परमात्मा को तभी ध्यान म लिया जा सकता ह जव उसे कचन–कामिनी स अलिप्त रक्खा जाए। जिसम कामना–वासना नहीं हे वही माहनगारो होता ह। जो काम

वासना से लिप्त है वह वीतराग नही है और जो वीतराग नही है वह मोहनगारो भी नही हो सकता।

त्याग सब आत्माओ को स्वभाव से ही प्रिय है। एक साधु को देखकर ही हृदय मे भक्ति उत्पन्न हो जाती है। आप (श्रोतागण) यहा धन के लिए नही आये है। यहा मेरे पास आने का मतलब दूसरा ही है। वह क्या है ? त्याग के प्रति भक्ति। जब साधु के थोडे से त्याग को देखकर ही उसके प्रति प्रीति और भक्ति की उत्पत्ति होती है तो जो भगवान पूर्ण वीतराग है, उनके ध्यान से कितना आनन्द आता होगा ? कदाचित् यहा आकर व्याख्यान सुनने वालो पर एक–एक पैसा टेक्स लगा दिया जाय तो क्या आप लोग आएगे ? टेक्स लगा देने पर आप कहेगे–इन साधुओ को भी हम गृहस्थो के समान ही पैसो की चाह लगी है ? जहा पैसो की चाह है वहा परमात्मा कैसे हो सकता है ? क्योकि परमात्मा तो वीतराग है।

व्याख्यान सुनने के लिए आने वालो पर पैसे का टेक्स न लगाकर छटाक–छटाक भर मिठाई लेकर आने का नियम लागू कर दिया जाये तो खुशामद के लिहाज से मिठाई लेकर आने की बात दूसरी है लेकिन वीतरागता की भावना से आप न आएगे और कहेगे–इन साधुओ को भी रस–भोग की आवश्यकता है । साराश यह है कि आप यहा त्याग देखकर ही आये है। इस प्रकार लगभग सभी आत्माओ को त्याग प्रिय है। फिर यह त्याग भावना क्यो दबी हुई है? इस प्रश्न का उत्तर यह होगा कि आत्मा कचन और कामिनी के मोह मे फसा हुआ है। आत्मा रात–दिन सासारिक वासनाओ मे लगा रहता है इसी कारण उसकी त्याग–भावना दबी हुई है। ससार–वासना के वशवर्ती होने के कारण कई लोग धर्म–सेवन भी वासनाओ की पूर्ति के उद्देश्य से ही करते है। कनक और कामिनी के भोग मे सुविधा और वृद्धि होने के लिए ही वह धर्म का आचरण करते है। ऐसे लोगो का अन्त करण वासना की कालिमा से इतना मलिन हो गया है कि परमात्मा का मन–मोहन रूप उस पर प्रतिबिम्बित नही हो सकता।

यद्यपि मुझमे वह उत्कृष्ट योग–शक्ति नही है कि मै आपका ध्यान ससार की ओर से हटाकर ईश्वर मे लगा दू, लेकिन बडे–बडे सिद्ध महात्माओ ने शास्त्रो मे जो कुछ कहा है, मुझे उसमे बहुत कुछ शक्ति दिखाई देती है और इसी कारण वही बात मे आपको सुनाता हू। आप उन महात्माओ के अनुभवपूर्ण कथन की ओर ध्यान लगाए । फिर सम्भव है कि आपका ध्यान ससार की ओर से हटकर परमात्मा की ओर लग जाए।

23. श्री पार्श्वजिन–स्तवन

प्रार्थना

"अश्वसेन" नृप कुल तिलो रे, "वामा दे" नो नन्द।
चितामणि चित्त में बसे रे, दूर टले दुख द्वन्द्व।।
जीव रे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।। टेर ।। 1।।
जड चेतन मिश्रित पणे रे, करम सुभासुभ थाय।
ते विभ्रम जग कल्पना रे, आतम अनुभव न्याय।। 2।।
वहमी भय माने जथा रे, सूने घर वैताल।
त्यू मूरख आतम विषे रे, मान्यो जग भ्रम जाल।। 3।।
सर्प अन्धारे रासडी रे, रूपी सीप मझार।
मृगतृष्णा अम्बू मृषा रे, त्यूं आतम मे संसार।। 4।।
अग्नि विषे ज्यूं मणि नही रे, मणि मे अग्नि न होय।
सपने की सम्पत्ति नही, ज्यू आतम में जग जोय।। 5।।
बाझ पुत्र जनमे नही रे, सीग शशै सिर नाय।
कुसुम न लागे व्योम मे रे, त्यूं जग आतम माय।। 6।।
अमर अजोनी आत्मा रे, हे निश्चे तिहुं काल।
'विनयचन्द' अनुभव थकी रे, तूं निज रूप सम्हाल।। 7।।

श्री पार्श्वनाथ

(क)

यह भगवान पार्श्वनाथ की प्रार्थना हे। इस प्रार्थना की कडिया सरल ह आर इसके भाव स्पप्ट हे। लेकिन मनन करने पर इसम गभीर वात

दिखाई देती है। यह तो आप जानते हैं कि सारी बातों में भी गम्भीर भाव छिपे रहते हैं। इस प्रार्थना में भी एक गम्भीर बात की सूचना की गई है।

कहा जा सकता है कि जब आत्मा की ही बोध करने की आवश्यकता है तो भगवान पार्श्वनाथ की शरण में जाने से क्या लाभ है ? इस कथन के उत्तर मे ज्ञानीजनो का कहना है कि आखो मे ज्योति होने पर भी सूर्य की शरण लेनी ही पडती है। अगर सूर्य की या किसी दूसरे प्रकाश की शरण न ली जाये तो आखो मे ज्योति होने पर भी कुछ दिखाई नही देता। आखो मे ज्योति होने पर भी सूर्य की शरण मे जाना पडता है इसका कारण यह है कि आखो मे अपूर्णता है। आखो की अपूर्णता के कारण सूर्य की सहायता लिये विना काम नही चलता। इसी तरह आत्मा भी अपूर्ण है। आत्मा मे अभी ऐसी शक्ति नही है कि वह स्वतन्त्र रूप से अपना बोध कर सके। अतएव जिस तरह आखो की अपूर्णता के कारण सूर्य का आश्रय लिया जाता है, उसी प्रकार आत्मा मे अपूर्णता होने के कारण परमात्मा की सहायता ली जाती है। स्तुतिकार कहते है–

सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ।

अर्थात् हे मुनियो के नाथ ! आपकी महिमा सूर्य से भी बढकर है।

इस प्रकार अनन्त सूर्यो से भी बढकर जो भगवान् पार्श्वनाथ है, उनकी सहायता आत्मा के उत्कर्ष के लिए अपेक्षित है। भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे गये विना आत्मा का बोध नही हो सकता। जो अपनी इस वास्तविक कमजोरी को जानता होगा और अपनी कमजोरी से डरा होगा, वह पार्श्वनाथ की शरण मे गये विना नही रहेगा।

कोई कह सकता है–जब आत्मा का उत्कर्ष करने के लिए भगवान् पार्श्वनाथ की शरण मे जाने की आवश्यकता अनिवार्य है और शरण मे गये विना काम चल ही नही सकता तब फिर पार्श्वनाथ की ही शरण मे जाना चाहिए । ऐसी स्थिति मे आत्मा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है ?

पूर्वकृत कर्मो का कुछ क्षयोपशम होने से ही हम लोग भगवान् के समीप हुए है। भगवान् पार्श्वनाथ को शास्त्र मे 'पुरुषादानी पार्श्वनाथ' कहा है। इस प्रकार जगत् मे उनकी बडी ख्याति है। बल्कि बहुत लोग तो जैन धर्म को पार्श्वनाथ का ही धर्म समझते है। वे जेनशास्त्र के अनुयायियो को पार्श्वनाथ का चेला कहते है। अगर हम भगवान् पार्श्वनाथ का चेला कहलाने मे अपना गोरव समझते है तो हमे विचार करना चाहिए कि उन्होने अपने

जीवन मे ऐसा कोन–सा कर्त्तव्य किया था, जिसके कारण उनकी इतनी ख्याति हुई ? ओर हम लोग जव उनके चेले हे तो हमे क्या करना चाहिए ? भगवान् ने अपनी ख्याति फैलाने के लिए न किसी की गुलामी की थी ओर न किसी को यह प्रेरणा ही की थी कि तुम हमारी प्रशसा करो। ऐसा करने से ख्याति फैलती भी नही है। तो फिर भगवान् ने क्या किया था ? यह विचारणीय बात हे। इस जगत् पर भगवान् पार्श्वनाथ का अनन्त उपकार हे। इसी कारण जगत् के लोग उन्हे मानते है। उनमे अनन्त असीम करुणा थी। ससार का यह रिवाज ही है कि जो वस्तु इष्ट होती है, उसे प्राप्त करने वालो को बहुत चाहा जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की अच्छाई का असर भी दूसरो पर पडता रहे। अच्छे रत्न का प्रभाव सारे जगत् पर पडे बिना नही रहता। भगवान् पार्श्वनाथ ने जगत् को वे गुण बतलाये जिससे जगत् का कल्याण होता है। भगवान् ने जिन गुणो से विश्व का कल्याण होते देखा, उन्ही गुणो को अपनाने के लिए जोर दिया ओर उनके भक्तो ने वे गुण अपनाए। भक्तो के इस कार्य से भगवान् पार्श्वनाथ अधिक प्रसिद्ध हुए। भगवान् को वस्तुत भक्त ही प्रसिद्ध करते हैं और भक्त ही बदनाम भी करते हे । इस तथ्य को समझ लेने के पश्चात् हम सब को अपना कर्त्तव्य स्थिर करना चाहिए।

भगवान पार्श्वनाथ के चरित्र मे एक बडी बात देखी जाती हे। मेने अनेक महापुरुषो के जीवनचरित्र देखे हे ओर उनमे भी वह बात पाई जाती है। जिन्हे लोग महापुरुष मानते हें उनकी जीवनी मे यह बात प्राय देखी जाती हे। साधारण लोग साप को जहरीला कहकर उसके प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते हे, लेकिन महापुरुष साप पर भी अपना प्रभाव डालते हे। भगवान् महावीर ने चडकोशिक साप का उद्धार किया था, यह वात तो प्रसिद्ध ही हे। कृष्ण के जीवनचरित्र मे भी साप का वर्णन आया हे। इसी प्रकार ईसा के चरित्र मे भी साप का उल्लेख आता हे। भगवान् पार्श्वनाथ के जीवनचरित्र मे भी साप का सम्वन्ध पाया जाता हे। इससे प्रकट होता हे कि महापुरुष माने जाने वाले व्यक्तियो के चरित्र मे साप का सम्वन्ध आता ही हे ओर वे अपने महापुरुषत्व का प्रभाव साप पर भी डालते ह। समवायाग सूत्र मे तीर्थकरो के जो चोवीस चिन्ह वतलाये गये ह उनमे भगवान पार्श्वनाथ का चिन्ह साप ही वतलाया हे। साप ने उनके मस्तक पर छाया करके उनकी रक्षा की थी। वोद्ध साहित्य मे एक जगह उल्लेख आया हे कि एक भिक्षु को साप ने काट खाया। जव उस भिक्षु को बुद्ध के पास ले जाया गया तो बुद्ध ने

कहा–तुमने साप के प्रति मैत्री भावना नही रखी थी इसी कारण साप ने तुम्हे काटा है।

भगवान पार्श्वनाथ ने जब जहरीले साप पर भी प्रभाव डालकर उसे सुधारा था तथा उसका कल्याण किया था तब क्या आप उन मनुष्यो को नही सुधार सकते जो आपकी दृष्टि मे जहरीले है ? अगर आप अपने जीवन की उज्ज्वलता की किरणे ऐसे लोगो के जीवन पर भी बिखेर दे और उन्हे सुधार ले तो जनता पर आपका कैसा प्रभाव पडे ।

भगवान पार्श्वनाथ ने साप का कल्याण किस प्रकार किया था, उस वृत्तात को ग्रथकारो ने अपने ग्रथो मे विशद रूप मे लिखा है। कहा गया है कि भगवान के पूर्व के दसवे भव के भाई कमठ, जो नरक मे जाता, उसका भगवान ने सुधार किया था और उसका भी कल्याण किया था। लोग दु ख को बुरा कहते है। मगर ज्ञानी पुरुष दु ख की भी आवश्यकता समझते हैं और दूसरो का भी दु ख सहने से स्व–पर कल्याण होता है, यह बात भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र से समझी जा सकती है।

भगवान् पार्श्वनाथ जब बालक थे, उस समय उनके पूर्ववर्त्ती दसवे भव का भाई तापस बनकर आया। उसने धूनिया जगाई और इससे लोग बहुत प्रभावित हुए। झुण्ड के झुण्ड लोग उस तापस के पास जाने लगे और अपनी श्रद्धा–भक्ति प्रकट करने लगे। भगवान् पार्श्वनाथ की माता ने उनसे कहा–नगर के बाहर एक बडा भारी तपस्वी आया है। वह उग्र तपस्या कर रहा है। सब लोग उसे देखने के लिए जाते है। मेरे साथ तुम भी चलो तो हम सब भी देख आए।

महापुरुष सादे बनकर प्रत्येक काम करते है। अतएव माता के कहने पर भगवान् पार्श्वनाथ ने तपस्वी के पास जाना स्वीकार कर लिया। माता के साथ वे ताप के स्थान पर गये। भगवान् राजकुमार थे और उनकी माता महारानी थी। दोनो को देखकर तापस बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा–जब राजरानी ओर राजकुमार भी मेरी तपस्या से प्रभावित हो गये है तो मुझे और क्या चाहिए ?

भगवान् पार्श्वनाथ ने हाथी पर बैठे हुए ही उतरने से पहले ही जान लिया था कि यह तापस मेरे दस भव पहले का भाई है। मेरा यह भाई आज जिस स्थिति मे हे, अगर उसी स्थिति मे रहा तो अपना परलोक बिगाड लेगा। जेसे भी सम्भव हो इसका उद्धार करने चलूगा तो इसके रोष और द्वेष का मुझे भाजन बनना पडेगा। उसे सहन करके भी उद्धार करना चाहिए यह मेरा कर्त्तव्य हे।

लोग कहते हे कि भगवान् पार्श्वनाथ ने कमठ का मान भग किया था। मे समझता हू कि ऐसा कहने वालो मे मान हे, इसी कारण वे ऐसा कहते हैं। भगवान पार्श्वनाथ ने जो कुछ किया था वह तापस के प्रति भगवान की प्रशात करुणा का ही परिणाम था। भगवान के सरल मृदुल हृदय मे तापस के प्रति असीम करुणा का भाव उत्पन्न हुआ ओर उसी करुणा ने उन्हे तापस के उद्धार के लिए प्रेरित किया। यह वात अलग हे कि तापस का अभिमान स्वत चूर-चूर हो गया, मगर भगवान् की कोई ऐसी इच्छा नहीं थी कि तापस को नीचा दिखाया जाये। भगवान् ने तापस से कहा-तुम यह क्या कर रहे हो ? इस प्रकार के कष्ट मे पडकर अपने लिए नरक का निर्माण क्यो कर रहे हो ? सरल वनो ओर ऐसे काम न करो जिनसे तुम स्वय कष्ट मे पडो ओर दूसरे भी कष्ट पावे।

यद्यपि अनन्त करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने तापस से ऐसा कहा था अगर तापस कव मानने वाला था ? उसने कहा-तुम राजकुमार हो। राजमहल मे रहकर आनन्द करो। हम तपस्वियो की बातो मे मत पडो। तुम इस विषय मे कुछ नही समझते हो। तुम अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखो। घोडे फिराओ। राजकुमार यही जानते हे या उन्हे यही जानना चाहिए। हमारे किसी कार्य के औचित्य या अनोचित्य का निर्माण करना तुम्हारे अधिकार से बाहर है। तपस्वियो की बात तपस्वी ही समझ सकते हैं।

भगवान् ने कहा-अगर आप कुछ जानते होते तो कुछ कहने की आवश्यकता ही न रहती। लेकिन आप नही जानते हो इसी कारण कहना पडता हे कि आप अभी तक सच्चा मार्ग नही जान पाये हैं। अगर मैं कुछ नही जानता ओर आप सब कुछ जानते हैं तो वतलाइये कि आपकी धूनी मे जलने वाली लकडी मे क्या हे ?

तापस-इसमे क्या हे अग्निदेव के सिवाय ओर क्या हो सकता है। सूर्य, इन्द्र ओर अग्नि-यह तीनो देव हे। धूनी की लकडी मे अग्निदेव हैं।

भगवान् ने शात स्वर मे कहा-धूनी मे जलने वाली इस लकडी में अग्निदेव के सिवाय ओर कुछ नही हे यही आपका उत्तर हे न ?

तापस-हा हा, यही मेरा उत्तर हे। उसमे ओर क्या रखा हे ?

भगवान् वोले-इसी से कहता हू कि अभी तक आप कुछ भी नही जानते। आप जिस लकडी को धूनी मे जला रहे हैं उस लकडी के भीतर हमारे आपके समान ही एक प्राणी जल रहा हे।

तापस की आख लाल हो गई। वह तिलमिला कर वोला-झूठ! एकदम झूठ ! तपस्वी पर ऐसा अभियोग लगाना घोर पाप हे।

भगवान—हाथ कगन को आरसी क्या ! आप झूठे ह या मै झूठा हू, इसका निर्णय तो अभी हुआ जाता ह। लकडी चिरवा कर देख लो तो असलियत का पता लग जाएगा।

तापस–ठीक ह मुझे स्वीकार ह।

लकडी चीरी गई तो उसमे से एक साप निकला। वह अधजला हो चुका था। उस तडफते हुए अधजले साप को देखकर लोगो के विस्मय का ठिकाना न रहा आर साप के पति अतिशय करुणा जाग उठी। लोग कहने लगे– धन्य हे पार्श्वकुमार ! उनके विषय मे जसा सुनते थे, सचमुच वे उससे भी वढकर हे। वहुतेरे लोग उस तापस की निन्दा करने लगे। अपनी प्रतिष्ठा को इस तरह धक्का लगा देख कर तापस वेहद रूष्ट हुआ। वह सोचने लगा–राजकुमार की प्रशसा हुई ओर मेरी निन्दा हुई।

भगवान पार्श्वनाथ के हृदय मे जसी दया तापस के प्रति थी वैसी ही दया साप के प्रति भी थी। भगवान् साप का कल्याण करने के लिए हाथी से नीचे उतरे। साधारण लोग समझते हे कि साप क्या जाने? लेकिन साप जानता हे या नही इसका निर्णय तो भगवान् के समान ज्ञानी पुरुष ही कर सकते हे ! सर्वसाधारण के वश की यह वात नही हे। जिस साप को लोग अतिशय भयावह विषेला ओर प्राणहारक समझते हे, उसी के कल्याण के लिए करुणानिधान हाथी से नीचे उतरे। वह साप अधजला हो गया था और उसके जीवन की कुछ ही घडिया शेष रह गई थी। भगवान् ने उसे पच नमस्कार मन्त्र सुनाकर कहा–तुझे दूसरा कोई नही जला सकता और तू यह मत समझ कि दूसरे ने तुझे जलाया हे। अपनी आत्मा ही अपने को जलाने वाली हे। इसलिए समता भाव रख। किसी पर द्वेष मत ला। किसी पर क्रोध मत कर। इसी मे तेरा कल्याण हे।

भगवान् ने उस साप को किन शब्दो मे उपदेश दिया होगा, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता और भगवान् की महिमा भी नही कही जा सकती। फिर भी अनुमान के आधार पर कहा जा सकता हे कि उनका उपदेश इसी आधार का रहा होगा। प्रथम तो स्वय भगवान् उपदेशक थे, दूसरे पच नमस्कार मत्र का उपदेश था। अतएव मरणासन्न साप अग्नि का सताप भूल गया। उसकी परिणति चन्दन के समान शीतल हो गई। अत्यन्त प्रसन्न हुआ ओर वारम्बार भगवान् की ओर देखने लगा।

साप की जो कथा सुन रहे हे वह मनोरजन के लिए नही है। उससे बहुत कुछ शिक्षा ली जा सकती हे ओर शिक्षा लेने के लिए ही वह सुनाई गई

है। क्या आप भगवान् पार्श्वनाथ को भजते हे ? अगर आप भगवान् को भजते हे तो आपकी मनोवृत्ति ऐसी हो जानी चाहिए कि कोई कैसी ही आग मे क्यो न जलावे, आप शीतल ही बने रहे। वास्तव मे आग की ज्वाला मे सताप नहीं है, सताप हे क्रोध मे। अगर आप अपनी वृत्ति मे से क्रोध को नष्ट कर दे तो आपको किसी भी प्रकार की आग नही जला सकती। लेकिन होता यह है कि लोग भगवान् पार्श्वनाथ का नाम जीभ से बोलकर आग को हाथ लगाते हैं और कहते हैं कि आग शात तो करना चाहते है मगर हृदय की आग–क्रोध की शाति हुई है या नही ? अगर हृदय की आग शात नही हुई है तो बाहरी आग कैसे शीतल हो सकती है ? हृदय की आग को शात करके देखो तो सारा जगत् शीतल दिखाई देगा।

ग्रन्थो मे कहा है कि भगवान् के उपदेश के कारण वह साप मर कर धरणेन्द्र देव हुआ। इस प्रकार भगवान् ने उस साप का भी कल्याण किया। ऐसी बातो के कारण ही जगत् मे भगवान् की महिमा का विस्तार हुआ है।

भगवान् ने साप का कल्याण किया और कल्याण करने से भगवान् की महिमा का विस्तार हुआ, यह ठीक है। किन्तु इससे आपका क्या कल्याण हुआ ? आपको अपने कल्याण के विषय मे विचार करना चाहिए। आपका कल्याण तभी सम्भव है जब आप भी भगवान् को अपने हृदय मे बसावे ओर जलती हुई क्रोध की आग को क्षमा, शाति समभाव आदि के जल से शात कर दे।

कहा जा सकता हे कि अगर भगवान् पार्श्वनाथ हृदय मे वस सकते हें तो फिर वसते क्यो नही हे? क्या हम उन्हे बसने से रोकते हें ? लेकिन सही बात यह हे कि भगवान् पार्श्वनाथ को हृदय मे वसने देने से एक प्रकार से नहीं तो दूसरे प्रकार से रोका जाता हे। अगर उनके वसने मे रुकावटे न डाली जाये तो वे बसने मे विलम्ब ही न करे। अगर आप अपनी मनोवृत्तियो की चोकसी रखते हें, अपनी भावनाओ की शुद्धि–अशुद्धि उत्थान–पतन का विचार किया करते हें तो यह वात समझने मे आपको दिक्कत नही हो सकती। लेकिन आमतोर पर लोग सटटावाजार के भावो के चढने–उतरने का जितना ध्यान रखते हे उतना भी आत्मा के भावो के चढाव–उतार पर ध्यान नही देते। यही पडती शास्त्र मे गुणास्थानो का विस्तृत वर्णन किस लिए हिसाव समझाने के लिए ही वतलाय गये हे। अतएव देखना चाहिए कि किस प्रकार हमने अपने हृदय के द्वार भगवान पार्श्वनाथ के आने के लिए वन्द कर रखे ह आर उसका परिणाम क्या हो रहा हे ? दूसरो क दुर्गुण दखने म मत लग रहो अपन

ही दुर्गुण देखो। दूसरो के दुर्गुण देखते रहने से अपने दुर्गुण दिखाई नही देते। अतएव अपने अवगुणो को देखो और सोचो कि हृदय मे परमात्मा को बसाने मे कहा चूक हो रही है ?

(ख)

पार्थना का स्वरूप बहुत व्यापक है। शास्त्रकारो ने पार्थना के अनेक रूप और अनेक नाम बतलाये हैं। उन सब का विवेचन करना शक्य नही प्रतीत होता। अतएव यहा इसी प्रार्थना के सम्बन्ध मे किचित् विचार करूगा।

वेदात ने जिन्हे माया और ब्रह्म कहा है, साख्य ने जिन्हे प्रकृति और पुरुष कहा है, जैनधर्म मे उन तत्त्वो को जड और चेतन कहा है। यद्यपि विभिन्न दर्शनो मे इन तत्त्वो का स्वरूप कुछ–कुछ भिन्न बतलाया गया है, फिर भी इनमे मूलत समानता है। इस प्रार्थना मे जड और चेतन को समझाते हुए पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना की गई है। यह प्रेरणा की गई है कि हे चिदानन्द ! तू पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना कर।

पार्श्वनाथ भगवान् अश्वसेन राजा के पुत्र और वामा देवी के नन्दन है। यो तो सभी मनुष्य माता–पिता के पुत्र है परन्तु इनमे यह विशेषता है कि इनका स्वरूप चिन्तामणि है। जिस प्रकार चिन्तामणि समीप मे हो तो ससार के किसी भी पदार्थ का अभाव नही रहता, ऐसे ही भगवान् पार्श्वनाथ का नाम हृदय मे होने पर ससार सम्बन्धी चिताओ का, सुख–दु ख के द्वन्द्व का नाश हो जाता है और फिर किसी चीज की इच्छा शेष नही रह जाती।

भगवान् पार्श्वनाथ का नाम चिन्तामणि है। उससे चिन्ताओ का नाश होता है। मगर चिन्ताओ का नाश तो तभी हो सकता है जब हम अपनी चिन्ताओ को समझ ले। हमे पहले यह समझ लेना चाहिए कि आत्मा को क्या चिन्ता है ?

चिन्तामणि से लोग तन, धन, स्त्री, पुत्र आदि नाना प्रकार के पदार्थ चाहते हैं। वह चिन्तामणि जड है। अत उससे जड पदार्थ मागे जाते है, परन्तु पार्श्वनाथ भगवान् का नाम चैतन्य–चिन्तामणि है। जड से जड पदार्थ मागे जाते है, लेकिन इन चेतन्य–चिन्तामणि से क्या मागना चाहिए ?

पहले चिन्ता का निर्णय कर लेना चाहिए। सासारिक पदार्थो की चिन्ता जड चिन्तामणि से तथा उसके अभाव मे दूसरे साधनो से ही मिट सकती है। उसके लिए चेतन्य–चिन्तामणि भगवान् पार्श्वनाथ से अभ्यर्थना करने की क्या आवश्यकता है ?

पुत्र की इच्छा पूर्ण करने के लिए पहले स्त्री की इच्छा की जाती है। पुत्र यदि भगवान् से ही मिलता हो और स्त्री से न मिलता हो तो फिर कुवारेपन मे ही भगवान् से पुत्र पाने की इच्छा क्यो न की जाती ? पहले स्त्री की इच्छा क्यो की जाती ? इससे भलीभाति सिद्ध हे कि पुत्र, स्त्री से ही मिलता है और यह बात इच्छा करने वाला भी भलीभाति समझता है।

इसी प्रकार लक्ष्मीवान् की सेवा करने से निर्धन धनवान् हो सकता है। फिर धन की अभिलाषा करने वाले की परमात्मा से धन की प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता है ?

शरीर का रोग वैद्य दूर कर सकता है। उसके लिए भी भगवान् के पास दौडने की आवश्यकता नही।

आशय यह है कि ससार के पदार्थ ससार से ही मिल सकते हैं। इससे यह भी सिद्ध है कि जड चिन्तामणि के बिना, जिससे हम ससार के पदार्थ चाहते है, कोई काम नही रुका है। हा, उसके मिलने पर यह अवश्य होगा कि उद्योग नही करना पडेगा और आलस्य मे डूबे रहने पर भी यह सब वस्तुए मिल जाएगी। मतलब यह निकला कि आलस्य बढाने के लिए जड चिन्तामणि से जो चीज प्राप्त होगी वह सब नाशवान् होगी। परन्तु भगवान् पार्श्वनाथ के नाम रूपी चिन्तामणि से जो प्राप्त होगा वह नित्य ओर स्थायी होगा। ऐसी दशा मे प्रधान को छोड कर अप्रधान की तरफ हाथ बढाना अपनी प्रधानता को नष्ट करनी हे।

चक्रवर्ती राजा की कृपा होने पर उससे मुट्ठी भर घास मागना मागना नही, उसका अपमान करना हे। जिसने चक्रवर्ती से घास मागा, समझना चाहिए कि उसने चक्रवर्ती को पहचाना ही नही। जो चक्रवर्ती को समझ लेगा वह घास नही मागकर राज्य मागेगा ओर उससे घास भी आ जायेगा।

इसी प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ के नाम रूपी चिन्तामणि से ऐसी चीज मागो जिसमे सभी चीजो का समावेश हो जाये। तात्पर्य यह हे कि भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना शाश्वत् सुख मोक्ष के लिए की जाती हे। मोक्ष के मागने पर क्या शेष रह जाता हे ? मुक्ति मे सम्पूर्ण सुख का समावेश आप ही आप हो जाता हे।

जेनसिद्धात के अनुसार ससार मे मूल दो पदार्थ हैं– एक जड दूसरा चेतन। इन दोनो के मिलने–विछुडन से सारी सृष्टि का निर्माण होता हे। कहीं किसी आर दृष्टि डालो इन दो के अतिरिक्त ओर कोई पदार्थ दृष्टिगाचर नहीं होता।

जड चेतन मिश्रितपणे रे कर्म शुभाशुभ स्थान।
ये विभ्रम जग कल्पना रे आतम अनुभव ज्ञान।

यह चर्चा सूक्ष्म है उपस्थित श्रोताओ मे दो–चार के सिवाय इसे शायद अधिक न समझ सकेगे। मगर इतनी बात तो समझ ही लेनी चाहिए कि जीव चैतन्य स्वरूप है और जड अचेतन है। इन्ही के मिलने से ससार का यह खेल है। इस चेतन–चिन्तामणि के मिलने पर आप स्वय अनुभव करने लगेगे कि यह ससार नीरस है और हमे इसकी आवश्यकता नही है।

सुना है कि तोते को पकडने के लिए पारधी जगल मे एक यन्त्र लगाते है। जैसे ही तोता आकर यन्त्र पर बैठता है, यन्त्र घूमने लगता है। ज्यो–ज्यो यन्त्र घूमता है, त्यो–त्यो तोता उसे जोर से पकडता है और सोचता है कि इसे छोडते ही मै गिर पडूगा। उस यन्त्र की विशेषता यह होती है कि जब तक उस पर वजन रहेगा वह बराबर घूमता ही रहेगा। इसी कारण पारधी आकर तोते को पकड लेता है। अब आप विचार कीजिए कि तोता किस कारण पकडा गया।

'भ्रम के कारण ।'

वह भ्रम से समझता है कि मेने यन्त्र को छोडा कि नीचे गिरा। इसी भ्रम के कारण वह पकडा जाता है और उसे पिजरे मे बन्द होना पडता है।

शास्त्रकार कहते है इसी प्रकार चिदानन्द कर्म–जाल मे पडकर चक्कर खा रहा है। उसे भ्रम है कि मैने इसे छोडा कि चक्कर मे आ पडा। इसी भ्रम के कारण वह चौरसी लाख योनियो मे चक्कर काट रहा हे। परन्तु पार्श्वनाथ भगवान् का ध्यान करने से यह भ्रम मिट जाता है और मालूम हो जाता है कि ससार हमे चक्कर नही खिला रहा है, बल्कि हम स्वय ही चक्कर खाते हे।

कुछ लोग यह सोचकर निराश हो जाते हैं कि जो कुछ होता है, कर्म से ही होता है। मगर उन्हे यह भी सोचना चाहिए कि कर्म को कौन बनाता और विगाडता है? कर्म को करने वाला कोई दूसरा नही हे। तेरे लिए किसी दूसरे ने कर्म का निर्माण नही कर दिया है। तू स्वय धन उपार्जन करके और कर्मबन्धन मे पडकर चक्कर खा रहा हे। ज्ञान हो तो चक्कर काटना ही न पडे। इन चक्करो से छूटने के लिए ही उस चेतन चिन्तामणि का स्मरण करो। इसीलिए कहा हे–

जीव रे! तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।
ये विभ्रम जगकल्पना रे आतम अनुभव न्याय।

हे जीव ! तू किस भ्रम मे पडा है ! स्थिर होकर समझ कि मेरे ही चक्कर खाने से मै घूम रहा हू और छूटने से छूट सकता हू। अर्थात् मैं ही चक्कर खा रहा हू और मै ही चक्कर खाना छोड सकता हू।

एक आदमी ने पेड को पकड कर चिल्लाना आरम्भ किया–दौडो, मुझे पेड ने पकड रक्खा है। लोग उसकी चिल्लाहट सुन कर दौडे। उन्होने देखा कि उसने स्वय पेड को पकड रक्खा है। उसने कहा–मूर्ख! तुझे पेड ने पकड रक्खा है या तूने पेड को पकड रक्खा है ? छोड दे इस पेड को।

पकडने वाला कहता है–कैसे छोड दू ? इसने तो मुझे पकड लिया है ?

अब जब तक पेड पकडने वाले का भ्रम न मिटे वह सुखी कैसे हो सकता है ?

पार्श्वनाथ भगवान् की प्रार्थना से यह विदित होता है कि ससार ने तुम्हे पकडा है या तुमने ससार को पकड रक्खा है। लोग अब तक इसी भ्रम मे पडे हैं ओर इसी कारण चक्कर काट रहे हैं। भगवान् पार्श्वनाथ से इसीलिए प्रार्थना करनी चाहिए कि–प्रभो ! तेरी कृपा के बिना सच्चा ज्ञान नही आता। में सच्चा ज्ञान चाहता हू।

चिन्तामणि से तुम्हे अन्न–वस्त्र आदि सासारिक सुख के साधन मिल सकते हैं। परन्तु यह साधन आध्यात्मिक क्लेशो को मिटाकर शाश्वत शाति ओर अनन्त आनन्द नही दे सकते। बल्कि इन साधनो के कारण असन्तोष ओर अशाति बढती हे ओर बढते चले जाते है। लेकिन चेतन्य–चिन्तामणि से ऊपर का ही सुख नही मिलता, उससे शरीर का ही सुख नही प्राप्त होता, बल्कि आत्मा को ही आनन्द मिलता हे। एक सेकिड के लिए भी अगर चेतन्य–चिन्तामणि की चाह अन्त करण मे जाग उठे तो निराला ही अनुभव होगा। इसकी चाह मे जितना बढोगे उतना ही आपकी आत्मा का कल्याण होगा।

(ग)

जीव रे ! तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

यह भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना हे। प्रार्थना रूप चिन्तामणि का आत्मा के साथ किस प्रकार योग होता हे यह श्रवण करने का विषय हे। लेकिन श्रवण करने के साथ ही मनन करने की भी आवश्यकता हे। बिना मनन किये श्रवण करना पूर्णतया लाभप्रद नही होता। आज मे प्रार्थना सम्बन्धी कुछ गम्भीर बाते आपको सुनाना चाहता हू। आप सुनने के लिए

तेयार हो अर्थात् एकाग्र चित्त से सुने और आपका मस्तिष्क उन विचारो को ग्रहण कर सके तभी मेरा कहना सार्थक हो सकता है।

प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए ? इस सम्बन्ध मे ससार मे नाना मत है। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ कहता है। लेकिन प्रार्थना की शक्ति को सभी ने एकमत से स्वीकार किया है। प्रार्थना की शक्ति को वेदातदर्शन के अनुयायी परा शक्ति कहते है। शक्ति दो प्रकार की मानी गई है– परा और अपरा। अपरा शक्ति मे तो प्राय सभी ससारी पडे हुए है। इस अपरा शक्ति से परा शक्ति मे जाने के लिए साधन की आवश्यकता है। पराशक्ति मे जाने के लिए ही प्रार्थना की जाती है। प्रार्थना पराशक्ति के प्राप्त करने का साधन है। परा शक्ति किसी दूसरे की नही है। वह है तो हमारी ही, लेकिन आज हम अपरा शक्ति मे पडकर उस परा शक्ति को भूल गये है। जो महानुभाव उस परा शक्ति को प्राप्त कर चुके है, उन्हे देखकर ही हम यह कह सकते हैं कि हे पराशक्ति ! तुम मुझ मे आओ। तुम मेरी हो, फिर मुझ से दूर क्यो हो रही हो ?'

अभी जो प्रार्थना बोली है, उसमे भी परा शक्ति की प्राप्ति का ही उपाय बतलाया गया है। उसमे कहा है

चिन्तामणि चित्त मे बसे तो दूर टले दु.ख द्वन्द्व।

परमात्मा रूप चैतन्य चिन्तामणि के हृदय मे बसे बिना वह शक्ति नही मिल सकती। अतएव उस शक्ति को प्राप्त करने के लिए परमात्मा को हृदय मे बसाने की आवश्यकता है और इसके लिए भी साधन चाहिए। यह बात निसर्ग पर ध्यान देने से अच्छी तरह समझ मे आ सकती है। सूर्य मे प्रकाश तो है ही लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर उसमे कुछ और ही विशेषता जान पडेगी। वैज्ञानिक यह जानते है कि सूर्य की किरण मे आग पैदा करने की शक्ति है। आग की आवश्यकता होने पर वैज्ञानिक सूर्य से रूई पर आग प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह बात प्रतीत हुई कि सूर्य की किरण मे आग है ओर वह आग रूई पर आ भी जाती है। रूई सूर्य की किरण की आग को पकड भी लेती है। लेकिन इसके लिए भी साधन की आवश्यकता है। वह साधन काच है। काच से सूर्य की किरणे एकत्रित होकर रूई मे आ जाती है। इसी प्रकार प्रार्थना मे आत्म–विकास की शक्ति है। यदि आप अपने मे उस शक्ति को प्राप्त करना चाहते हे तो साधन को जुटाइए। इससे वह शक्ति आप मे आ जाएगी। आप उस शक्ति को अपने मे लेना तो चाहते हैं लेकिन जव तक वीच मे साधन न हो–जिस साधन से वह शक्ति अपने मे ग्रहण की जा

सकती हे वह साधन न हो तव तक आप मे वह नही आ सकती। ठीक उसी तरह जेसे किरण मे आग उत्पन्न करने की शक्ति हे ओर वह रूई मे आ भी जाती हे, लेकिन जव तक वीच मे काच न हो, रूई मे आग नहीं आ सकती। इसी प्रकार परमात्मा की शक्ति रूपी आग भी विना साधन के केसे प्राप्त हो सकती हे ? इस कारण यदि आप परमात्मा की वह शक्ति चाहते हें, परा प्रकृति को प्राप्त करने की आपकी इच्छा हे तो उस शक्ति की प्राप्ति के लिए उचित साधन काम मे लीजिए। वह शक्ति आप मे आने से इन्कार नही करती हे। वह दयालु शक्ति हे। लेकिन उसे ग्रहण करने के लिए अपने हृदय को तैयार करो। परमात्मा की सच्चे भाव से प्रार्थना करो। अगर कोई सच्ची रीति से परमात्मा की प्रार्थना नही करता ओर उस शक्ति को दोष देता हे तो वह दोष देने वाला झूठा हे।

परा शक्ति को प्राप्त करने का साधन परमात्मा की प्रार्थना रूपी काच है। लेकिन आपने उस काच पर अनेक आवरण डाल रक्खे हें। उसे वहुत मैला कर रक्खा है। यही कारण है कि उस शक्ति की किरणे आप मे नही आ पाती। अतएव पहले यह विचार करो कि उस शक्ति की किरणे हमारे मे क्यो नही आती ? साथ ही यह भी सोचो कि उस शक्ति को ग्रहण करने वाले काच को किस प्रकार साफ किया जाये ? उस काच को साफ करने के लिए काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सरता और लोभ का त्याग करो ओर जो चीज आपकी नही हे, उससे नाता तोड लो। आचाराग सूत्र मे कहा हे कि जो प्रारम्भ मे ही आपकी नही है, वह अन्त मे और मध्य मे भी आपकी केसे हो सकती हे ? आचाराग का पाठ इस प्रकार हे

जस्स नत्थि पुव्वं, पच्छा, मज्झे तरूस कुओ सिओ ?

अर्थात्– जो पोद्गलिक शक्ति पहले नही थी ओर अत मे भी नही रहेगी, वह बीच मे आपकी केसे ही सकती हे ?

अतएव जो पहले आपका नही था उसे त्यागो। उसके भुलावे मे मत पडो। पाच ओर पाच दस होते हे। इस वात पर आपको विश्वास हे। कोई कितना ही पढा–लिखा विद्वान हो ओर वह आपको दस के वदले नो या ग्यारह कहे तो आप उसका कथन सत्य नही मानेगे। आपको पक्का विश्वास हे कि पाच ओर पाच दस ही होते ह। इस सत्य से किसी के भी कहने पर आप विचलित नही हो सकते। इसी तरह सदा सत्य पर विश्वास रक्खो। जा अत्यन्त आर एकात सत्य हे उसी को अपनाओ। फिर वह परा शक्ति आपसे दूर नही हे। वह आप मे आने के लिए सदा ही तेयार हे। लेकिन या तो आप

उसके और अपने बीच मे साधन रूप काच नही रखते या वह काच मैला है। जब बीच मे काच ही न हो या काच मैला हो तब परा शक्ति रूपी सूर्य की किरणे कैसे आ सकती है ? साधन रूप काच बीच मे हो और वह मैला न हो, किन्तु साफ हो तो वह शक्ति अवश्य ही आप मे आ जाएगी।

कई लोग उस शक्ति के विषय मे सन्देह करते है कि वह शक्ति है भी या नही ? लेकिन इस प्रकार का सन्देह हृदय रूपी काच पर मैल होने का प्रमाण है। जिसका हृदय रूपी काच स्वच्छ होगा उसे शक्ति का अस्तित्व उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार सूर्य की किरणो से आग उत्पन्न होने की बात सत्य है। सूर्य पर तो कभी आवरण भी आ जाता है, मगर वह शक्ति निरावरण है। सूर्य पर आवरण आ जाने से उसकी किरणो से आग नही भी मिलती है, किन्तु वह पराशक्ति तो सदा ही प्राप्त हो सकती है।

सूर्य पर आवरण आ जाने पर और उसकी किरणे प्राप्त न होने पर आग को प्राप्त करने के लिए पहले के लोगो ने चकमक का आविष्कार किया। एक लोहे का टुकडा होता है और एक पत्थर का। दोनो को आपस मे रगडने से आग पैदा हो जाती है जिसे रूई पर ले लिया जाता है। इस तरह कुछ ही पैसो मे चकमक मिल जाती थी और उससे आग प्राप्त कर ली जाती थी। लेकिन आज चकमक के स्थान पर लाखो की दियासलाइया लग जाती है ।

महाकवि भवभूति के द्वारा रचित उत्तररामचरित के एक श्लोक पर यो तो बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर यहा थोडे मे ही कहूगा। उसमे जो विचार व्यक्त किये गये है उन्हे समझा देना मेरा काम है लेकिन अमल मे लाना आपका काम है। समझाने वाले चाहे साक्षात् तीर्थकर ही क्यो न हो सुनने वालो को अमल तो स्वय ही करना पडता है। अपने किये बिना कुछ नही होता। भवभूति कहते है

अद्वैत सुखदु   खयोरनुगुणं सर्वास्वस्थासु यत्।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहायो रस ।।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितम्।
भद्र प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत् प्राप्यत।।

इस श्लोक मे बतलाया हे कि ससार मे सब वस्तुए मिल सकती हे लेकिन एक वस्तु का मिलना बहुत ही कठिन हे। वह वस्तुत पूर्व–जन्मो की अच्छी करनी होने पर ही मिल सकती है। वह वस्तु हे प्रेम। वह पूर्व पुण्य के सचय विना और कष्ट के विना नही मिलता। उस प्रेम का स्वरूप अहेतुक

अनुरक्ति है। अर्थात् वह प्रेम नि स्वार्थ ओर भद्र प्रेम हे। अच्छे मनुष्य का प्रेम भद्रप्रेम होता है और वुरे मनुष्य का प्रेम अभद्रप्रेम होता हे। यहा जिस प्रेम की दुर्लभता बतलाई गई हे वह भद्रप्रेम हे। यह वात अनेक उदाहरणो द्वारा बतलाई जाती हे।

ससार व्यवहार मे पति–पत्नी के प्रेम को प्राय सब से बडा माना जाता है। जिसमे किचित् भी स्वार्थ की भावना नही हे, ऐसा नि स्वार्थ पत्नीप्रेम किसी ही पति को उसके पूर्व पुण्य से ही मिलता है। इसी भाति पत्नी का पूर्व–पुण्य हो तभी उसे पति का नि स्वार्थ प्रेम प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्वामी–सेवक, राजा–प्रजा, गुरु–शिष्य और भगवान् तथा भक्त मे भी नि स्वार्थ प्रेम बिना पूर्व पुण्य के नही होता। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश चाहे जहा लाया जा सकता है, उसी प्रकार प्रेम का प्रकाश भी सब जगह और सब अवस्थाओ मे आता है। यह प्रेम ऐसा है कि चाहे सुख हो या दु ख हो, अद्वैतभाव से रहता है। सुख और दु ख की अवस्था मे प्रेम मे भेद हो जाना द्वैत है।

सीता ने स्वयवर मडप मे राम के गले मे माला डाली थी। इसमे कोई विशेषता नही थी क्योकि उस सभा मे उनके समान बलवान् दूसरा कोई नही था और सिर्फ उन्होने धनुष चढाया था। अतएव उस समय सीता को राम के गले मे वरमाला डालने से प्रसन्नता हुई। इससे सीता की कोई विशेषता नही प्रकट होती। सीता की विशेषता तो इस बात से प्रकट होती हे कि उसे जेसी प्रसन्नता राम के गले मे वरमाला डालते समय हुई थी, वैसी ही प्रसन्नता राम के साथ वन जाते समय भी हुई। इसी का नाम सुख ओर दु ख मे समान प्रेम रहना है और यही अद्वैत प्रेम है। जो प्रेम सुख मे रहे ओर दु ख मे न रहे, वह द्वैतप्रेम है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस प्रकार का अद्वेत प्रेम पति और पत्नी तक ही सीमित रक्खा जाये या आगे बढाया जाये ? आगे स्वामी–सेवक मे भी इस प्रकार का अद्वेत प्रेम रहना कठिन होता हे। कई सेवक ऐसे होते हैं कि जब तक स्वामी से पेसे मिलते हे तब तक तो सेवा करते हैं और जब पैसा मिलना बन्द हो जाता हे तब स्वामी की आबरू लेने को तैयार हो जाते है। नि स्वार्थभाव से सेवा करने वाले सेवक या नि स्वार्थ प्रेम रखने वाले सेवक बडे भाग्य से ही मिलते हे।

अब पिता–पुत्र के प्रेम को देखिए। पिता पुत्र की ओर पुत्र पिता की स्वार्थ से प्रेरित होकर तो सेवा करते ही हे स्वार्थ से तो प्रेम करते ही हे, लेकिन नि स्वार्थ प्रेम पूर्व पुण्य के अभाव मे नही मिल सकता। भाई–भाई मे

स्वार्थमय प्रेम होता ही है। मगर नि स्वार्थ प्रेम कैसा होता है , यह जानना हो तो लक्ष्मण को देखो। राम का राज्य छूटने और उनके वन जाने के समय लक्ष्मण को क्रोध भी आया था और वे सारी पृथ्वी को कपित कर सकते थे। उन्होने कहा भी था कि सौमित्र के होते हुए राम का राज्य कौन ले सकता है ? लेकिन फिर लक्ष्मण ने सोचा कि मै जिनके विषय मे यह सब सोच रहा हू, उन राम की इच्छा क्या है, यह भी तो देख लेना चाहिए। वे राज्य चाहते है या नही ? जब उन्होने राम को देखा तो उनमे नि स्वार्थ प्रेम ही दिखाई दिया। यह देखकर और भाई की इच्छा जानकर उन्होने अपना विचार बदल दिया ओर राम के साथ ही वन जाने का विचार कर लिया। यो तो राम के नाम की माला सभी जपते है। मगर उस जाप का उद्देश्य होता है कि हम पराया माल किसी तरह हजम कर ले।

भाई–भाई के ही प्रेम की तरह सहधर्मी के प्रेम को भी देखो। सहधर्मी भाई से सुख मे प्रेम किया और दु ख के समय उसे भूल गये तो नि स्वार्थ प्रेम नही है। यह स्वार्थ पूर्ण प्रेम है।

गुरु और शिष्य मे कैसा प्रेम होना चाहिए ? जब गुरु सुख मे हो तो चेला हाजिर रहे और गुरु पर जब दु ख आ पडे तो दूर हो जाये तो क्या उस शिष्य का गुरु पर नि स्वार्थ प्रेम कहा जा सकता है ? नि स्वार्थ प्रेम तो तभी कहला सकता है जब वह सुख और दु ख मे समान रूप से रहे, बल्कि दु ख के समय और अधिक समीप आवे।

कहावत है

वखत पड्या ने आवे आडो वो सज्जन से प्रेम है गाडो।
वखत पड्या पर लेवे टालो वो सज्जन को मूडो कालो।

इस प्रकार जो मनुष्य समय पर काम न आवे, दु ख के समय प्रेम न रक्खे, वह सच्चा प्रेमी नही है।

अब ईश्वर और भक्त के प्रेम पर विचार करो। भक्त का ईश्वर पर कैसा प्रेम होना चाहिए ? जब आपको ससार के सभी सुख प्राप्त हो, बेटे–पोते आदि हो और खाने–पीने को खूब मिलता हो उस समय परमात्मा की कृपा मानना ओर कष्ट के समय भगवान को गाली देने लगना भगवान् के प्रति नि स्वार्थ अद्वैत प्रेम नही है। परमात्मा से नि स्वार्थ प्रेम करना सीखना हो तो उनसे सीखो जिन्होने सिर पर धधकते अगार रक्खे जाने पर ओर घानी मे पिले जाने पर भी परमात्मा से प्रेम नही त्यागा जो ऐसी भीषण स्थिति मे भी परमात्मा के पति अटल प्रीति बनाये रहे। जिस प्रकार अगरबत्ती जलने के

समय बहुत खुशबू देती है दु ख के समय परमात्मा से और अधिक सामीप्यमय प्रेम स्थापित करती हे, वह उस समय परमात्मा को गालिया नही देने लगती। अगर दु ख के समय परमात्मा को गाली देने लगे तो स्वार्थपूर्ण ओर द्वैतमय प्रेम समझना चाहिए।

सीता का राम के प्रति नि स्वार्थ प्रेम था ही लेकिन राम भी सीता से नि स्वार्थ प्रेम करते थे। वे सुख के समय सीता से जितना प्रेम करते थे उतना ही प्रेम दु ख के समय भी करते थे। वेसे तो राम के चरित्र को बहिर्दृष्टि से देखने वाले कई लोग उनके चरित्र मे से काटे भी निकालते हे। वे कहते है–सीता गर्भवती थी। उसके प्रसवपीडा हो रही थी, फिर भी राम ने उसे भयानक वन मे छोड दिया। किन्तु उस समय भी राम की मनोदशा का जो वर्णन भवभूति ने किया हे उसे सुनकर किसी भी सहृदय पुरुष को रोना आये बिना नही रह सकता। सीता का परित्याग करने से राम को अत्यन्त उग्र ओर गहन व्यथा हुई थी। उनके लिए सीता का त्याग करना प्राणो का त्याग करने के समान अप्रिय–अनिष्ट था। लेकिन उन्होने कहा था कि भले मुझे प्राण ही क्यो न देने पडे, फिर भी मेरे लिए प्रजा का अनुरजन करना आवश्यक हे। प्रजा ने जानकी पर कलक लगाया है। मे इस बात को लेकर प्रजा का विरोध नही करना चाहता। विरोध करने से प्रजा का अनुरजन नही होगा ओर मेरी तथा जानकी की प्रतिष्ठा भी नही बढेगी। जानकी निर्दोष हे, इसलिए उसका वन मे भी क्या बिगड सकता हे। अन्त मे सच्चाई सूर्य की तरह चमकेगी और उसके चरित्र को घेरने वाले सन्देह के मेघ उसके कष्ट सहन रूप पवन से छिन्न–भिन्न हो जाएगे। अतएव सीता को वन मे भेज देना ही ठीक है। वन जाने के कारण सीता को कष्ट होगा ओर मुझे भी असीम दु ख होगा, मगर सीता की निष्कलकता सिद्ध हो जायेगी ओर ससार के समक्ष एक सुन्दर आदर्श खडा हो जायेगा। राम ने इस प्रकार विचार किया था। इसी कारण वन भेजने के निमित्त को लेकर सीता को भी राम के प्रति अप्रीत नही हुई।

राम ने सीता को वन मे भेज दिया था फिर भी राम के प्रति सीता का प्रेम कम नही हुआ, ज्यो का त्यो बना रहा। इसका कारण यह था कि उन दोनो मे अहेतुकी अनुरक्ति थी। अहेतुकी अनुरक्ति सुख ओर दु ख दोनो मे समान ही रहती हे। उसमे किसी भी समय द्वेत तो होता ही नही हे। चाहे सुषुप्ति–अवस्था हो या जागृति–अवस्था हो केसी भी अवस्था क्यो न हो इस प्रेम मे अन्तर नही आता। जेसे पतिव्रता स्त्री को पर–पुरुष–रमण का

स्वप्न भी नही आता और जैसे किसी भी कुलीन पुरुष को मातृ-रमण का स्वप्न नही आता, क्योकि हृदय मे इसकी भावना ही नही है। जो पुरुष मास-मदिरा नही खाता-पीता उसे उसके खाने-पीने का स्वप्न भी नही आता होगा क्योकि उसके हृदय मे वैसी भावना ही नही होती। इसी प्रकार अहैतुक पेम किसी भी अवस्था मे समान बना रहता है। किसी भी समय कम या ज्यादा नही होता। यह बात उन पति-पत्नी की है जो सदाचारी है और जिनमे निस्वार्थ पेम है। अहकार, निर्लज्जता के दुर्व्यसन मे पडे हुए लोगो की बात निराली है। उनके विषय मे यह नही कहा जा सकता।

अहैतुकी प्रेम से हृदय को विश्राम मिलता है। सासारिक लोगो का हृदय त्रिताप से सदा ही सतप्त रहता है। उदाहरण के लिए, गृहस्थ को धन कमाने मे भी दु ख होता है, उसकी रक्षा मे भी दु ख होता है और व्यय मे भी दु ख होता है। धन चोरी या लूट आदि से चला जाये तब भी दु ख होता है और न जावे तो भी दु ख होता है। इस प्रकार ससारी प्राणी का हृदय त्रिताप से जला करता है। अहैतुकी अनुरक्ति उस तप्त हृदय को विश्राम देती है।

यह प्रेम हृदय का विश्राम किस प्रकार है ? आपने धन का उपार्जन किया है। फिर उसे तिजोरी मे बन्द कर रखने का कारण क्या है ? यही तो आपको भय है कि उस धन को कोई ले न जाये । पैसा कही चला न जाये । इस प्रकार आपका धन ही आपके लिए तापकारक है।

आपका विधिवत विवाह हो गया है, फिर भी स्त्री पर विश्वास नही है। इसीलिए उसे पर्दे मे रक्खा जाता है कि कही कोई देख न ले। अहैतुकी अनुरक्ति होने पर इस तरह का भय नही रहता। सीता को रावण हर ले गया था। सीता अकेली और असहाय थी और रावण प्रचण्ड शक्ति से सम्पन्न था। फिर भी राम को अविश्वास नही हुआ था। सुदर्शन सेठ को शूली पर चढाने के लिए ले जाया जा रहा था। किसी ने उसकी स्त्री मनोरमा से कहा कि तुम्हारे पति को शूली पर चढाया जा रहा है। तब मनोरमा ने यही कहा कि मुझे विश्वास है कि मेरे पति को शूली नही लग सकती। मेरे पति ऐसे नही कि उन्हे शूली लग सके। इतने पर भी अगर शूली लग जाये तो मै यही समझूगी कि मेरे पति शूली पर नही चढे है किन्तु उनके किसी समय के किसी पाप को ही शूली पर चढाया गया हे। धर्म कभी शूली पर नही चढता। शूली पर चढता हे पाप ।

जहा इस तरह नि स्वार्थ प्रेम हे वहा विश्वास रहता हे ओर जहा विश्वास है वहा हृदय को विश्राम हे। पति–पत्नी, भाई–भाई, पिता–पुत्र आदि जिनमे भी इस प्रकार का प्रेम हे उनमे सदा विश्वास ही रहता है ओर उनका गृहस्थ–जीवन सुखमय तथा शातिमय व्यतीत होता हे। वहा भय ओर अविश्वास को अवकाश नही रहता। इस तरह नि स्वार्थ प्रेम हृदय के लिए विश्राम है। ऐसा नि स्वार्थ प्रेम अनेक जन्म के पुण्य ओर अनेक जन्म की तपस्या से ही मिलता है।

हमने पहले पुण्य का उपार्जन नही किया है, अव हम क्या कर सकते है ? इस प्रकार विचार कर निराश होने का कोई कारण नही है। आस्तिक के पास निराशा फटक नही सकती। आस्तिक पक्का आशावादी होता हे। उसका धैर्य असीम और उसका उत्साह अटूट होता हे अनादि भूतकाल की भाति।

भविष्य उसकी दृष्टि के सन्मुख रहता है। आस्तिक यही सोचेगा कि पहले पुण्य नही किया तो न सही। मै इस जीवन के साथ समाप्त हो जाने वाला नही हू। अनन्त काल समाप्त हो गया पर में समाप्त नही हुआ ओर अनन्त भविष्यकाल, भूतकाल के रूप मे परिणत हो जायेगा, फिर भी मे वर्तमान ही रहूगा। मैं अब पुण्य का सग्रह करूगा ओर वह पुण्य भविष्य मे काम आएगा। इस भव मे उपार्जन किया हुआ पुण्य ओर की हुई तपस्या कदापि वृथा नही जाएगी। जो इस तरह सुदृढ श्रद्धा के साथ पुण्य ओर तप करेगा उसका भविष्य निस्सदेह मगलमय होगा।

मित्रो ! अहेतुक प्रेम जगत् का शृगार हे वही परमात्मा से साक्षात् कराने वाला हे। अतएव परमेश्वर के प्रति नि स्वार्थ भाव से अनुराग धारण करो। यह प्रार्थना का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य हे ओर इसी मे आपका सच्चा कल्याण हे।

(घ)

जीव रे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

भगवान पार्श्वनाथ की इस स्तुति मे अपूर्व रहस्य भरा हे। वह रहस्य गहरे विचार के विना समझ मे नही आ सकता। थोडे शव्दो मे मे यह समझाने का प्रयत्न करूगा कि इस स्तुति मे क्या विचार निहित हे।

सामान्य रूप से भगवान एक हे, परन्तु एक मे अनेक दिखाने के लिए चोवीस तीर्थकरो की स्तुति की जाती हे। प्रत्येक स्तुति मे भिन्न–भिन्न विचार

प्रकट किये गये है। उन सबको भली–भाति समझ कर आत्मा को बलवान् बनाने का उपाय करना हम सबका परम कर्त्तव्य है।

भगवान् पार्श्वनाथ की इस स्तुति मे कहा है–

जीव रे ! तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द।

अर्थात्–हे जीव ! तू इधर–उधर मत भटक, पार्श्वनाथ भगवान् की वन्दना कर। पार्श्वनाथ भगवान् कौन है !

अश्वसेन–नृप कुल–तिलो रे, वामा देवी के नन्द।

भगवान् का यह स्थूल रूप मे परिचय है। इससे ज्ञानी तो समझेगे ही बाल जीव भी इतना समझ लेगे कि पार्श्वनाथ भगवान् अश्वसेन राजा और वामा देवी के पुत्र थे। वे भी अपने जैसे ही थे। यद्यपि वे थे विशिष्ट परन्तु थे मनुष्य ही। उनका जन्म उसी प्रकार स्वाभाविक रीति से हुआ था, जैसा मनुष्यो का होता है। इनके जन्म मे ऐसी कोई विचित्रता या अस्वाभाविकता नही थी, जैसी कि दूसरे लोग अपने भगवान् की महिमा प्रकट करने के लिए कल्पना करते हैं। जैसे दूसरे लोग कुआरी का बिना बाप का बेटा या आकाश से उतरा हुआ बेटा कह कर असम्भव को सत्य करने का प्रयत्न करते है, इनमे जन्म मे ऐसी कोई अलौकिकता नही थी। हा, उनमे यह विशेषता अवश्य थी कि जन्म लेकर भी वह अजन्माधर्म को पहुचे अर्थात् उन्होने परम पद प्राप्त किया। इस कारण वे हमारे लिए चिन्तामणि है।

चिन्तामणि चित मे बसे रे, दूर टले दु ख द्वन्द्व।

चिन्तामणि का अर्थ है–जो चित्त की चिन्ताओं को दूर करे। प्रश्न किया जा सकता है कि जब जड चिन्तामणि से चित्त की चिन्ताए दूर हो जाती है तब पार्श्वनाथ भगवान् का ध्यान क्यो करे ?

मित्रो ! चिन्तामणि से जो कार्य होता है वह कार्य तो भगवान् के स्मरण से ही हो जाता है। परतु जो चिन्ता इनसे नाश हो सकती है वह चिन्ता चिन्तामणि से नही नष्ट हो सकती।

ससार मे साधारणतया पहले अन्न की चिन्ता रहती है। अन्न के पश्चात् दूसरी चिन्ता वस्त्र की होती है। यद्यपि वस्त्र कृत्रिम है फिर भी उसकी चिन्ता होती है। वस्त्र के बाद घर की, घर मिल जाने पर स्त्री की और स्त्री प्राप्त हो जाने पर पुत्र की चिन्ता होती है। मतलब यह है कि एक–एक चिन्ता पूरी होती जाती हे ओर दूसरी–दूसरी चिन्ता उत्पन्न होती जाती है। इस प्रकार घर स्त्री और पुत्र आदि हुए तो टके–पेसो की चिन्ता लगती है। जब वह चिन्ता भी पूर्ण हो गई तो मान, बडाई ओर आनन्दमय जीवन व्यतीत होने की

नवीन चिन्ता का जन्म होता हे। भगवान् पार्श्वनाथ की प्रार्थना और वन्दना से यह चिन्ताए सहज ही दूर हो जाती हैं, साथ ही पार्श्वनाथ के सिवाय अन्य तरह से भी यह चिन्ताए मिट सकती है। मे अलग–अलग समझाने का प्रयत्न करूगा तो समय अधिक लग जायेगा। इसलिए सक्षेप मे ही कहता हू। मे आपसे पूछता हू कि पहले आप पेट चाहते हें या अन्न ?

'पेट ।'

पेट हुआ तो हाथो से पेट भरने के लिए उद्योग क्यो न किया जाये? पेट भरने के लिए किसी की शरण लेने से क्या लाभ है ? इसी प्रकार वस्त्र, घर और स्त्री की प्राप्ति भी उद्योग से हो सकती है। स्त्री होने पर पुत्र भी मिल जायेगा। तात्पर्य यह है कि इन सब चिताओ को पूर्ण करने के लिए पार्श्वनाथ का स्मरण न किया जाये तो भी उद्योग से वह पूरी हो सकती है। तो फिर पार्श्वनाथ की वदना करने की आवश्यकता क्यो है ? किस प्रयोजन के लिए पार्श्वनाथ का चितन करना चाहिए ? अभी प्रार्थना मे कहा है

जड चेतन मिश्रितपणेरे, कर्म शुभाशुभ भाव।

भगवान् पार्श्वनाथ के स्मरण बिना यह मालूम नही होता कि जड–चेतन क्या है ? इनकी मिलावट से ससार मे क्या बना है।

ससार मे दो वस्तुओ की शक्ति है या एक की ही इस विषय को लेकर ससार मे भ्रम फैला हुआ है। यह विषय बहुत गम्भीर है। भारतवर्ष के बडे–बडे दार्शनिको ने इस विषय मे विशाल ग्रथ रचे हे। फिर भी विषय का अन्त नही आया। मै यहा थोडे से शब्दो मे इस विषय पर साधारण प्रकाश डालूगा।

सम्पूर्ण विश्व को एक ही शक्ति का परिणाम मानने वालो मे भी दो मत है। चार्वाकदर्शन एक जड शक्ति को स्वीकार करता है। वह कहता है–ससार मे जो कुछ है, जड ही है। जड के अतिरिक्त चेतन्य कुछ भी नही है। जड से ही यह सारा ससार बना हुआ है। जैसे स्त्री पुरुष के मिलने से मनुष्य बनते हे, इसी प्रकार एक जड पदार्थ का दूसरे जड पदार्थ के साथ मेल होने से सारा ससार बना है। कत्था, चूना और पान अलग–अलग हो तो रग नही आएगा, किन्तु जब यह तीनो मिलते है तो रग आ जाता हे। साराश यह हे कि जड के आपस मे मिलने से ही यह सब कुछ हे।

उनकी यह भी मान्यता हे कि नर–नारी के सभोग से स्त्री ओर पुरुष की उत्पत्ति होती हे। यदि वीर्य ज्यादा हुआ तो पुरुष उत्पन्न होगा रज ज्यादा होगा तो स्त्री। रज ओर वीर्य के बराबर होने पर नपुसक पेदा होगा। इस

पकार ससार के समस्त पदार्थ जड के सम्मिलन ओर परिणमन से ही बने ह। जड के अतिरिक्त चैतन्य की कोई सत्ता नही है।

अब दूसरे वेदात को लीजिए। वेदातदर्शन चार्वाकदर्शन के समान ही एक शक्ति को स्वीकार करता है, लेकिन वह चेतन्यवादी हे। उसकी मान्यता के अनुसार चैतन्यत्व ही सत् है। चेतन के अतिरिक्त जड की कोई सत्ता नही हे। चिदानद रूप एक अखड पुरुष हे। उसी की बिखरी हुई यह माया ससार है।

इन सब मान्यताओ पर विस्तार के साथ विचार करने का समय नही है। परतु चार्वाक से पूछा जाये कि तुम्हारे मत से वीर्य–सामग्री से मनुष्य बना है और इसकी पुष्टि के लिए तुम पान का उदाहरण देते हो। पर यह किसी के अधीन है या आप ही आप मिल जाते है ? यह खट–खट करने वाली घडी जड पदार्थ के सयोग से बनी है, परन्तु किसी अधीनता से बनी है या आप ही आप ? अगर अधीनता मे बनी है तो किसकी अधीनता मे बनी हे–जड या चेतन की ? यदि जड के ही अधीन है तो फिर विज्ञान की क्या आवश्यकता थी ? चाहे जो क्यो नही बन लेगा ?

थोडी देर के लिए समझ ले कि घडी को बनाने वाला चैतन्य नही है परन्तु इस घडी को घडी समझने वाला कौन है ? मित्रो ! जिसने यह पदार्थो का सयोग करके घडी को बनाया है ओर जो इसको घडी समझता हे वह चैतन्य हे।

इसी प्रकार सिर हाथ, पाव चेतन नही है, परन्तु इनको हाथ, पाव और सिर समझने वाला और इनका सयोग करने वाला चिदानन्द है, जो हमारे भीतर वास कर रहा हे। उसी के प्रभाव से यह शरीर जुडा है। पान, कत्था ओर चूने का भी यही हाल समझिए। उन्हे ज्ञान नही था कि हमारे मिलने से रग आ जाएगा। चेतन ने उन्हे मिलाया तब वे मिले हैं। मतलब यह है कि जो कुछ होता हे वह जडचेतन के मिश्रण से होता है। केवल जड से नही।

वेदातदर्शन केवल चेतनतत्त्व को ही स्वीकार करता है। उससे भी यही प्रश्न किया जा सकता है कि यह घडी जड से बनी है या केवल चेतन से ? अगर केवल चेतन से ही बनी है तो यह खोखा यहा क्यो आया ? आप बेठे–बैठे मनोकल्पना से घडी क्यो नही बना लेते ? परन्तु बिना जड उपादान के वह केसे बन सकती हे ?

इन सब बातो पर विचार करके ही जैनसिद्धात कहता है कि यह सारा ससार न केवल जड का ही परिणाम हे न केवल चेतन का ही, वरन् जड और चेतन दोनो के सम्मिलन का ही परिणाम है। शरीर का कर्त्ता चेतन है परन्तु वह

विना जड के नही ठहर सकता। यदि चेतन का ही परिणाम हो तो अन्न–पानी खाने–पीने की आवश्यकता क्यो हो ? साराश यह हे कि वास्तव मे जड ओर चेतन के मेल से ही ससार का यह खेल हे। दोनो के मेल के विना यह कुछ भी नही हो सकता।

अब प्रश्न होता हे कि इस मिश्रण मे दो भेद क्यो हुए ? अर्थात् कोई सुखी है ओर कोई दु खी है, सो क्यो ?

मित्रो यह कर्त्ता का भाव हे। कर्त्ता यदि अच्छे रूप से करे तो अच्छा होता है, बुरे रूप से करे तो बुरा होता हे। ज्ञान रख कर काम कर डालने का ही यह परिणाम है। लाल मिर्च मुह मे डाल लेने पर जलन अवश्य होगी। जलन उत्पन्न होने देना या न होने देना मिर्च खाने वाले के हाथ नही रहता। इसी कारण ज्ञानी कहते है कि कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ध्यान रक्खो। कौन–सा कार्य हानिकारक होगा और कौन–सा कार्य हानिकारक नही होगा ? इन बातो पर विचार करके ही प्रवृत्ति करनी चाहिए।

कर्त्ता चेतन है, परन्तु उसे भ्रम क्या हे, यह समझ लीजिए।

वहमी भय माने यथा रे, सूने घर वेताल।
त्यो मूरख आतम विषेरे, मान्यो जग भ्रम जाल ।। जीव रे ।।

कोई कहता है इस घर मे बेताल रहता हे। में पूछता हू कि यह कैसे जाना ? जिस घर वैताल बतलाया जाता हे उसमे दो आदमी जाते हे। एक वेताल के भय से भ्रात होकर और दूसरा निर्भय होकर। भयभीत मर जाये ओर निर्भय न मरे, इसका क्या कारण है ? अगर वैताल वास्तव मे हे तो दोनो क्यो नही मरे ?

सुना हे दो मित्रो मे से एक ने कहा कि मै आधी रात को श्मशान मे जाऊ तो भी डर नही लग सकता। दूसरे ने कहा अगर आधी रात के समय श्मशान मे जाकर खूटी गाड आओ तो में तुम्हे मिठाई दूगा। पहला मित्र गया और उसने खूटी गाड दी। तब तक उसे किसी प्रकार का भय नही हुआ। परन्तु खूटी के साथ उसके कपडो का एक पल्ला भी गड गया था। जब वह चलने लगा तो पल्ला खिचा इससे यकायक चित्त मे भय का उद्रेक हुआ ओर वह वही मर गया।

मे अपने अनुभव की बात कहता हू। जहा लोग भूत का रहना कहते थे ओर वतलाते थे कि यहा भूत पटक देता हे वहा हम खूब रहे, परन्तु तनिक भी खटका नही हुआ। इसका क्या कारण हे ? मित्रो । असल मे भ्रम ही अनिष्टकारक होता हे। भ्रम ही बुराई का वीज हे ओर इसी को अविद्या, माया

या भय कहते हे। मनुष्य स्वय भय की कल्पना करता है और उसी कल्पित भय से मर जाता है।

कहा जा सकता है कि अगर सचमुच भूत मिल जाये तो ? परन्तु जब तक आपके हृदय मे भय न हो तब तक भूत कुछ नही बिगाड सकता। पश्नव्याकरण सूत्र मे कहा है कि जो भूत से डरता है उसी को भूत छलता है और जो नही डरता उसका वह कुछ नही बिगाड सकता। तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने भ्रम से मरता है।

इसी प्रकार कुछ लोग कहते है कि भगवान् मारता है और भगवान जिलाता है। भगवान् सुख देता है और भगवान् ही दु ख देता है। यह सब कल्पना मात्र है। वास्तव मे मनुष्य का विचार ही नरक या स्वर्ग देता है। परमात्मा का इन बातो से कोई सरोकार नही है। अगर मनुष्य बुरे विचारो को तिलाजलि दे दे तो वह स्वय मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

मैं बचपन मे रतलाम मे रहा था। वहा के एक श्रावक सेठ अमरचन्दजी कहा करते थे

प्रभु सुमरन सौ दु ख हरे, चुप दु ख हरे हजार।
गुरु–कृपा लख दु ख हरे, सब दु.ख हरे विचार।।

अर्थात्–परमात्मा के स्मरण से सौ दु खो का नाश होता है, चुप रहना हजार दु खो को दूर करता है, गुरु की कृपा से लाख दु खो का अन्त हो जाता है और विचार से सभी दु खो का नाश होता है।

शुभकरणजी चौबीस वर्षो मे चारो धाम करके आये, पर शिकार और मजा–मोज मे उन्हे जो आनन्द आता था, उसमे कोई अन्तर नही आया। उनका मन ज्यो का त्यो रहा। इसका कारण यही था कि उनके विचार वही थे। मे एक बार रतलाम था तब शुभकरणजी–जो उदयपुर के राजकवि थे, एक वार आये। उस समय के व्याख्यान का उन पर ऐसा असर पडा कि जो नियम आप श्रावक कहलाते हुए भी न पालते होगे, उन नियमो का वे पालन करने लगे। रात्रि मे भोजन न करना जमीकद न खाना आदि कई नियम वे पालने लगे। यद्यपि उन्हे प्राय राजाओ के साथ रहना पडता है फिर भी उनके नियमो पर राजाओ की सगति का कोई असर नही पडता। असल बात है कि आत्मा मे बल हो तो फिर कोई भी शक्ति नियम मे बाधा नही डाल सकती। आशय यह हे कि गुरु की भक्ति से हृदय का भ्रम दूर होता है और निश्चय हो जाता हे। मगर गुरुभक्ति होना सरल नही है। कहा है

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु. गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नम ।।

अर्थात् गुरु ही व्रह्मा, विष्णु ओर महेश हे। ओर सब जाने दीजिए, परम ब्रह्म का दर्शन करना हो तो वह भी गुरु ही है।

गुरु को इतना ऊचा पद क्यो दिया गया है, इस पर विवेचन करने का समय नही है, फिर भी इतना कहता हू कि गुरुभक्ति हो तो लाखो दु ख दूर हो जाए। गुरु मार्ग बतलाता है तब परम ब्रह्म का दर्शन होता हे। गुरु की कृपा के बिना परम ब्रह्म की प्रतीति और प्राप्ति नही हो सकती।

प्रश्न किया जा सकता है कि जिन्होने गुरु बना लिया है, क्या उन सबके दु ख दूर हो गये ? इसका उत्तर यह है कि गुरु सच्चा हो, पहुचा हुआ हो और शिष्य उसके निर्देश के अनुसार चले तो दु ख दूर होते है। एक के दु ख को दूसरा नष्ट नही कर सकता। गुरु मार्ग प्रदर्शित करता हे। गलत रास्ते से बचा कर सही रास्ते पर चलाता है। मगर चलने का काम तो स्वय शिष्य का होता है। सूर्य प्रकाश फैलाता है और उसके प्रकाश मे रास्तागीर रास्ता देख सकता है, मगर चलना तो रास्तागीर को ही पडेगा। तभी उसकी मजिल पूरी होगी। अगर रास्तागीर आखे बन्द कर ले तो सूर्य का प्रकाश होने पर भी सही रास्ता दिखाई नही देगा या आख खोलकर भी वह जान–बूझ कर गलत रास्ते पर चलते है तो सूर्य उसे किस प्रकार रोक सकता हे? अथवा रास्तागीर सुस्त होकर पडा रहे, आगे कदम न बढाए तो भी मजिल केसे तय होगी ? सूर्य अपना काम करे और रास्तागीर अपना काम करे तभी उसका प्रयोजन सिद्ध होगा। यही बात गुरु ओर शिष्य के सम्वन्ध मे समझ लेनी चाहिए।

मन्त्र–तन्त्र मे भी यही कहा जाता हे

गुरु की शक्ति, मेरी भक्ति, फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

मतलब यह है कि छोटी–छोटी बातो मे भी गुरु की शक्ति ओर अपनी भक्ति बतलाई गई हे। ओर कहा तक कहा जाये, ईश्वर की कल्पना भी गुरु बतलाएगे।

हा, मे विचार के सम्वन्ध मे कह रहा था। 'सब दु ख हरे विचार।' ससार का सुख दु ख, स्वर्ग मोक्ष, सव विचारो पर ही अवलम्वित हें। विचार इन सब का खजाना हे। इसलिए बुरे विचारो को फेक दो। मा–वाप भाई–भाई आदि मे भी कलह होता हे उसका कारण विचार ही से उत्पन्न

होता है। बुरे विचारो के समान आत्मा का ओर कोई शत्रु नही हे। अतएव बुरे विचारो को बदलने के लिए कहा हे

जीव रे । तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द–

गुरु यही उपदेश देगे कि यदि तुझे अपना विचार अच्छा बनाना हे तो पार्श्वनाथ जिनेश्वर को हृदय मे स्थान दे। उन्हे हृदय मे बसाने से तेरे बुरे विचार बदल जाएगे।

शास्त्र मे भी कहा है

अप्पा कत्ता विकत्ता या दुक्खाण सुहाणाय।

अर्थात् आत्मा आप ही अपने दु खो और सुखो का कर्त्ता है। गीता मे भी यही कहा है

आत्मैवात्मन बन्धुरात्मैव रिपुमात्मन ।

अर्थात्–तुम्हारा ही तू मित्र और शत्रु तुम्ही हो, और कोई नही।

जब तक मनुष्य को जड–चेतन का ज्ञान नही होता तब तक वह अपने ही विचार के कारण डूबता है। जैन शास्त्र ओर गीता के उद्धरण इसी सत्य पर प्रकाश डालते हैं।

चिदानन्द को चक्कर खाते–खाते बहुत समय व्यतीत हो गया। जो भूतकाल मे हो चुका है उसे देखकर भविष्य का विचार करना चाहिए। पूर्व कर्मो को भस्म करने का उपाय पश्चात्ताप है। जिसने पूर्वकृत पापो के लिए पश्चात्ताप किया होगा, उसी की आत्मा मे दृढता होगी और वही आगे पाप न करने का सकल्प करके पापो से बचने का प्रयत्न करेगा। जो पश्चात्ताप करेगा उसके पाप तो छूट जाएगे, परन्तु जो पश्चात्ताप नही करता उसके पाप किसी भी प्रकार नही छूट सकते। पाप का छिपाना कायर का काम और उन्हे प्रकट करके पश्चात्ताप करना वीरता है।

मित्रो । जो बात गई सो गई । अब रही को रक्खो। 'गई सो गई अब राख रही को।' अगर आप इन विचारो को हृदय मे धारण करेगे तो आपको अपूर्व आनन्द होगा। ससार के ही कामो को देख कर विचारना चाहिए कि अच्छे काम ओर बुरे काम का परिणाम क्या है ? ससार को सुधारने के लिए भी अच्छे विचारो की आवश्यकता हे ओर मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी। बुरे विचारो से कही भी काम नही चलता। शास्त्र मे श्रावको के लिए कहा ह कि श्रावक आजीविका भी धर्म से ही चलाता हे। श्रावक धर्म से आजीविका चलाता हे तो वह धर्म की आजीविका शुभ विचार से ही करेगा या अशुभ विचार से ?

लोगो ने भ्रम फेला रक्खा हे कि धर्म सिर्फ साधु के पास ही हे, ओर सब जगह तो पाप ही पाप है। इस भ्रम से आपको बचना चाहिए। साधु के पास आपके लिए धर्म की शिक्षा है, उसको प्रयोग मे लाने का स्थान दूसरा है। बालक पाठशाला मे विद्या सीखते है। अगर घर जाकर वे भूल जाए तो? अगर वे यह समझ कर कि विद्या तो पाठशाला की ही चीज है घर मे उसका उपयोग न करे तो ? वह विद्या निरर्थक सिद्ध होगी। इसी प्रकार साधु के पास जाकर सुना हुआ धर्म यदि घर जाकर भुला दिया जाये तो वह भी किस काम का ? साधु से धर्म का जो श्रवण करते हो उसे अपने जीवन–व्यवहार मे उतारने की चेष्टा करो, अपना प्रत्येक व्यवहार धर्म के अनुकूल बनाओ ऐसा करने से ही आपका कल्याण होगा और जगत् का भी कल्याण होगा।

24. श्री महावीरजिन–स्तवन

प्रार्थना

श्री महावीर नमू वरनाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी।
धन धन जनक 'सिद्धारथ' राजा, धन 'त्रिसलादे' मात रे प्राणी। 1।
ज्यौ सुत जायो गोद खिलायो, 'वर्धमान' विख्यात रे प्राणी।
प्रवचन सार विचार हिया मे, कीजे अरथ प्रमाण रे प्राणी। 2।
सूत्र विनय आचार तपस्या, चार प्रकार समाध रे प्राणी।
ते करिये भवसागर तरिये, आतम भाव अराध रे प्राणी। 3।
ज्यो कचन तिहु काल कहीजे, भूषण नाम अनेक रे प्राणी।
त्यो जगजीव चराचर जानी, है चेतन गुण एक रे प्राणी। 4।
अपनो आप विषै थिर आतम, सोह हस कहाय रे प्राणी।
केवल ब्रह्म पदारथ परिचय, पुद्‌गल भरम मिटाय रे प्राणी। 5।
शब्द रूप रस गध न जामें, नाम परस तप छाह रे प्राणी।
तिमिर उदोत प्रीत कछु नाही, आतम अनुभव माहि रे प्राणी। 6।
सुख दुख जीवन मरन अवस्था, ए दस प्राण सगात रे प्राणी।
इन थी भिन्न विनयचन्द' रहिजे, ज्यो जल मे जलजात रे प्राणी। 7 ।

आज चौबीसवे तीर्थकर भगवान् महावीर की प्रार्थना की गई है। इस प्रार्थना मे भगवान् के द्वारा दी हुई शिक्षा का विचार करना है।

भगवान् महावीर महान् उपदेशक ओर महान् शिक्षादाता हो गए है। उनकी शिक्षाओ के अनुसार ही आज शासन चल रहा है। शिक्षा तो महावीर स्वामी के पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ आदि ने भी दी थी, लेकिन भगवान् महावीर न जनमते तो वह शिक्षा अपने तक कैसे पहुचती ? अतएव हमारे अव्यवहित कल्याणकारी शिक्षादाता भगवान् महावीर ही है।

भगवान ने क्या शिक्षा दी है यह तब देख पाओगे जब एकाग्र आत्मा करके उतरोगे। सूक्ष्मदर्शक यत्र से यद्यपि छोटी–छोटी चीजे बडी दिखाई देती

हे, परन्तु देखने वाला यदि आख ही मूद ले तो यन्त्र क्या कर सकता हे ? अगर हम हृदय के नेत्रो से देखे तो वडे–वडे गम्भीर विचार दीखेगे । हृदय शून्य होगा तो यह लाभ नही हो सकेगा।

इस प्रार्थना मे भगवान् के माता–पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई है। कारण यह है कि भगवान् से हमे शिक्षा मिली है। इसी कारण भगवान् को नमस्कार किया जाता है ओर इसी कारण उनके जन्मदाता माता–पिता का नाता अपने साथ जुड जाता है। कन्या की सगाई वर के साथ होती हे। लेकिन वर के माता–पिता को वह सास–श्वसुर समझती है। ऐसा समझ वह उनकी जो मानप्रतिष्ठा करती है सो पति सम्बन्ध के ही कारण करती हे। वह जानती है कि यह माता–पिता न होते तो पति कहा से आते ? इसी प्रकार भगवान् के माता–पिता न होते तो भगवान् हमे शिक्षा देने के लिए कैसे जन्म लेते ?

भगवान् महावीर के माता–पिता को जो पूज्य दृष्टि से न देखे वह कृतघ्न है। उसने जैनधर्म को नही समझा। उपकारी का उपकार मानना परम कर्त्तव्य है। इसीलिए यह प्रार्थना की गई है

धन धन जनक सिद्धारथ राजा, धन त्रिसलादे मात रे प्राणी।
ज्या सुत जायो गोद खिलायो, वर्द्धमान विख्यात रे प्राणी।
श्री महावीर नमूं वर नाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी।

धन्य है वे माता–पिता जिन्होने जगत् मे प्रकाश करने वाले पुत्र को जन्म दिया। जिनके पुत्र के होने पर 64 इन्द्र उत्सव करे वे धन्य है । वे धन्य है जिन्होने ऐसे पुत्र को गोद मे खिलाया कि जिनसे हमे धर्म का अपूर्व प्रकाश मिला है ।

भगवान् महावीर से हमे प्रेम क्यो होना चाहिए ? इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका हे। भगवान् ने हमे धर्म की शिक्षा दी हे। अगर वे हमे शिक्षा न देकर आप ही तर जाते और यह सोच लेते कि दूसरो के डूव जाने या तिरने से हमे क्या प्रयोजन हें ? तो हमारी क्या स्थिति होती ।

भगवान् महावीर ने करीब साढे बारह वर्ष तक तपस्या करके केवलज्ञान ओर तप का सार लेकर 30 वर्ष तक ससार को उपदेश दिया हे ओर हम लोगो ने भी पात्रता प्राप्त करके उस उपदेश को ग्रहण किया हे। अव यह सोचना चाहिए कि जव भगवान ने हमे शिक्षा दी हे तो हम जगत को शिक्षा क्यो न दे ?

साधु साधु की तरह ओर श्रावक श्रावक की तरह शिक्षा देते हे। सुवुद्धि प्रधान ने जितशत्रु राजा को पानी से समझाया। राजा प्रधान से कहा

करता था कि अशुभ पुद्गल शुभ पुद्गल कैसे हो सकते है ? इसी बात को समझाने के लिए सुबुद्धि पधान ने गदी खाई का पानी मगवा कर, शुद्ध करके राजा को पिलाया। अब जरा विचार करो कि राजा को समझाने का कार्य पाप हुआ या धर्म ?

कहा जायेगा कि प्रतिबोध देना तो धर्म है किन्तु आरम्भ पाप है। इस सम्बन्ध मे गहराई के साथ सूक्ष्म विचार करने की आवश्यकता है। एक आदमी पीने के लिए जल साफ करता है और दूसरा धर्म का तत्त्व समझाने के लिए। क्या दोनो का आरम्भ एक–सा बराबर है ? एक आरम्भ शादी के लिए करो और एक कल्याण के लिए करो तो क्या दोनो बराबर है ? एक मनुष्य अपनी जिह्वा की तृप्ति के लिए बढिया भोजन बनाता है और दूसरा लूले–लगडे एव भूख से तडपते हुए को देने के लिए बनाता है। क्या दोनो का फल बराबर है ?

'अन्तर है।'

बस, इसी तरह समझ लो।

कहा जा सकता है कि यह पुण्य है तो साधु क्यो नही करते ? इसका उत्तर यह है कि सुबुद्धि ने पानी के द्वारा राजा को समझाया था, तो साधु पानी के द्वारा क्यो नही समझाते ? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा जाएगा कि ऐसा करना साधु का कल्प नही है। और यही उत्तर इस प्रश्न का भी समझ लेना चाहिए। वास्तविक बात यह है कि साधु और श्रावक का कल्प अलग–अलग है। दोनो अपने–अपने कल्प के अनुसार प्रवृत्ति करते है। जो कार्य साधु के कल्प से बाहर है वे श्रावक के कल्प से भी बाहर है, इस प्रकार का एकात मान बैठना धर्म के तत्त्व की अनभिज्ञता का सूचक है।

मित्रो ! जरा विचार करो। एक मनुष्य स्वार्थ से प्रेरित होकर अर्थात् यह सोचकर कि राजा खुश हो जायेगा तो जागीर दे देगा उसे घोडे पर चढाकर घूमाता है। दूसरा पुरुष चित्त प्रधान की भाति राजा के द्वारा होने वाली घोर हिसा को टालने के लिए राजा को सच्चे धर्म का बोध कराकर नास्तिक से आस्तिक बनाने के उद्देश्य से घोडे पर चढाकर मुनि के पास ले जाता है। क्या यह दोनो पुरुष बराबर है?

इन सब बातो पर भली–भाति विचार कर ऐसा मत करो जिससे जैनधर्म पर पानी फिरे ऐसा करो जिससे धर्म की जड न कटे। यह तो स्पष्ट है कि स्वार्थ और परमार्थ दोनो मे घोडे दौडाने का आरम्भ ऊपरी दृष्टि से बराबर है फिर भी दोनो के आरम्भ मे आतरिक दृष्टि से बहुत फर्क है। एक

स्वार्थ के लिए आरम्भ समारम्भ करता हे ओर दूसरा किसी दु ख मे पडे हुए को मुक्त करने के लिए आरम्भ–समारम्भ की क्रिया करता है, तो दोनो वरावर केसे हो सकते हैं ? कोई भी काम विना क्रिया के नही हो सकता। वालू वाजरे का काम देने लगे तो चक्की क्यो पीसनी पडे ? विना खिलाये–पिलाये वालक वडा हो जाये तो लोग क्यो खिलावे–पिलावे ? परन्तु ऐसा सम्भव नही हे, इसलिए अनुकम्पादान का विधान हे।

अगर विना क्रिया ही काम हो सकता हो तो चित्त प्रधान, राजा प्रदेशी को, केशी स्वामी के पास लाने की क्रिया क्यो करता ? ओर यदि वह क्रिया पाप हुई तो

धरम दलाली चित्त करे।

ऐसा क्यो गाते हैं ?

अगर इस क्रिया के सम्वन्ध मे यह कहा जाये कि इसका परिणाम सुन्दर था तो दूसरी क्रियाओ के परिणाम का भी विचार करना चाहिए। इस प्रश्न को भी समझ लेना चाहिए ।

आपने एक मनुष्य को मुनीम नियुक्त करके दुकान का कारोवार सम्भालने के लिए कलकत्ता भेजा। दूसरा आदमी वहा नाच–कूद आदि करने को गया। इन दोनो को आप खर्च दे तो क्या वरावर हे ! मुनीम के लिए तो आप कह देगे कि बिना वेतन दिये उससे काम केसे कराया जा सकता हे ! दूसरे आदमी को एक पाई देना भी अनुचित मालूम होगा। इसी प्रकार एक क्रिया पाप के लिए की जाए ओर दूसरी क्रिया के साथ अच्छे फल का सम्वन्ध हो, तो उस अच्छे फल को न देखते हुए दोनो क्रियाओ मे एक–सा पाप वतला देना और भाव का विचार न करके अच्छे काम की जड ही काट देना कितना अन्याय हे !

मित्रो ! धर्म मे भावना का स्थान वहुत उच्च हे। भगवान् महावीर ने भावना की शिक्षा दी हे। भगवान् ने शिक्षा दी हे, इसीलिए हम लोग भगवान् की प्रार्थना करते हें। भगवान ने तीस वर्ष तक आत्मकल्याण ओर जनकल्याण की शिक्षा दी हे, इसीलिए आज भी श्रद्धा ओर भक्ति के साथ उनका नाम–स्मरण किया जाता हे। न केवल जेन ही वरन् इतिहास के ज्ञाता समस्त निष्पक्ष विद्वान् मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करते हे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर जेसे विश्वप्रसिद्ध विद्वान ने भी भगवान् महावीर के वतलाये हुए अहिसातत्त्व को समझकर कहा कि भगवान महावीर ही ऐसे थे जिन्होने ससार मे दयाभाव फलाया।

भगवान् महावीर के महान् उपकार से हम केवल उनका स्मरण करके उत्रृण नही हो सकते, बल्कि उस उपकार का बदला चुका कर ही उत्रृण हो सकते है। भगवान् ने हमारा उपकार किया है, हम दूसरो का उपकार करे और अनुकम्पा करे तभी बदला चुक सकता है।

परोपकार करने की बुद्धि पहले सब देशो मे थी। परोपकार की भावना ज्यो–ज्यो कम होती गई त्यो–त्यो स्वार्थ का अवतार हुआ। स्वार्थ के अवतार ने अत्याचार को जन्म दिया और ससार मे भयानक आग फैलने लगी। चाहे कोई हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या कोई और हो, जब तक उसमे परोपकार की बुद्धि होगी, कभी अत्याचार नही करेगा।

किसी भी धर्म का यह सिद्धात नही है कि परोपकार करना पाप है। विभिन्न धर्मो मे, कुछ बाते निराली–निराली अवश्य है, किन्तु परोपकार, करुणाभाव और अनुकम्पा का किसी ने विरोध नही किया। फिर जैनधर्म की दुहाई देकर अनुकम्पा को पाप बताना कितनी भयकर बात है ! शाति और कल्याण के लिए धर्म का आश्रय लिया जाता है। इसमे पक्षपात और दुराग्रह के लिए स्थान नही होना चाहिए। जो पक्षपात और दुराग्रह के वशीभूत होकर धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानेगा, उसका निस्तार कैसे होगा ! इसलिए मित्रो ! निष्पक्ष भाव से धर्म का विचार करो। इसी मे आपका हित हे।

(ख)

श्री महावीर नमु वर नाणी।

यह भगवान् वर्धमान की प्रार्थना है। प्रार्थना के विषय मे मै प्रतिदिन ही कुछ न कुछ कहता हू। आप मेरे शब्दो को सुनते तो हैं, मगर उन पर मनन करते है या नही ? मनन न करे तो श्रवण से परिपूर्ण लाभ नही हो सकता। यह सभव नही कि मै स्वय आपको मनन करा दू। मनन करना आपका ही कार्य है। आप अपना कार्य करे और मै अपना कार्य करू तभी काम चल सकता हे।

एक दिन मेने परा और अपरा शक्ति के विषय मे कहा था। परमात्मिक शक्ति परा शक्ति ओर पोद्गलिक शक्ति अपराशक्ति कहलाती हे। परा शक्ति को प्राप्त करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती ह। इसीलिए हम कहते ह–हे प्रभो ! हमारे हृदय मे वास कर। परमात्मा को अपने हृदय मे बसाना चाहते हे। पर परमात्मा सबके हृदय मे क्यो नही बसता ?

क्या परमात्मा हृदय मे वसने के लिए तेयार नही हे ? परमात्मा परम दयालु है और हृदय मे बसने लिए भी तैयार हे। लेकिन यह तो देखो कि आप परमात्मा से अधिक माया को तो हृदय मे नही बसाना चाहते ? परमात्मा को माया का एजेट तो नही बनाना चाहते ? आपका हृदय अगर माया का पुजारी है और उसी को हृदय मे बसाना चाहता हे तो परमात्मा का स्मरण करना वृथा है। मै यह आशा नही करता कि आप माया मे डूबे रहना चाहते हैं। मैं यह आशा करता हू कि आप माया को जीतने का विचार करते हैं, माया से हारना नही चाहते। इसी आशा के बल पर में आपको उपदेश देता हू ओर प्रेरणा देता हू कि परमात्मा को हृदय मे बसाने के लिए माया को जीतो। आप भी इसी मे वास्तविक कल्याण समझे।

किसी अच्छी वस्तु को प्राप्त करने का विचार रखने पर भी जब तक उस विचार को पूरा करने के लिए अनुकूल आचरण न किया जाये, तब तक वह वस्तु प्राप्त नही हो सकती। शब्दो से कोई चीज नही मिलती—उसके लिए प्रयत्न और पुरुषार्थ करने की आवश्यकता हे। विचार ओर उच्चार के साथ आचार भी होना चाहिए। आप मुख से परमात्मा की प्रार्थना करते है, लेकिन सच्ची प्रार्थना करने के लिए सबसे पहले हृदय की शुद्धि होनी चाहिए। हृदय की शुद्धि होगी तो परमात्मा हृदय मे निवास करने लगेगा ओर जब परमात्मा हृदय मे निवास करेगा तभी वह पराशक्ति प्राप्त हो सकती हे।

आप हृदय को शुद्ध करना कठिन कार्य समझते होगे लेकिन में अनुभव के आधार पर कहता हू कि हृदय को शुद्ध करना वहुत सरल कार्य हे। सरल कार्य कैसे हे ? यह बात भी प्रार्थना मे कही हे

ज्यो कचन तिहु काल कहीजे, भूषण नाम अनेक रे प्राणी।
त्यो जगजीव चराचर जानी, है चेतन गुण एक रे प्राणी। महा •

सोने ओर सोने के घट मे सोना बडा हे, लेकिन कोई पुरुप यदि सोने को तुच्छ माने ओर घट को महत्व दे तो आप उसे मूर्ख कहेगे। इसी दृष्टात को सामने रख कर आगे की बात सोच ले तो अधिक कहने की आवश्यकता ही न रहे। ससार मे जो चराचरयोनि हे, उनमे सोने के समान आत्मा व्याप रहा हे। एगे आया' कह कर शास्त्रकारो ने इस तथ्य की ओर सकेत किया हे। सभी योनियो के जीवो मे वह आत्मा विद्यमान हे। परन्तु लोग शरीर रूपी घट की कीमत तो कर रहे हे ओर आत्मा रूपी सोने को भूल रहे हे व्यवहार मे माने जाने वाले सोने ओर उसके घट के विपय मे शायद भूल न होती हो किन्तु शरीर रूपी घट आर उसके भीतर रहने वाले आत्मा रूपी सोने का मूल्य

आकने मे अक्सर भूल होती है। यह सुखी है, यह दुखी है, यह तो आप देखते ही है लेकिन दोनो के ही भीतर समान आत्मा का अस्तित्व नही देखते। सुखी को देख कर आपको प्रसन्नता होती है मगर दुखी को देख कर भी आप क्या उतने ही प्रसन्न होते है?

माया से माया मिली, कर–कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात।।

जो धनवान को देखकर प्रसन्न होता है वह गरीब को देखकर प्रसन्न क्यो नही होता ? क्या धनवान् मे ही आत्मा है ? गरीब मे आत्मा नही है ? आत्मा तो दोनो ही समान है। फिर भी जो धनवान को ही देखकर प्रसन्न होता है उसी की ओर ही दृष्टि रखता है, गरीब या दु खी को नही देखता, वह सोने का भूला हुआ सा क्यो न कहा जाये? सोने का आभूषण चाहे सिर का हो, चाहे पैर का, है तो सोने का ही। वह ठीक है कि सिर का आभूषण सिर पर रहेगा और पैर का आभूषण पैर पर रहेगा, मगर यह भेद तो सिर और पैर का है। आभूषण तो स्वर्णमय ही है। उसकी मौलिक एकता को कैसे भुलाया जा सकता है?

इस प्रकार ऊपर का घट कैसा ही क्यो न हो आत्मा सब मे समान है। इस तथ्य को आपने जान लिया तो हृदय शुद्ध होना कठिन नही रह जायेगा। इसलिए मै कहता हू कि आत्मा को शुद्ध करने के लिए शरीर के आगे आत्मा को मत भूलो। यह छोटा है और यह बडा है इस प्रकार का भेदभाव करते–करते अनन्त काल बीत गया है। अब अपने विवेक को जागृत करो और अन्तर्दृष्टि से सब मे समान आत्मा देखो। आत्मा की दृष्टि से सबको समान समझो। भावना करो।

न त्वह कामये राज्य, न स्वर्ग, न पुनर्भवम्।
कामये दु खतप्तानां, प्राणिनामऽर्त्तिनाशनम् ।।

अर्थात्–मे राज्य नही चाहता। मुझे स्वर्ग और सुखमय परलोक की चाह नही। मे केवल दुखिया जीवो के दु ख को नष्ट करना चाहता हू।

एक प्रार्थना करने वाले पर देव तुष्ट हुआ। देव ने पूछा– बोल तू क्या चाहता है । जो मागेगा वही दूगा। वह क्या मागना चाहेगा ? साधारणतया ऐसे अवसर पर राज्य धन सपदा स्वर्ग ओर मोक्ष की ही कामना की जाएगी। लेकिन वह कहता हे–ससार की ओर सपदा तो राज्य से कम ही हे परन्तु मे राज्य को नही चाहता। यदि राज्य की आकाक्षा नही ह तो क्या स्वर्ग लेगा ? इसके उत्तर मे वह कहता ह–मुझे स्वर्ग भी नही

चाहिए। तो क्या मोक्ष चाहिए ? वह वोला—नही मुझे मोक्ष की कामना भी नही हे। तव चाहिए क्या ? इसके उत्तर मे उसने कहा—में यही चाहता हू कि दु खी जीवो का दु ख मिट जाए। वस, एक मात्र यही मेरी कामना हे।

आपकी समझ मे इस प्रकार की माग करने वाला क्या पागल हे ? उसने राज्य नही लिया, स्वर्ग नहीं लिया, मोक्ष भी नही चाहा ओर दुखियो का दु ख नष्ट करना ही मागा। दूसरा कोई सुखी रहे या दु खी रहे, इससे आपको क्या सरोकार ! अपने को तो अपनी सोचना हे। ऐसा कहने वाले भी वहुत मिलेगे। एक तो पथ ही ऐसा चल पडा हे जो पराये दु ख को दूर करने मे पाप मानता है। ऐसे लोग उस भक्त की माग को पागलपन भी कह सकते हें मगर वह तो यही चाहता हे कि दु खी जीवो के दु ख का नाश हो।

इसे कहते है नि स्वार्थ प्रेम ! इसी को अहेतुकी अनुरक्ति भी कहते है। नि स्वार्थ प्रेम ससार मे दुर्लल वस्तु हे। वह सच्चे भक्त मे ही हो सकता हे। इसी कारण सच्चा भक्त राज्य ओर स्वर्गादि की आकाक्षा नही करता। वह दुखियो के दु खो का नाश चाहता हे। सब दानो मे अभयदान ही श्रेष्ठ माना जाता है। जो दाता है वह अभयदान देकर पराये दु ख का नाश ही चाहेगा ओर इस प्रकार मोक्ष ही प्राप्त कर लेगा। मोक्ष की प्राप्ति इच्छा करने से नही होती, वल्कि मोक्ष की सामग्री जुटाने से होती हे। इच्छा उलटी मोक्ष प्राप्ति मे वाधक हे। कहा भी हे

यस्य मोक्षेऽयनाकाक्ष स मोक्षमधिगच्छति।

अर्थात्— जिसे मोक्ष की भी इच्छा नही रहती वही मोक्ष पाता हे। इच्छा करने से ही मोक्ष प्राप्त होने लगे तो कोन मुक्त न हो जाये? मगर मोक्ष यो नही मिलता। मोक्ष की सामग्री जुटाने पर ही मोक्ष प्राप्त होता हे। मोक्ष की सामग्री मे करुणाभाव की प्रधानता हे। नि स्वार्थ प्रेम की आवश्यकता हे। अहेतुकी अनुरक्ति के विना मुक्ति प्राप्त नही की जा सकती।

अहेतुकी अनुरक्ति किसमे ओर केसी होती हे यह प्रकट करने के लिए महाकवियो ने सर्वसाधारण का हृदय खोलने के लिए वहुत कुछ कहा हे। उन्होने जो कुछ कहा हे उसे समझने वाला ही पूरी तरह समझ सकता हे। वेषयिक अनुरक्ति को वृद्धावस्था विगाड देती हे स्वार्थमयी अनुरक्ति भी स्वार्थभग होते ही लुप्त हो जाती हे परन्तु अहेतुकी अनुरक्ति को कोई विगाड नही सकता। विपयजन्य प्रेम ओर नि स्वार्थ प्रेम म वेसा ही अन्तर ह जसा कामधेनु आर कुत्ते मे हे। विपयजन्य प्रेम भटकने वाले कुत्ते के समान हे। जो कुत्ता इधर—उधर भटकता फिरता ह उसके लिए यह नही कहा जा सकता

कि वह कब और किस कुत्ती से खराब हो जायेगा ? इसी प्रकार जिन व्यक्तियो को जाति और कुल आदि का विचार नही है, उसके प्रेम का भी कोई ठिकाना नही है। उनका विषयजन्य प्रेम किस समय नष्ट हो जायेगा। यह नही कहा जा सकता।

अहैतुकी अनुरक्ति ऐसी नही है। उसे जरा नही बिगाड सकती। जरा के कारण जिस प्रेम मे कोई अन्तर न आवे, उसी प्रेम को अहैतुकी अनुरक्ति समझना चाहिए। यह अहैतुकी अनुरक्ति बडी कठिनाई से मिलती है।

विवाह होने पर पति पत्नी प्रेम–बन्धन मे जुड जाते है। मगर उनके प्रेम मे भी भिन्नता देखी जाती है। किसी–किसी मे विवाह करने पर भी स्वार्थपूर्ण प्रेम होता है और किसी–किसी मे नि स्वार्थ प्रेम भी रहता है। जिन दम्पती मे स्वार्थपूर्ण प्रेम होगा उनकी दृष्टि एक दूसरे की सुन्दरता पर रहेगी और किसी कारण सुन्दरता मे कमी होने पर वह प्रेम टूट जायेगा। परन्तु जिनमे नि स्वार्थ प्रेम है, उनमे पति रोगी या कुरूप अथवा कोढी हो गया। फिर भी उसकी पत्नी ने पति–प्रेम मे किसी प्रकार की कमी नही की। तात्पर्य यह है कि जिस प्रेम मे किसी भी कारण से न्यूनता आ जाये, वह नि स्वार्थ प्रेम नही है, वह स्वार्थपूर्ण और दिखावटी प्रेम है। इसके विरुद्ध जो प्रेम किसी भी समय किसी भी कारण से और किसी भी अवस्था मे कम न हो वह नि स्वार्थ प्रेम है। सच्चे भक्त परमात्मा से ऐसा नि स्वार्थ प्रेम ही करते है। इसलिए वे अपने लिए कुछ भी न चाह कर यही इच्छा करते है कि दुखियो का दु ख दूर हो जाये।

(ग)

श्रीमहावीर नमु वर नाणी। शासन जेहनो जाण रे प्राणी।।

यह चौबीसवे तीर्थंकर भगवान् महावीर की प्रार्थना है। आज जो सघ विद्यमान है वह भगवान् महावीर का ही है। साधु साध्वी श्रावक और श्राविका यह चतुर्विध सघ भगवान महावीर ने ही स्थापित किया है।

आज भगवान् महावीर स्थूल रूप मे हमारे सामने नही है लेकिन जिसे भगवान महावीर पर श्रद्धा है उसे समझना चाहिए कि चतुर्विध सघ मे ही भगवान महावीर हे। भगवान तीर्थंकर थे ओर तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहलाते हे। आज तीर्थंकर नही हे लेकिन उनके बनाये तीर्थ माजूद हैं। जिस कारीगर का बनाया हुआ किला विशाल आर सुदृढ ह तो निश्चय ही वह कारीगर बडा विशाल होगा। जिसका सघ आज हजारो वर्ष की नीव [illegible]

हो जाने पर भी मोजूद हे, उस सघ का सस्थापक कोई होना ही चाहिए ओर इस प्रकार महावीर भगवान् सघ के रूप मे प्रत्यक्ष हे।

व्यावहारिक दृष्टि से हम मे और भगवान् मे समय का वहुत अन्तर है, लेकिन गौतम स्वामी तो भगवान् महावीर के समय मे ही थे। भगवान् ने तो गौतम से भी कहा था

न हुजिणे अज्ज दीसइ।

अर्थात्– गौतम ! आज तुझे जिन नही दीखते, (लेकिन तू इसके लिए सोच मत कर। उनके द्वारा उपदिष्ट स्याद्वाद मार्ग तो तेरी दृष्टि मे हे ही। तू यह देख कि यह मार्ग किसी अल्पज्ञ का बताया नही हो सकता। तूने न्यायमार्ग प्राप्त किया है, अतएव जिन को न देख पाने की परवाह मत कर। उनके उपदिष्ट मार्ग को ही देख कि यह सच्चा है या नही ? अगर उनका मार्ग सच्चा है तो जिन हैं ही और वह सच्चे है।

प्रश्न होता है, भगवान् स्वय मौजूद थे फिर उन्होने गोतम स्वामी से क्यो कहा कि आज तुझे जिन नही दिखलाई देते ? इस कथन का अभिप्राय क्या है ?

इस गाथा का अर्थ करते हुए डॉक्टर हर्मन जैकोबी भी गडबड मे पड गए थे। अन्त मे उन्होने यह गाथा प्रक्षिप्त (बाद मे मिलाई हुई) समझी। उनकी समझ का आधार यही था कि खुद भगवान महावीर बैठे थे, फिर वह कैसे कह सकते कि आज तुझे जिन नही दिखते ? इस कारण उन्होने लिख दिया कि यह गाथा प्रक्षिप्त है।

डॉक्टर हर्मन जेकोबी की दोड यही तक रही, लेकिन वास्तव मे यह गाथा प्रक्षिप्त नही है, सूत्रकार की ही मोलिक रचना हे। भगवान महावीर केवलज्ञानी जिन थे ओर गोतम स्वामी छद्मस्थ थे। केवलज्ञानी को केवलज्ञानी ही देख सकता हे। छद्मस्थ नही देख सकता, अगर गोतम स्वामी, जो छद्मस्थ थे केवलज्ञानी को देख लेते, तब तो वह स्वय उसी समय ज्ञानी कहलाते। आचाराग सूत्र मे कहा है

'उवएसौ पासगस्स नत्थि।'

इस गाथा से ओर ऊपर की गाथा से प्रकट हे कि गोतम स्वामी उस समय छद्मस्थ थे। इस कारण उन्हे पूर्ण करने के लिए भगवान् ने उपदेश दिया हे। भगवान के कथन का अभिप्राय यह हे कि हे गोतम तेरी छद्मस्थ अवस्था के कारण में तुझे केवलज्ञानी नही दिखता। मेरा जिनपना तुझे मालूम नही होता। क्योंकि शरीर जिन नही हे ओर जिन शरीर नही हे।

जिनपद नही शरीर मे, जिन पद चेतन माय।
जिन वर्णन कछु और है, यह जिन वर्णन नाय।।

साधारण जनता नेत्रो से दिखाई देने वाले अष्ट महाप्रातिहार्य युक्त आत्मा को जिन समझती है लेकिन यह महाप्रातिहार्य से जिन नही है। ऐसे महाप्रातिहार्य तो मायावी इन्द्रजालिया भी अपनी माया से रच सकते है। वास्तव मे जिन चेतना है और उसे चेतना रूप जिन ही प्रत्यक्ष से देख सकते है।

इस कथन का आशय यह नही है कि जिन भगवान् का शरीर भी नही दिखता। इसका ठीक आशय यही है कि जिनदशा वास्तव मे आत्मा की होती है और उसे केवलज्ञानी के सिवाय कोई दूसरा नही देख सकता।

तब प्रश्न उपस्थित होता है कि साधारण आदमी उस पर श्रद्धा कैसे करे ? जिन को हम पहचान नही सकते। ऐसी अवस्था मे कोई भी हमे कह सकता है कि मै जिन हू। जब हमे जिन दिखाई नही देते तो हम किसे वास्तविक जिन माने और किसे न माने ?

इस विषय मे शास्त्र कहते है–बिना प्रमाण के किसी को जिन न मानना ठीक ही है, लेकिन जिन भगवान् को पहचानने के लिए तुम्हारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण का साधन नही है। जिन को केवली ही प्रत्यक्ष से जान सकते है। तुम छद्मस्थ हो, इसीलिए अनुमान से निश्चय करना होगा। अनुमान प्रमाण से किस प्रकार निश्चय होता है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए–

एक आदमी यमुना नदी को बहती हुई देखता है। वह प्रत्यक्ष से यमुना को बहती देख रहा है लेकिन कालिन्दी कहलाने वाली और कालिजर पहाड से निकलने वाली यमुना का उद्‌गम स्थान उसे नही दीखता। उसे यह भी नही दीख पडता कि वह किस जगह समुद्र मे मिल गई है। इस प्रकार यमुना नदी सामने है, मगर उसका आदि और अन्त उसे नजर नही आता, सिर्फ थोडा–सा मध्यभाग ही दिखाई देता है। इस मध्यभाग को देख कर मनुष्य को अपनी बुद्धि लगानी चाहिए कि जब इसका मध्य है तो आदि और अन्त भी होगा ही। हा अगर मध्य भाग भी दिखाई न दे और आदि अन्त मानने को कहा जाये तो बात दूसरी हे, अन्यथा एक अश को देख कर दूसरे अश पर बिना देखे भी विश्वास करना न्याययुक्त है।

उदाहरण की यह बात गोतम स्वामी के लिए भी समझ लेनी चाहिए। भगवान कहते हे–गोतम ! तू मुझे जबर्दस्ती जिन मत मान। किन्तु जैसे यमुना को देख कर उसका उद्‌गम स्थान ओर सगम स्थान मान लिया जाता है, उसी

प्रकार जिन के उपदिष्ट मार्ग को देखकर अनुमान से जिन को स्वीकार कर। जिन का मार्ग तो प्रत्यक्ष ही दिखाई देता हे न ! तू श्रुतज्ञानी हे। श्रुतज्ञानी केवलज्ञानी को नही देख सकता। केवलज्ञानी ही केवलज्ञानी को देख सकता है। मै जो उपदेश देता हू, वह केवलज्ञानी का होने पर भी तेरे लिए श्रुतज्ञान का ही है, क्योकि तू उससे अधिक नही देख सकता। लेकिन मेरा उपदेश पूर्ण है या अपूर्ण लौकिक है या अलौकिक ? साधारण हे या असाधारण ? इत्यादि प्रश्नो का विचार कर । अगर मेरा उपदेश श्रुतज्ञानी के उपदेश सरीखा ही हो उसमे मुछ भी विशेषता नजर न आती हो तो भले ही मुझे केवली न मान, अगर कोई विशेषता मालूम होती हो—जो कि श्रुतज्ञानी के उपदेश मे सम्भव नही है—तो मुझे केवली मान। इस प्रकार मेरे केवली होने न होने का निर्णय तू आप ही कर ले।

गौतम ! अगर मुझ पर तेरा विश्वास है, मेरे उपदेश की सत्यता तुझे अनुभव हो रही हो तो मेरा कहना मान। मेरा कहना यह है कि तू क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

'प्रमाद मत कर' यह भगवान् का वचन अत्यन्त गभीर है। गोतम स्वामी बेले—बेले का पारणा करते थे। शरीर को तो मानो वे त्याग ही चुके थे। वह चौदह पूर्वो के ज्ञाता और सर्वाक्षर सन्निपाती थे। तप और सयम मे लीन रहते थे। ऐसी दशा मे उन्हे क्षण मात्र का भी प्रमाद न करने का उपदेश देने की क्या आवश्यकता पडी ?

सर्वज्ञ के सामने गौतम स्वामी जैसे विशिष्ट श्रुतज्ञानी और साधारण जीव ही हे। उनका उपदेश सबके लिए समान हे। गोतम आदि के लिए उपदेश न देकर वे दूसरो को ही उपदेश दे, ऐसी बात नही हे। यह बात दूसरी हे कि भगवान् के उपदेश का जो सूक्ष्म रहस्य गोतम स्वामी ही ग्रहण कर सके थे वह दूसरा ग्रहण न कर सका, फिर भी उपदेश तो सबके लिए समान ही था। उपदेश को ग्रहण करने की मात्रा तो श्रोता की अपनी शक्ति पर निर्भर करती हे। सरोवर किसी को जल देने से इन्कार नही करता, लेकिन जितना बडा पात्र होगा वह उतना ही जल ग्रहण करेगा। इसी प्रकार भगवान् का ज्ञानसागर सव के लिए हे। जिसका जितना सामर्थ्य हो, उतना ग्रहण कर ले। गौतम अधिक ग्रहण कर सके, दूसरे लोग उतना ग्रहण न कर सके।

भगवान् ने गोतम को सम्वोधन करके कहा हे कि एक क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो। एक न्यायशील राजा यही कहेगा कि मेरा कानून—प्रधान ओर प्रजा सभी के लिए समान हे। अगर कोई कानून— प्रधान के लिए न हो ओर सिर्फ प्रजा के लिए ही हो तो उस कानून को वनाने वाला राजा

न्यायशील नही कहला सकता। न्यायशील राजा तो वही है जो सबके लिए समान कानून बनाता है। जब राजा अपने प्रधान से भी यही कहेगा कि मेरा कानून तुम्हारे लिए भी है तब प्रजा आप ही काप जाएगी। वह सोचेगी प्रधान को भी कानून की मर्यादा पालनी पडती है तो हमारी क्या विसात ! हमे तो पालनी ही पडेगी।

इसी प्रकार गौतम स्वामी मे विशेष प्रमाद नही है, फिर भी भगवान् ने उन्हे पमाद न करने की हिदायत की है। इसमे हमे यह समझ लेना चाहिए कि भगवान् ने यह बात हमारे लिए ही कही है। भगवान् को गौतम स्वामी का जैसा ध्यान था वैसा ही सब का था।

भगवान् तीर्थकर है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीर्थ हैं और चतुर्विध सघ तीर्थ के आधार है या यो कहिए कि जिसमे उपर्युक्त रत्नत्रय मिल गया वही तीर्थ है। जिसमे यह तीन रत्न नही है वह तीर्थ नही हड्डियो का ढेर है।

आज भगवान् नही दीखते, लेकिन उनका उपदेश किया हुआ मार्ग आज भी दीख रहा है। उनके द्वारा स्थपित तीर्थ आज भी विद्यमान है। इसे देखकर ही गौतम स्वामी ने भगवान् को केवल ज्ञानी माना था। भगवान् का उपदेश किया हुआ मार्ग और स्थापित किया हुआ तीर्थ आज भी मौजूद है। इन्हे देखकर यह मानना चाहिए कि आज भी भगवान् मौजूद है।

ईश्वर चर्म–चक्षु से नही दीखता। हा, ईश्वर का शरीर चर्म–चक्षु से भले ही दिखाई दे और दिखाई देता भी है, लेकिन ईश्वर तो उसी को दीखेगा, जो स्वय ईश्वर होगा जो लोग ईश्वर को आखो से ही देखना चाहते हैं और देखे बिना उस पर विश्वास नही करना चाहते, वे भ्रम मे पडे हुए है। ईश्वर को देखने के लिए दिव्यदृष्टि की आवश्यकता होती है। दिव्यदृष्टि प्राप्त होने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। मगर जो लोग दिव्य–दृष्टि प्राप्त करने के लिए योग्य साधना करना नही चाहते, फिर भी ईश्वर को देखना चाहते हैं, उनकी स्थिति बडी विचित्र है। उनका यह बालहठ ही कहा जा सकता है।

हमे अपने अनन्त सामर्थ्य पर विश्वास रखते हुए भी मौजूद असामर्थ्य को भूलना नही चाहिए। आत्मा मे अनन्त ज्ञानशक्ति है अनन्त दर्शनशक्ति है। आत्मा वीर्य का भडार है। किन्तु आज वह अप्रकट है। अतएव हमे ईश्वर द्वारा उपदिष्ट तत्त्व को ही देखना चाहिए और यदि वह परिपूर्ण दिखाई दे तो उस उपदेष्टा को भी परिपूर्ण समझ लेना चाहिए। इस प्रकार करने से ईश्वरीय मार्ग पर चलने की रुचि जागृत होगी और धीरे–धीरे ईश्वरत्व भी प्राप्त हो

सकेगा। ईश्वरत्व प्राप्त होने पर ईश्वर दिखाई देगा अथवा यह कहिए कि उस समय ईश्वर को देखने की आवश्यकता भी नही रहेगी।

ग्रहण दो प्रकार से होता है—बुद्धि से और इन्द्रियो से। इन्द्रियो से देख कर ही अगर ईश्वर को मानने की इच्छा रक्खी जाये तो बडी गडबडी होगी। ईश्वर केवल बुद्धिगम्य हे ओर वह भी विशिष्ट बुद्धिगम्य हे।

जिस समय तुम भगवान् महावीर के उपदेश के मर्म को भली—भाति जानोगे उस समय यह भी तुम्हे मालूम हो जायेगा कि ऐसा उपदेश किसी अल्पज्ञ के द्वारा होना सभव नही है। यह ही तुम्हे भगवान् का साक्षात्कार कराएगा। इसी से ईश्वर की ईश्वरता पाओगे।

भक्तो का कथन है कि ईश्वर को ढूढने के लिए इधर—उधर मत भटको। पृथ्वीतल बहुत विशाल है और तुम्हारे पास छोटे—छोटे दो पेर हें। इनके सहारे तुम कहा—कहा पहुच सकोगे ? फिर इतना समय भी तुम्हारे पास कहा है ? ईश्वर को खोजने का ठीक उपाय यह नही हे। मन को शात और स्वस्थ बनाओ। फिर देखोगे तो ईश्वर तुम्हारे ही निकट से निकटतर दिखाई देगा।

मो कों कहां तू ढूंढे, मै तो हर दम तेरे पास में।
ना मै मंदिर ना मै मस्जिद ना काशी कैलास में।।
ना मै वैसू अब्ज द्वारिका, मेरी भेट विश्वास मे। मोको।

मगर लोग बाहर की दृष्टि से देखते हैं जिससे लाभ के बदले सन्देह ही ज्यादा होता है। कोई मुझसे पूछे कि सुमेरु पर्वत कहा हे ? में उत्तर दूगा सुमेरु प्रथम तो केवली के ज्ञान मे हे, दूसरे शास्त्र मे, तीसरे नक्शे मे है। पृथ्वी पर सुमेरु कहा हे, यह मुझे मालूम नही ओर पता लगाने की आवश्यकता भी नही, क्योकि भगवान् ने पिड मे ब्रह्माड बतलाया है।

परिकर कर घर कचुकी, पुरुष फिरे चकचोर।
यह आकार है लोक का, देख्यो ग्रन्थ निचोर।।

झगा पहन कर ओर कमर पर हाथ रख कर नाचता हुआ पुरुष जिस आकार का दिखाई देता हे वह लोक का आकार हे। सक्षेप मे कहा जाये तो यह कि मनुष्य सारी दुनिया का नक्शा है। लोक को देखने के लिए कृत्रिम नक्शा देखने की जरूरत नही हे। लोक के नक्शे मे जो रेखाए हें, वेसी ही मनुष्य के शरीर मे नसो के रूप मे मौजूद हे। मानव—शरीर के ठीक बीचो बीच नाभि हे। यह नाभि सूचित करती हे कि सुमेरु पर्वत भी इसी तरह का हे।

शरीर का नाभि और सुमेरु गिरि रूप लोकनाभि ठीक बीच मे है। कदाचित् कोई प्रश्न करे कि मनुष्य शरीर मे सुमेरु कहा है ? तो मै कहूगा अपनी नाभि मे। सृष्टि के मध्य का सुमेरु पर्वत तभी मिलेगा, जब ऊर्ध्वगामी बन कर ब्रह्माड मस्तक और नाभि को एक कर दोगे तथा जब सोती हुई शक्तिया जाग उठेगी। ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर आप ही सुमेरु गिरि का पता लग जायेगा।

सुमेरु पर्वत पर भगवान् ने चार वन बतलाए है। सबसे पहले भद्रशील वन है। उससे पाच सौ योजन की ऊचाई पर नन्दन वन है। उससे साढे बासठ योजन ऊपर सौमनस वन है और उससे भी छत्तीस हजार योजन ऊपर पाडुक वन है। उस पाडुक वन के ऊपर अभिषेक–शिला है। तीर्थंकर के जन्म के समय इन्द्र उन्हे इस अभिषेक शिला पर ले जाते है और वहा उनका अभिषेक करते है। उपनिषद् मे कहा है

'देवो भूत्वा देव यजेत्।'

अर्थात् ईश्वर बन कर ईश्वर को देख–ईश्वर की पूजा कर यानी अपनी आत्मा का स्वरूप पहचान ले, बाहर के झगडे दूर कर।

हम भी परमात्मा की पूजा करते है, मगर धूप, दीप, फल ओर मिठाई आदि से नही। ऐसा करना जड–पूजा है। सच्ची पूजा वह हे जिसमे पूज्य और पूजक का एकीकरण हो जाये। जैसे शक्कर की पुतली पानी की पूजा करने मे उसके साथ एकमेक हो जाती है–उसी मे मिल जाती है उसी प्रकार ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। शास्त्र मे कहा है

'कित्तिय–वन्दिय–महिया।'

अर्थात् हे प्रभो ! तू कीर्तित है वन्दित है ओर पूजित ह।

साधु भी यह पाठ बोलते है। यह पाठ षडावश्यक के दूसरे अध्ययन का है। भगवान की पूजा यदि केवल धूप दीप आदि से ही हो सकती होती तो साधु उनकी पूजा कैसे कर सकते थे ?

परमात्मा की पूजा के लिए पूजक को सर्वप्रथम यह विचार करना चाहिए कि मे कौन हू ? हे पूजक ! क्या तू हाड मास नख या केश ह। अगर

पिड बढाने के लिए। अगर मास पिड बढाने के लिए ईश्वर की पूजा की ओर उससे मास बढ गया तो चलने–फिरने मे कष्ट होगा, मरने पर उठाने वालो को कष्ट होगा ओर जलाने मे लकडिया अधिक लगेगी।

मे पूछता हू आप देह हें या देही हे ? घर हे या घरवान् हे ? आप कहेगे हम देही हें हम घर वाले हें। घर तो चूना, ईंट या पत्थर का होता हे। मगर देखना, आप कही घर ही तो नहीं बन गये हे ? अगर कही अपने आप को घरवान् न मान कर घर ही मान लिया तो वडी गडबडी होगी ?

'देहो यस्यास्तीति देही' अर्थात् देह जिसका हे जो स्वय देह नही है–वह देही है। निश्चय समझो में हाथवान् हू, स्वय हाथ नही हू। ऐसा निश्चय होने पर तुम देव बन कर देव की पूजा के योग्य अधिकारी बन सकोगे। गीता मे कहा है

इन्द्रियाणि पराण्याहु॰, हन्द्रियेम्यो पर॰ मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धे॰ परतस्तु सः।।

तू इन्द्रिय, मन या बुद्धि नही हे वरन् बुद्धि को शक्ति देकर उसका प्रयोग करने वाला है।

जिसने इस प्रकार ईश्वर को समझ लिया हे, वह ईश्वर की खोज मे मारा–मारा नही फिरेगा ओर न ईश्वर के नाम पर अन्याय ही करेगा। कानो मे उगली डालकर ईश्वर को पुकारे ओर फिर कहे–या अल्लाह ! तू हिन्दुओ को मार डाल। ऐसा कदापि नही करेगा। जर्मन लोग इगलेण्ड वालो को मार डालने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और इगलेण्ड वाले जर्मन वालो को मार डालने के लिए। अब बेचारा ईश्वर किसकी रक्षा करे ओर किसे मार डाले? वह किस का पक्ष ले? यह ईश्वर की सच्ची प्रार्थना नही हे। ऐसी प्रार्थना करने वाला ईश्वर को समझता ही नही हे।

कहा जाता है कि सिकन्दर के हाथ मे उसके शत्रु–पक्ष की ओर से आया हुआ तीर चुभ गया। सिकन्दर आग बवूला हो गया ओर उसने तीर मारने वाले की जाति के दो हजार केदियो के सिर कटवा लिये। क्या यह ईश्वर को जानना हे ? क्या यह न्याय हे ? लेकिन सिकन्दर के सामने कोन यह प्रश्न उपस्थित करता ? ईश्वर की सच्ची पूजा तो आत्मा को उन्नत वनाने के उद्देश्य मे ही निहित हे। जिसने आत्मा का असली स्वरूप समझ लिया हे उसने परमात्मा पा लिया हे। परमात्मा की खोज आत्मा मे तन्मय होने पर समाप्त हो जाती हे।

श्री महावीर नमू वर नाणी।

यह भगवान महावीर की प्रार्थना है। प्रार्थना आत्मा को आनन्ददायिनी वस्तु है। प्रत्येक प्राणी और विशेषत मनुष्य को प्रार्थनामय जीवन बनाना आवश्यक है। त्यागीवर्ग यानी साधुसन्तो को ही नही, किन्तु पतित से पतित जीवन बिताने वालो को भी परमात्मा की प्रार्थना करके जीवन को पवित्र और पवित्रतर बनाने का अधिकार है। ससार मे जिसे पापी कह कर लोग घृणित समझते हो ऐसे घोर पापी, गो, ब्राह्मण, स्त्री और बालक के घातक, चोर, लबारी, जुआरी और वेश्यागामी अथवा पापिनी, दुराचारिणी और दुष्कर्म करने वाली स्त्री को भी परमात्मा की प्रार्थना का आधार है।

इस प्रकार जो प्रार्थना त्यागी और भोगी, सदाचारी और दुराचारी, सज्जन और दुर्जन, पापी और पुण्यात्मा–सभी को समान रूप से आधारभूत है, गुणदायिनी है, उस प्रार्थना मे कैसी शक्ति है ? एकाग्रचित्त होकर प्रार्थना मे ध्यान लगाने से ही इस प्रश्न का समाधान हो सकता हे। प्रार्थना का वास्तविक मूल्य और महत्त्व प्रार्थनामय जीवन बनाने से ही मालूम हो सकता है। प्रार्थना चाहे सादी भाषा मे हो या शास्त्रीय शब्दो मे हो उसका आशय यही होता है कि

गो ब्राह्मण प्रमादी बालक की मोटी हत्या चारो।
तेनो करणहार प्रभु भजने होत हत्या से न्यारो। पदम प्रभु।
वेश्या चुगल छिनाल कसाई चोर महा बटमारो।
जो इत्यादि भजे प्रभु । तो ने तो निवृत्त ससारो। पदम प्रभु ।।

जो वस्तु इतनी पावन है उसकी महिमा जीभ से किस प्रकार कही जा सकती हे ? जीभ मे बुद्धि मे और मन मे प्रार्थना की महिमा प्रकट करने की शक्ति कहा ? ससार मे जिनकी अवहेलना कर दी हे, लोग जिसका मुह देखना पाप समझते है ओर जिसे पास मे खडा भी नही रहने देना चाहते ऐसे पापी को भी जो प्रार्थना पवित्र बना देती है आर ऐसा पवित्र वना देती हे कि उससे घृणा करने वाले लोग ही उसकी प्रार्थना करने लगते हे तथा प्रार्थना करके अपना जीवन सफल बनाते ह उस प्रार्थना की महिमा अगाध ह। उसकी महिमा कान कह सकता ह !

परमात्मा की प्राथना मे इतनी पावनी शक्ति ह। फिर भी जो लोग [illegible]

[illegible]

सहन करने की ही। हृदय को शुद्ध करके परमात्मा पर विश्वास रख कर उसका स्मरण करना ही प्रार्थना है। ऐसे सरल उपाय का अवलम्बन करके कौन विवेकशील पुरुष पवित्र न बनना चाहेगा ?

प्रार्थना किसे पवित्र नही बना सकती ? जो पानी राजा की प्यास बुझा कर उसके प्राण बचाता है, वही पानी क्या एक अधर्मी की प्राणरक्षा न करेगा ? जो अन्न राजा, महाराज, तीर्थंकर, अवतार आदि के प्राणो की रक्षा करता है, वह क्या कनिष्ठ प्राणी के पेट मे जाकर उनकी रक्षा नही करेगा ? अन्न की कीमत चुकानी पडती है और पानी भी बिकने लगा है, लेकिन पवन प्राणरक्षा करता है या नही ? और वह सभी के प्राणो की रक्षा करता है या किसी–किसी के ही प्राणो की। अगर थोडी देर तक ही पवन नाक मे न आवे तो क्या जीवनरक्षा हो सकती है ? नही। ऐसी दशा मे मरण के सिवाय और क्या शरण है ? पवन स्वय नाक मे आता और प्राण बचाता है। इस प्राण रक्षक पवन की कोई कीमत नही देनी पडती। जहा मनुष्य है, वही वह आ जाता है। यही नही, वरन् कई बार लोग उसकी अवहेलना करते है उसे रोकने की चेष्टा करते है तब भी वह नाक मे आ जाता है। उदाहरणार्थ–बुखार आने पर रोगी के परिचारक उसे अनाप–सनाप कपडे ओढा देते है। ऐसा करना पवन रुकने के कारण स्वास्थ्य के लिए घातक है। फिर भी पवन किसी न किसी मार्ग से पहुचकर नाक मे घुसता ही है और जीवन देता है।

जेसे पवन की कीमत नही देनी पडती, फिर भी वह जीवन देने वाला है, उसी तरह प्रार्थना भी जीवन देने वाली है और उसकी भी कीमत नही देनी पडती। लेकिन लोग शायद यह चाहते हे कि जिस तरह पवन स्वय ही आकर हमारी नाक मे घुस जाता है उसी प्रकार प्रार्थना भी हमारे हृदय मे घुस जाये और शायद इसी विचार से वे परमात्मा की प्रार्थना नही करते। उन्हे प्रार्थना के लिए समय नही मिलता, गदी और निरर्थक बातो के लिए समय मिल जाता हे। जिन कामो से गालिया खानी पडती हे, बुराइया पेदा होती हे ओर आत्मा पर सकट आ पडता हे, ऐसे काम के लिए समय की कमी नही, सिर्फ प्रार्थना के लिए कमी हे।

आप कहेगे कि हम प्रार्थना करने मे कब प्रमाद करते हे ? तो मैं सबसे अलग–अलग न पूछ कर सभी से एक साथ पूछता हू कि आप लोग जब रेल मे बैठ कर कही जाते–आते हे तब वहा कोई काम नही रहता। फिर भी उस समय मे से कितना समय प्रार्थना मे लगाया हे ओर कितना निरर्थक गप्पो मे ? कभी आप ने इस बात पर विचार भी किया हे ? उस खाली समय

मे क्यो प्रार्थना करना भूल जाते हो? कितने मनुष्य ऐसे है जो एकात तन्मयता से प्रार्थना करते है और पार्थना करते समय उनका रोम–रोम आह्राद अनुभव करता है ? दर्पण मे मुह देखने की तरह सभी लोग अपने–अपने को देखो कि हम कितना समय पार्थना मे लगाते है और कितना समय रगडो–झगडो मे खर्च कर देते है ?

लोग कहते है–भगवान् के भजन के लिए समय नही मिलता। मै कहता हूँ–भजन के लिए जुदा समय की आवश्यकता ही क्या है ? भजन तो चलते–फिरते, उठते–बैठते समय भी किया जा सकता है। आपका बाहरी जीवन किसी भी काम मे लगा हो, लेकिन अगर आपके अन्त करण मे प्रार्थना का सस्कार हो तो प्रार्थना करने मे विघ्न उपस्थित नही होगा।

गई सो गई अब राख रही को। आप लोग आगे से अपना जीवन प्रार्थनामय बनाए। आपका हृदय समाधान पाया हो और आपको कल्याण करना हो तो दूसरी सब बात भूल कर अखण्ड प्रार्थना की आदत डालो। ऐसा करने से तुम देखोगे कि थोडे ही समय मे अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा है।

ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि अखण्ड प्रार्थना करने वाले का सदैव योगक्षेम रहता है। अप्राप्त वस्तु का प्राप्त योग कहलाता है और प्राप्त वस्तु की रक्षा को क्षेम कहते है। योग और क्षेम के लिए ही आप दौडधूप मचाते है और इस प्रार्थना से यह प्रयोजन सहज ही सिद्ध हो जाता है। अखण्ड प्रार्थना करने वाले को योग और क्षेम की चिन्ता ही नही रहती।

ऐसा होते हुए भी आपका मन प्रार्थना पर विश्वास नही पकडता और रात–दिन बुरे कामो मे व्यस्त रहता है। मूल्यवान् मनुष्य का जन्म इस प्रकार बर्बाद होते देख कर ज्ञानियो को दु ख होता है जैसे कीमती रत्न को समुद्र मे फेकते देख जोहरी को दु ख होता है। जौहरी जैसे रत्न का मूल्य जानता है इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष मानव–जीवन का मूल्य समझते हैं इसीलिए ज्ञानी पुरुष कहते हे

ख्याल आता है मुझे दिलजान तेरी बात का।
फिकर तुझ को है नही आगे अधेरी रात का।।
जीवन तो कल ढल जायेगा दरियायै बरसात का।
बेर कोई न खायेगा उस रोज तेरे हाथ का।

ज्ञानी अपनी हार्दिक वेदना इस कविता द्वारा प्रकट करते हे। वह कहते हे प्यारे भाई ! हमे तेरी दशा देख कर बहुत ही ख्याल होता हे कि तू

अपना जीवन वृथा वर्बाद कर रहा हे। तुझे जरा भी ध्यान नही कि आगे चल कर मौत का और सकटो का सामना करना होगा। तू अपनी जवानी के जोश मे भविष्य को भूल रहा है, मगर वह तो वर्षा से आने वाला नदी का पूर है। अधिक दिन ठहरने को नही। अतएव जल्दी चेत। वर्त्तमान मे न भूल, भविष्य की ओर देख।

पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया वृथा बाते अधिक करती है। परनिदा और आलोचना मे जो समय लगता है, उतना समय अगर परमात्मा के भजन मे लगे, तो बेडा पार हो जाये। एक वेश्या को भी अपना जीवन उन्नत बनाने का अधिकार है तो क्या श्राविका को यह अधिकार नही है ? घर का काम–काज करते हुए भी भगवान् का भजन किया जा सकता है। फिर आत्मा को उस ओर क्यो नही लगाती ? आज अपने मन मे दृढ सकल्प कर लो कि बुरी और निकम्मी बातो की ओर से मन हटा कर भजन और प्रार्थना मे ही मन लगाना है। जो बात बडे–बडे ग्रथो मे कही गई है, वही मै आप से कह रहा हू। गीता मे कहा है

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि स ।।

दुराचारी होकर भी जो अनन्य भाव से परमात्मा का भजन करता है उसे साधु होने मे देर नही लगती। जिसने दुराचार किया है, उसे हमेशा के लिए हिम्मत हार कर नही बैठ जाना चाहिए।

आशका हो सकती हे कि यह केसे सम्भव हे कि महापापी भी साधु बन सकता हे ? इसका समाधान यह है कि क्या ससार मे यह बात प्रसिद्ध नही है कि ताबे मे जरा–सी रसायन डालने से वह सोना बन जाता हे ओर पारस के ससर्ग से लोहा भी सोना हो जाता हे ? हा बीच मे पर्दा हो तो बात दूसरी हे। इसी प्रकार भजन मे भी पर्दा हो तो बात न्यारी हे। कहावत हे

सुणिया पिण सरध्या नही, मिआ न मन का मोह।
पारस से भेट्या नही, रहा लोह का लोह।।

जेसे पारस ओर लोहे के बीच मे कागज का पर्दा रह जाये तो लोहा सोना नही बनता, उसी प्रकार हृदय मे जब तक पाप का पर्दा हे, तब तक भजन से काम नही बन सकता। अतएव अपने हृदय के पर्दो को देखो। वृथा बातो से काम नही चल सकता ओर न कपट से ही काम हो सकता हे।

बहुत से लोग माला फेरते ओर भजन करते तो दीख पडते हैं लेकिन उनके भजन करने का उद्देश्य क्या हे ? भगवान की भक्ति करने के लिए भजन

करते है या भगवान् को नौकर रखने के लिए ? भगवान् के होकर उसे भजते है या कनक कामिनी के लिए ? जो भगवान् का बन कर भगवान् को भजता है उसे वस्तु की कामना नही रहेगी। चाहे उसके शरीर के टुकडे–टुकडे हो जाए फिर भी वह परमात्मा से बचने की प्रार्थना नही करेगा। ऐसी कठिन और सकट के समय भी उसकी प्रार्थना यही रहेगी कि हे प्रभो! मुझे ऐसा बल दीजिए कि मै तुझे न भूलू।

गजसुकुमार मुनि के सिर पर सोमल ने आग रख दी। फिर भी मुनि ने यह नही कहा कि हे नेमिनाथ भगवान् मुझे बचाओ, मै तेरा भक्त हू।' मुह से गजसुकुमार मुनि की गाथा गाई जाये और हृदय मे कारण मोहन आदि की कुविद्या चलती रहे, यह तो भगवान् के भजन को लजाना है। ऐसा करने वालो ने भगवान् का मजाक उडाया है और ईश्वर का फजीता किया है। यो तो परमात्मा के भजन से शूली भी सिहासन बन जाती है, लेकिन भक्त यह कामना नही करता। गजसुकुमार मुनि चाहते कि आग ठडी हो जाये या सोमल अशक्त हो जाये तो ऐसा हो भी जाता, पर वह तो सोचते थे कि मुझे जल्दी मुक्ति प्राप्त करनी है और सोमल मेरी सहायता कर रहा है। आप बडे चाव से गाते है

वसुदेवजी का नन्दन धन–धन गजसुकुमार।
रूपे अति सुन्दर कलावन्त वय बाल।।
सुन नेमजी री वाणी छोड्यो मोह जंजाल।
भीखू री पडिमा गया मसाणे महाकाल।।
देखी सोमल कोप्यो मस्तक बाधी पाल।
खेर ना खीरा सिर उविया असराल।।
मुनि नजर न खण्डी मेटी मनडा री झाल।
परीषह सहि ने मोक्ष गया तत्काल।
भावे करि बन्दू दिन मे सौ सौ बार।।

क्षमा ओर शाति का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र कहा मिलेगा ? गजसुकुमार मुनि की क्षमाशीलता की कथा ससार के इतिहास मे अद्वितीय हे।

मित्रो ! यह बात आपका हृदय कहता हो तो इस पर विचार करो कि जिसके पिता वसुदेव थे माता देवकी थी आर श्रीकृष्ण भाई थे उनकी राजप्रासाद मे रहने वाले गजसुकुमारजी भगवान नेमिनाथ से मुनिदीक्षा लेकर श्मशान मे जाकर ध्यान करने लगे। उनका ध्यान यही था कि मै कब इस

शरीर के वन्धन से मुक्त होऊ। मुनि ध्यान मे मग्न थे कि उसी समय वहा सोमल आ गया। मुनि पर नजर पडते ही सोमल का क्रोध भभक उठा। क्रोध का कारण यही था कि इसने मेरी लडकी से विवाह नही किया। यद्यपि विवाह करना या न करना अपनी मर्जी पर है और उस लडकी को इच्छानुसार करने का अधिकार था फिर भी सोमल ने मुनि पर यह अभियोग लगाया। अगर गजसुकुमार मुनि सोमल पर भी अभियोग लगाते, तो जीत उन्ही की होती। मगर उन्होने दावा नही किया। उनमे इतना सामर्थ्य था कि अगर वह जरा–सा भी घुडक देते तो भी सोमल के प्राण छूट जाते। मगर उन्हे तो सिद्ध करना था कि उन्होने सोमल को अपकारी नही, उपकारी माना।

क्षमासागर गजसुकुमार की भावना थोडी देर के लिए भी आप मे आ जाये तो कल्याण होते देर नही लगेगी। मगर आप यहा की खटपट मे वहा की बात भूल रहे है। आप यह नही देखते कि आपकी आत्मा कल्याण के मार्ग से किस प्रकार दूर होती जा रही है। आज वही होशियार माना जाता रहे जो ज्यादा बोल सके और नेता से पूछो कि गजसुकुमार मे इतना सामर्थ्य होने पर भी उन्होने सोमल से बदला नही लिया, तो बताओ बडा कौन रहा ? आज के होशियार बडे है या गजसुकुमार महान् हे ? आज के लोग लडाई–झगडे करके विजय चाहते हैं, छल–कपट मे ही वीरता मानते हैं। ऐसे समय मे आपके भाग्य अच्छे है कि आपके सामने गजसुकुमार का आदर्श हे, जिसके कारण आप और लोगो की तरह गेस या बम फेक कर लोगो की जान नही लेना चाहते अब जरा मन को सावधान करके देखो कि गजसुकुमार मुनि ने क्या भावना की थी ? वह कहते थे कि

ससुरो सुभागी म्हाने पागडी बन्धावे।

जब सोमल सिर पर धधकते अगारे रखने के लिए चिकनी मिट्टी की पाल बाध रहा था तो महामुनि गजसुकुमार कहते थे–मेरे पगडी बाध रहा हे। धन्य मुनि ! धन्य हे तुम्हारी क्षमाशीलता !!

लोगो को पुरानी ओर फटी पोशाक बदलने मे जेसा आनन्द होता हे वेसा ही आनन्द ज्ञानी को मृत्यु के समय शरीर बदलते समय होता हे। जीवन भर आचरण किये हुए तप सयम आदि का फल मृत्यु–मित्र की सहायता के विना प्राप्त नही होता।

गजसुकुमारजी सोचते थे–जिसके लिए घर छोडा माता–पिता का त्याग किया ससार के सुखो की उपेक्षा की राज–पाट को तुच्छ गिना ओर भगवान नेमिनाथ के पास दीक्षा धारण की उस उद्देश्य की सिद्धि मे विलम्ब

हो रहा था। लेकिन इस भाई ने आकर मुझे सहायता पहुचाई है। अब मेरा प्रयोजन जल्दी पूरा हो जायेगा।

अगर आप गजसुकुमार सरीखे नही बन सकते, तो उनके भक्त ही बनो। गजसुकुमार बनने की भावना रक्खो।

शका की जा सकती है कि मुनि मे और धर्म मे अनन्त शक्ति है फिर अगारे ठडे क्यो नही हो गये ? इस शका का उत्तर यह है कि यदि गजसुकुमार मुनि इच्छा करते तो आग अवश्य ठडी हो जाती। पर उन्होने ऐसी इच्छा ही नही की। आपको किसी आवश्यक काम से कही जाना हो और रेल निकल गई हो। इसी समय कोई मोटर वाला आपसे कुछ लिए बिना ही आपको उस स्थान तक पहुचाने लगे तो आप उस मोटर का बिगाड चाहेगे या कुशल चाहेगे ? इसी प्रकार गजसुकुमार को मोक्ष मे पहुचना है, जिसके लिए उन्होने दीक्षा ली है। मगर मोक्ष पहुचने मे देरी हो रही है। एकाएक सोमल वहा आ पहुचता है। वह गजसुकुमार को जल्दी ही मोक्ष मे पहुचाने का उपाय करता है। ऐसी अवस्था मे मुनि अगारे ठडे करके अपनी अभीष्ट–सिद्धि मे विघ्न क्यो डालेगे ?

गजसुकुमार मुनि की इस ऊची भावना को यदि हृदय स्वीकार करता हो तो उसे बार–बार समझाओ। प्रार्थना मे तुच्छ वस्तुओ की कामना न करो। यही सोचो कि– है भगवान् ! तू और मै एक ही हैं।'

ज्यो कचन तिहु काल कहीजे, भूषण नाम अनेक रे प्राणी।
त्यो जगजीव चराचर योनी, है चेतन गुण कर रे प्राणी।।

निश्चय नय का अवलम्ब करने से वस्तु का असली स्वरूप समझ मे आयेगा। आचार्य कहते है

य परमात्मा स एवाह योऽहं स परमस्तथा।
अहमेव मयाराध्य, नान्य कश्चिदिति स्थिति ।।

इस श्लोक मे 'सोऽहम् का तत्त्व ही व्यक्त किया गया हे। जो परमात्मा है वही मै हू, जो मे हू वही परमात्मा हे। ऐसी स्थिति मे मैं ही मेरा आराध्य हू, अन्य कोई नही।

इस प्रकार की शुद्ध मानसिक स्थिति प्राप्त होने पर सकल कामनाओ का कचरा अन्त करण से हट जाता हे ओर उज्ज्वल कल्याण का द्वार खुल जाता है।

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर

– एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए है। आषाढ शुक्ला सवत् 2000 को भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जैन पोषधशाला मे उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित की गई जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया ने उनकी स्मृति मे भीनासर मे ज्ञान–दर्शन चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनाक 29 4 1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए है। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का प्रकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा हे इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य हे। आज गौरवान्वित है गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता हे जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ हें। इसी से सम्बद्ध वाचनालय मे देनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक– कुल 30 पत्र–पत्रिकाये उपलब्ध करवाई जाती हे। प्रतिदिन करीब 50–60 पाठक इससे लाभान्वित होते हे। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे पुस्तकालय–वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हे ओर क्षेत्र मे अद्वितीय हे।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिलाई, बुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता है, जिसमे योग्य अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई, बुनाई, कढाई व पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यो मे योगदान दे सकती है और आवश्यकता पडने पर इस कार्य के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती है।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया की जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को बुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक विषयो पर प्रवचन आयोजित किए जाते है।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला, विज्ञान एव वाणिज्य सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो को नकद राशि, प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष योग्यता पुरस्कार के रूप मे प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे, मीठे जल की प्याऊ का सचालन किया जाता है। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वय–सिद्ध है। इस प्रकार अपने बहुआयामी कार्यो से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर प्रगति–पथ पर अग्रसर है।